हिन्दी साहित्य का इतिहास:आधुनिक युग

Course Code: M23HD06DC

Discipline Core Course
Postgraduate Programme
Hindi Language and Literature

SELF LEARNING MATERIAL

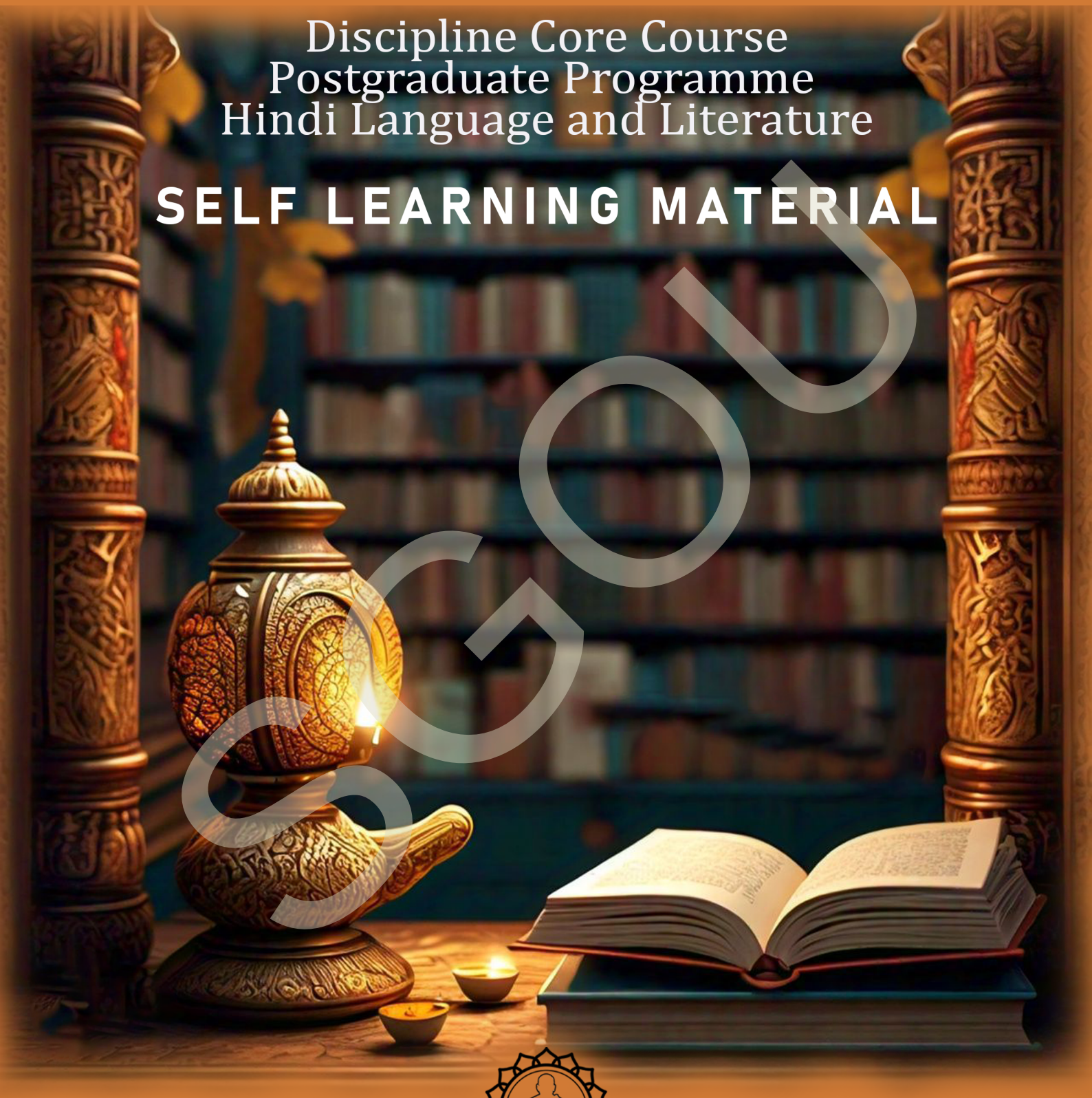

SGOU

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University for Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

Vision

To increase access of potential learners of all categories to higher education, research and training, and ensure equity through delivery of high quality processes and outcomes fostering inclusive educational empowerment for social advancement.

Mission

To be benchmarked as a model for conservation and dissemination of knowledge and skill on blended and virtual mode in education, training and research for normal, continuing, and adult learners.

Pathway

Access and Quality define Equity.

हिन्दी साहित्य का इतिहास:आधुनिक युग

Course Code: M23HD06DC

Semester-II

Discipline Core Course
MA Hindi Language and Literature
Self Learning Material

(With Model Question Paper Sets)

SGOU

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University for Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

हिन्दी साहित्य का इतिहास:आधुनिक युग

Course Code: M23HD06DC
Semester - II
Discipline Core Course
MA Hindi Language and Literature

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from Sreenarayanaguru Open University. Printed and published on behalf of Sreenarayanaguru Open University by Registrar, SGOU, Kollam.

www.sgou.ac.in

ISBN 978-81-971189-8-2

9 788197 118982

DOCUMENTATION

Academic Committee

Dr. Jayachandran R.
Dr. P.G. Sasikala
Dr. R. Sethunath
Dr. B. Ashok
Dr. Pramod Kovvaprath
Dr. Jayakrishnan J.
Dr. Vijayakumar B.

Development of the content
Krishnapreethi A. R.

Review
Content : Dr. Sandhya Menon
Format : Dr. I.G. Shibi
Linguistics : Dr. Vijaya Kumar B.

Edit
Dr. Sandhya Menon

Scrutiny
Dr. Indu G. Das, Dr. Sudha T., Krishnapreethi A. R., Christina Sherin Rose

Co-ordination
Dr. I.G. Shibi and Team SLM

Design Control
Azeem Babu T.A.

Cover Design
Lisha S.

Production
October 2024

Copyright
© Sreenarayanaguru Open University 2024

YouTube

Message from Vice Chancellor

Dear learner,

I extend my heartfelt greetings and profound enthusiasm as I warmly welcome you to Sreenarayanaguru Open University. Established in September 2020 as a state-led endeavour to promote higher education through open and distance learning modes, our institution was shaped by the guiding principle that access and quality are the cornerstones of equity. We have firmly resolved to uphold the highest standards of education, setting the benchmark and charting the course.

The courses offered by the Sreenarayanaguru Open University aim to strike a quality balance, ensuring students are equipped for both personal growth and professional excellence. The University embraces the widely acclaimed "blended format," a practical framework that harmoniously integrates Self-Learning Materials, Classroom Counseling, and Virtual modes, fostering a dynamic and enriching experience for both learners and instructors.

The university aims to offer you an engaging and thought-provoking educational journey. The postgraduate programme in Hindi uniquely combines language study with literature. While the programme ensures learners earn credits in various areas of Hindi literature, it mainly aims to improve their ability to deeply understand how different literary forms relate to society. We have also made sure to introduce learners to the latest developments in Hindi literature. Rest assured, the university's student support services will be at your disposal throughout your academic journey, readily available to address any concerns or grievances you may encounter.

We encourage you to reach out to us freely regarding any matter about your academic programme. It is our sincere wish that you achieve the utmost success.

Regards,
Dr. Jagathy Raj V. P.

01-10-2024

Contents

BLOCK-01 आधुनिक काल-1857 का स्वाधीनता संग्राम एवं हिन्दी नवजागरण 1

इकाई: 1 आधुनिक काल की महत्वपूर्ण घटनाएँ, सन् 1857 की क्रांति, हिन्दी नवजागरण की अवधारणा आधुनिक काल - हिन्दी गद्य का उद्‌भव और विकास, खड़ी बोली गद्य की प्रारंभिक रचनाएँ एवं उनके रचयिता, राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द, राजा लक्ष्मण सिंह 2

इकाई: 2 भारतेन्दु युग, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु युगीन काव्य प्रवृत्तियाँ, भारतेन्दु मंडल के साहित्यकार 12

इकाई: 3 भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य की अन्य विधाएँ 21

इकाई: 4 पत्रकारिता का आरंभ और 19वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता 31

BLOCK-02 द्विवेदी युग 36

इकाई: 1 जागरण सुधार काल, महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग 37

इकाई: 2 हिन्दी नवजागरण और सरस्वती, द्विवेदी युगीन पत्र-पत्रिकाएँ 44

इकाई: 3 राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि-माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान 51

इकाई: 4 द्विवेदी युगीन गद्य साहित्य के अन्य विधाएँ, स्वच्छंदतावाद और उसके प्रमुख कवि 58

BLOCK-03 छायावाद तथा उत्तरछायावादी काव्य प्रवृत्तियाँ 71

इकाई: 1 छायावाद का अर्थ और परिभाषा, छायावादी काव्य की विशेषताएँ, छायावाद के आधार स्तंभ 72

इकाई: 2 उत्तर छायावाद, व्यक्तिवादी गीति कविता-हरिवंशराय बच्चन, नरेंद्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, भगवतीचरण वर्मा, गोपालसिंह नेपाली, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता- मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारीसिंह दिनकर, सियारामशरण गुप्त, उदयशंकर भट्ट, सोहनलाल द्विवेदी 94

इकाई: 3 प्रगतिवाद-प्रगतिवाद और चेतना, प्रगतिवाद और मार्क्सवाद का संबंध, प्रगतिवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ, प्रगतिवाद काव्य और उसके प्रमुख कवि 107

इकाई: 4 प्रयोगवाद-अर्थ एवं परिभाषा, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद में अंतर, प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, नई कविता-आरंभ तथा अर्थ, प्रयोगवाद और नई कविता, नई कविता की काल सीमा, नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, शिल्प पक्ष, अकविता या साठोत्तरी कवि 122

BLOCK-04 आधुनिक काल- गद्य साहित्य 134

इकाई: 1 हिन्दी कहानी-उद्‌भव और विकास, हिन्दी कहानी का विकास-प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रसाद युग, उत्तर प्रेमचंद युग, नई कहानी, अकहानी, साठोत्तरी कहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी, सहज कहानी, सक्रिय कहानी, हिन्दी के प्रमुख कहानीकार - प्रेमचंद, प्रसाद, अज्ञेय, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती 135

इकाई: 2 हिन्दी उपन्यास- उद्‌भव और विकास, हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार, प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास, प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास, हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार-यशपाल, जैनेद्र कुमार, भीष्म साहनी, फणीश्वरनाथ रेणु 155

इकाई: 3 हिन्दी नाटक का विकास एवं प्रमुख नाटककार, प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक, द्विवेदी युगीन नाटक, प्रसादयुगीन नाटक, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक- नुक्कड़ नाटक, हिन्दी के प्रमुख नाटककार-भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, जगदीशचंद्र माथुर, रामकुमार वर्मा 166

इकाई: 4 हिन्दी निबंध का विकास एवं प्रमुख निबंधकार, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग, शुक्लोत्तरयुग, हिन्दी निबंधों के प्रकार - विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, आत्मपरक, हिन्दी आलोचना का उद्‌भव और विकास, समकालीन हिन्दी आलोचना 176

Model Question Paper Sets 186

BLOCK-01

आधुनिक काल-1857 का स्वाधीनता संग्राम एवं हिन्दी नवजागरण

Block Content

Unit 1: आधुनिक काल की महत्वपूर्ण घटनाएँ, सन् 1857 की क्रांति, हिन्दी नवजागरण की अवधारणा आधुनिक काल - हिन्दी गद्य का उद्भव और विकास, खड़ी बोली गद्य की प्रारंभिक रचनाएँ एवं उनके रचयिता, राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द, राजा लक्ष्मण सिंह

Unit 2: भारतेन्दु युग, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु युगीन काव्य प्रवृत्तियाँ, भारतेन्दु मंडल के साहित्यकार

Unit 3: भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य की अन्य विधाएँ

Unit 4: पत्रकारिता का आरंभ और 19वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता

इकाई : 1

आधुनिक काल की महत्वपूर्ण घटनाएँ, सन् 1857 की क्रांति, हिन्दी नवजागरण की अवधारणा आधुनिक काल - हिन्दी गद्य का उद्भव और विकास, खड़ी बोली गद्य की प्रारंभिक रचनाएँ एवं उनके रचयिता, राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द, राजा लक्ष्मण सिंह

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- 1857 की क्रांति की जानकारी प्राप्त करता है
- हिन्दी नवजागरण के बारे में समझता है
- ब्रजभाषा गद्य की प्रारम्भिक रचनाओं के बारे में समझता है
- खड़ी बोली गद्य रचनाओं की जानकारी प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

हिन्दी साहित्य के इतिहास के अन्तिम कालखण्ड को आधुनिक काल की संज्ञा दी गयी है जिसका प्रारम्भ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 1900 वि. (1843 ई.) तथा डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने 1857 ई. से माना है।

आधुनिक काल के साहित्य में जिन नवीन प्रवृत्तियों का सूत्रपात हुआ, उसका सम्बन्ध तत्कालीन परिस्थितियों से जोड़ा जा सकता है। भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ने देश में एक नयी चेतना को जन्म दिया, भले ही इस संग्राम को 'विद्रोह' का नाम देकर अंग्रेजों ने कुचल दिया।

इस काल में सामाजिक दृष्टि से भी अनेक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफीकल सोसाइटी आदि ने जहाँ परम्परागत भारतीय समाज में नयी सामाजिक चेतना का विकास किया; वहीं रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों ने भी जनता को बहुत अधिक प्रभावित किया। अंग्रेजी ढंग के स्कूल-कॉलेजों की स्थापना ने भारतीय साहित्य को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आधुनिक काल में अभिव्यक्त गद्य के द्वारा भी साहित्य का विकास इस काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना माना जा सकता है। काव्य-भाषा के पद पर लम्बे समय से प्रतिष्ठित ब्रजभाषा के स्थान पर 'खड़ी बोली' काव्य-भाषा के रूप में प्रयुक्त होने लगी। अनेक प्रकार के साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक आन्दोलनों से आधुनिककालीन साहित्य प्रभावित हुआ है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

1857 की क्रांति, नवजागरण, आधुनिक काल, ब्रजभाषा गद्य, खड़ी बोली गद्य

Discussion / चर्चा

हिन्दी साहित्य के इतिहास का आधुनिक काल 19वीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। साहित्य के संदर्भ में आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है। आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल की समय-सीमा 1843 ई. से 1923 ई. तक निर्धारित की है। विद्वानों ने इस

काल को विभिन्न नाम दिए हैं: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'गद्यकाल', डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे 'आधुनिक काल', मिश्रबन्धु ने इसे 'वर्तमान काल' के नाम से परिभाषित किया, और गणपतिचन्द्र गुप्त ने भी इसे 'आधुनिक काल' माना है।

इस काल में साहित्य रीतिकालीन दरबारी परिवेश से निकलकर जन-जीवन के निकट आया और इसमें विभिन्न गद्य विधाओं का विकास हुआ। खड़ी बोली में कविताएँ लिखने की परंपरा इसी काल में प्रारम्भ हुई। इसे 'राष्ट्रीय चेतना' का काल भी कहा जाता है। आधुनिक काल में समाज, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में एक नए आदर्शवादी आन्दोलन का उदय हुआ, जो मध्यकालीन प्रवृत्तियों से अलग था। मध्यकालीन काव्यचिंतन का केंद्र धर्म था, जबकि आधुनिक आन्दोलन का केंद्र समाज था। मध्यकालीन काव्य प्रवृत्तियों का प्रेरणा-स्रोत मुख्यतः संस्कृत का पौराणिक और दार्शनिक साहित्य था, जबकि आधुनिक आन्दोलन वेदान्त-दर्शन, ऐतिहासिक जीवन-चरित और पाश्चात्य विचारों से प्रभावित था। मध्यकालीन साहित्य का लक्ष्य हिन्दू संस्कृति को मुस्लिम आक्रमणकारियों और शासकों से बचाना था, जबकि आधुनिक आन्दोलन का लक्ष्य अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं को संशोधित और परिष्कृत कर पाश्चात्य संस्कृति के मुकाबले सशक्त बनाना था।

▶ साहित्य जन जीवन के निकट आया

1.1.1 सन् 1857 की क्रांति

अठारह सौ सत्तावन भारतीय इतिहास का एक अविस्मरणीय बिंदु और मोड है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम की इस महत्वपूर्ण घटना को कई कोणों से समझने की कोशिश हुई है। फिर भी सवाल हमेशा बना रहा है कि इसे नवजागरण में कहाँ रखा जाए। इसे 'सिपाही विद्रोह', 'राष्ट्रीय विद्रोह', 'न्याय तथा व्यवस्था- प्रिय सरकार के विरुद्ध अराजकतावादियों का युद्ध', 'तालिबानी अभियान', फ्रांस की राज्य क्रांति से तुलनीय' आदि, बहुत कुछ कहा गया है। 1857 को गदर और इसमें भाग लेनेवालों को गद्दार भी कहा जाता था। विद्रोहियों को 'बलवाई' और 'अपराधी' समझा गया। विलियम डेलेरेंपिल ने मुख्यतः प्रशासनिक विवरणों के आधार पर इसे महज ईसाइयों के खिलाफ धार्मिक लड़ाई के रूप में देखा। (द लास्ट मुगल)। इतने तरह के मतों के बावजूद आम भारतीय मानस में 1857 की छवि मुख्यतः पहला धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की है।

▶ सिपाही विद्रोह

1857 की क्रान्ति से प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की शुरुआत मंगल पाण्डे ने की। अंग्रेजी शासन को लगने लगा था कि अब भारतीय दासता स्वीकार नहीं कर सकते। चारों ओर राष्ट्रीय चेतना की लहर दौड़ गई। कविता में राष्ट्रीय और देश-प्रेम की कविताएँ, नाटक इत्यादि रचे गए। अंग्रेजों की पोलें खोली गईं। अंग्रेजी शासन में जो दुर्दशा हुई उसका नाटकों के माध्यम से मंचन हुआ और जागरूकता फैलाई गई। इस प्रकार 1857 की राष्ट्रक्रान्ति से सांस्कृतिक पुनर्जागरण की लहर पूरे भारत में फैल गई। 19वीं शताब्दी के पूर्व नव-जागरण का सन्देश धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा किया गया। जाति-पाँति, छूआ-छूत, ऊँच-नीच आदि सामाजिक समस्याओं एवं कुरीतियों का विरोध धार्मिक सन्तों, सूफियों आदि के द्वारा किया गया। 19वीं शताब्दी में मूलतः वे धार्मिक तत्व नष्ट तो नहीं हुए, किन्तु उनका स्वरूप परिवर्तित हो गया। कहीं पर यह यूरोपीय संस्कृति से प्रभावित एवं प्रेरित होता दृष्टिगत होता है और कहीं पर विशुद्ध भारतीय धर्म की ओर अग्रसर होते दिखाई देता है। कहीं इन दोनों के बीच समन्वयात्मक दृष्टिकोण लक्षित होता है। इन विभिन्न नव-जागरण की अवस्थाओं तक पहुँचने

▶ राष्ट्रीय चेतना की लहर फैल गई

के लिए अनेक सामाजिक और राजनैतिक तत्व सहायक हुए हैं।

अंग्रेजी शिक्षा पद्धति ने बाबुओं को उत्पन्न करने के साथ-साथ प्रतिभाशाली व्यक्तियों को भी जन्म दिया, जिससे उन्होंने विज्ञान, दर्शन एवं इतिहास का सर्वेक्षण किया तथा भारतीयों के हित के लिए परिवर्तन का सूत्रपात किया।

▶ सक्रिय संकठन

अंग्रेजों ने असीम लाभ अर्जित करने हेतु अपनी व्यापारिक दृष्टि केवल भारत तक ही नहीं वरन सम्पूर्ण यूरोप तक फैलाई थी। भारत के अथाह कच्चे माल का उपयोग करने के लिए तथा उसे विभिन्न स्थानों तक पहुँचाने एवं उसका वितरण करने के लिए उन्होंने यातायात के साधनों का विकास किया, जिससे समाज सुधारकों को भी यात्रा की सुविधा प्राप्त हो गई, जिसके परिणामस्वरूप वे एक सक्रिय संगठन बनाने में सफल हुए।

▶ अनेक समाज सुधारक संगठन बने

सम्प्रदायवादी नीति से अंग्रेजों ने भारतीय हिन्दू-मुसलमान, आदिवासी, शूद्र एवं अन्य वर्णों के मध्य सदैव तनाव बढ़ाने का प्रयास किया, जिससे इनमें एकता स्थापित न हो सकी, किन्तु उनका यह कुचक्र अधिक समय तक नहीं चला। भारतीयों ने सहिष्णुता के सिद्धान्त को अपनाकर अन्याय का विरोध किया। इस नीति ने भारतीयों में नयी जागृति को जन्म दिया। अनेक समाज सुधारक संगठन बने-ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि। आधुनिक युग के कर्मठ महात्मा गाँधी, नेहरू, विनोबा जी आदि महापुरुष उसी कड़ी में जुड़े हुए थे।

▶ पाश्चात्य संस्कृति को संपर्क से सामूहिक विसंगतियों का उन्मूलन

पाश्चात्य संस्कृतिः पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क में आने से भारतीयों के अन्धविश्वास, विधवा-विवाह, बाल-विवाह, पर्दा प्रथा, अस्पृश्यता, वर्ण भेद आदि का उन्मूलन हुआ। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित व्यक्ति समाज सुधार के कार्यों में संलग्न हो गए। सामाजिक जागरण से समाज परिष्कृत हुआ और नयी चेतना से समाज को नया दिशा बोध प्राप्त हुआ।

सन् 1857 की क्रांति भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है जो स्वतंत्रता के संघर्ष की दिशा और प्रेरणा को दर्शाता है।

सन् 1857 की क्रांति, जिसे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भी कहा जाता है, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ भारतीय सिपाहियों, किसानों, और स्थानीय राजाओं द्वारा किया गया एक प्रमुख विद्रोह था। इसके मुख्य कारणों में धार्मिक विश्वासों के उल्लंघन, आर्थिक कठिनाइयाँ, और ब्रिटिश नीतियों से असंतोष शामिल थे। मेरठ से शुरू हुआ यह विद्रोह जल्द ही पूरे उत्तर भारत में फैल गया। हालांकि, ब्रिटिशों ने इसे दबा दिया और ईस्ट इंडिया कंपनी की जगह ब्रिटिश राज स्थापित किया, लेकिन इस क्रांति ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की नींव रखी।

ईसाई-प्रचारकों का योग-दानः ईसाई प्रचारकों ने भी हिन्दी गद्य के विकास में पर्याप्त योग दिया है। उन्होंने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए अपने धार्मिक ग्रन्थों के अनुवाद, व्याख्यान, लेख तथा पाठ्य-पुस्तकें हिन्दी में प्रस्तुत की जिनसे अप्रत्यक्ष रूप में हिन्दी-गद्य की सेवा हुई। सन् 1738 ई. में कलकत्ते के समीप 15 मील दूर पर श्री रामपुर में ईसाई-प्रचारकों का एक सुदृढ़ केन्द्र स्थापित हुआ। आगे चलकर इस संस्था ने अपना मुद्रण यंत्र भी स्थापित कर लिया जिससे अनेक पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। इनके द्वारा कलकत्ता और

आगरा में 'स्कूल-बुक-सोसायटी' की भी स्थापना हुई जिसके द्वारा विभिन्न विषयों पर पाठ्य-पुस्तकें तैयार की गई। विदेशी पादरियों ने इस कार्य में अनेक भारतीय लेखकों का भी सहयोग प्राप्त किया तथा उन्हें गद्य लेखन में प्रवृत्त किया। इन संस्थाओं के द्वारा 1838 से 1857के बीच में विभिन्न विषयों पर शताधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई। अंकगणित, ज्यामिति, इतिहास, भूगोल, अर्थ-शास्त्र, समाज-शास्त्र, विज्ञान, चिकित्सा, राजनीति, कृषि-कर्म, ग्राम-शासन, शिक्षा, यात्रा, नीति, धर्म, ज्योतिष, दर्शन, अंग्रेजी राज्य, व्याकरण, कोष आदि सभी प्रमुख विषयों पर इनके द्वारा सरल एवं लोकोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हुई। अस्तु, ईसाई-प्रचारकों ने गद्य-शैली के विकास की दृष्टि से भले ही विशेष सफलता प्राप्त न की हो किन्तु हिन्दी-गद्य को विषय-विस्तार प्रदान करने एवं गद्य-शैली में एकरूपता एवं शुद्धता का अभाव अवश्य खट कता है। कहीं वे ब्रज-भाषा से प्रभावित हैं तो कहीं उर्दू से। इनमें कहीं-कहीं अत्यन्त दूषित एवं हास्यास्पद प्रयोग भी मिलते हैं, जैसे 'परमेश्वर ने हमको डरपोकपना आत्मा नहीं दिया' 'बालक ऐसा मूर्छा हो गया' आदि, पर विदेशी प्रचारकों की भाषा-सम्बन्धी कठिनाइयों को देखते हुए इसे स्वाभाविक कहा जा सकता है। जब स्वयं भारतीयों की शैली ही अभी तक निश्चित नहीं हो पाई थी, तो ऐसी स्थिति में यदि विदेशियों के नेतृत्व में लिखित गद्य एक-रूपता से शून्य हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। अतः इनका प्रयास प्रशंसनीय है।

▶ 'स्कूल-बुक-सोसायटी' की स्थापना

1.1.2 हिन्दी नवजागरण की अवधारणा आधुनिक काल

आधुनिक काल के आदर्शवादी साहित्य के नवोत्थान में इस युग की विभिन्न सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का गहरा योगदान रहा है। उन्नीसवीं-वीसवीं शती में भारत में अनेक ऐसे मनीषियों का अवतरण हुआ जिन्होने अपने नवीन दृष्टिकोण एवं मौलिक विचारों के द्वारा भारतीय धर्म, दर्शन और समाज के क्षेत्र में क्रान्ति कर दी। इनमें राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परम हंस, स्वामी विवेकानन्द का नाम उल्लेखनीय है। इनके द्वारा संचालित विभिन्न संस्थाओं का परिचय यहाँ क्रमशः संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है:

1.1.2.1 ब्रह्म-समाज

हिन्दी गद्य के विकास में बंगाल के राजा राम मोहनराय एवं उनके द्वारा स्थापित 'ब्रह्म-समाज' का महत्वपूर्ण योग-दान है। राजा राममोहन राय ने 1828 ई. में 'ब्रह्म समाज' नामक संस्था की स्थापना की। इसका उद्देश्य भारतीय धर्म एवं समाज को परम्परागत रूढ़ियों से मुक्त करते हुए उसे नया परिष्कृत रूप प्रदान करना था। उनकी विचारधारा पर इस्लामी एकेश्वरवाद का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।। उन्होंने तत्कालीन अवतारवाद, मूर्तिपूजा, पशु-बलि, कर्मकांड आदि का विरोध करते हुए वेदांत एवं उपनिषदों के आदर्श को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। इनके प्रयास के फलस्वरूप जाति-भेद, अस्पृश्यता, बहु-विवाह, सती प्रथा का विरोध हुआ तथा स्त्री-शिक्षा का प्रचार होने लगा। इस प्रकार धर्म और समाज के क्षेत्र में बाह्य समाज ने अनेक ऐसी प्रवृत्तियों को जन्म दिया जिनका विकास परवर्ती चिन्तकों एवं समाज-सुधारकों द्वारा हुआ।

▶ राजा राममोहन राय ने 1828 ई. में 'ब्रह्म समाज'

ब्रह्म समाज को देवेन्द्र टैगोर और केशवचन्द्र सेन ने आगे बढाया। देवेन्द्रनाथ वेदों की अपौरुषेयता पर विश्वास नहीं करते थे, उनकी आस्था अंतः प्रज्ञा पर अधिक थी। केशवचन्द्र सेन बहुत कुछ प्रयोगवादी थे। उन्होंने ब्रह्म धर्म के प्रसार केलिए दूरदूर तक यात्राएँ कीं। उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप मद्रास में 'वेदसमाज' और बंबई में 'प्रार्थना समाज' की स्थापना हुई।

▶ देवेन्द्र टैगोर और केशवचन्द्र सेन

1.1.2.2 प्रार्थना समाज

▶ केशवचंद्र सेन ने 1867 ई. में प्रार्थना समाज

1867 ई. में केशवचन्द्र सेन के प्रयासों से बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई, जिसके उन्नायक महादेव गोविन्द रानाडे थे। उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों व कुरीतियों के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष किया। उन्होंने धार्मिक व सामाजिक समस्याओं का तर्कपूर्ण खण्डन किया। वे जाति व्यवस्था को अस्वीकार करते थे, उन्होंने स्त्री शिक्षा व विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहित किया।

1.1.2.3 आर्य समाज

▶ विभिन्न रूढ़ियों को विरोध

1867 में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बंबई में 'आर्य-समाज' की स्थापना की। स्वामी जी ने अपने महत्वपूर्ण ग्रथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में धर्म, दर्शन एवं समाज के विभिन्न नियमों एवं सिद्धान्तों की एक ऐसी नयी व्याख्या प्रस्तुत की जो आधुनिक युग के अनुकूल सिद्ध हो सके। आर्य-समाज ने केवल वैचारिक क्रान्ति ही नहीं की अपितु व्यावहारिक स्तर पर भी अनेक प्रकार के सुधार किये। उसने मूर्ति पूजा, जाति-भेद, छुआछूत, बाल-विवाह, अशिक्षा, परदा-प्रथा, पशु-बलि जैसी विभिन्न रूढ़ियों का विरोध करके भारतीय समाज को नयी दृष्टि एवं नयी शक्ति प्रदान की। उसने पुरुषों और स्त्रियों के लिए गुरुकुल, ऋषिकुल, दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज जैसी संस्थाएँ स्थापित करके शिक्षा के क्षेत्र में भी पर्याप्त कार्य किया।

आर्य-समाज ने हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य को विशेष रूप से प्रभावित किया है। स्वामी जी ने स्वयं गुजराती होते हुए भी इस सत्य का अनुभव कर लिया था कि भारतीय जनता की एक भाषा केवल हिन्दी ही हो सकती है, अतः उन्होंने इसी को अपने सिद्धान्तों एवं मत-प्रचार का माध्यम बनाया।

1.1.2.4 रामकृष्ण मिशन

▶ 1897 ई. में विवेकानंद द्वारा कलकत्ता में

रामकृष्ण मिशन की स्थापना रामकृष्ण परमहंस के देहावसान के बाद विवेकानंद ने 1897 ई वीं में कलकत्ता में की थी। परमहंस जी उच्चकोटि के विचारक, भक्त एवं साधक थे जिन्होंने परम्परागत भारतीय धर्म-सिद्धान्तों को अत्यन्त व्यापक एवं समन्वित रूप प्रदान किया। स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त-दर्शन की आधुनिक दृष्टि से नयी व्याख्या प्रस्तुत करते हुए उसका प्रचार न केवल भारत अपितु इंग्लैण्ड और अमरीका जैसे भौतिकवादी देशों में भी किया। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव से भारत का नव-शिक्षित वर्ग भारतीयता से दूर हटता जा रहा था, उसकी परम्परागत आस्थाएँ नष्ट होती जा रही थीं। स्वामी जी ने अपने व्याख्यानों एवं उपदेशों के द्वारा नवशिक्षित वर्ग को इस पतन से बचाया। उन्होंने भारतीय संस्कृति की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियों की नयी व्याख्या प्रस्तुत करके उसके महत्व को समझाया तथा इस प्रकार भारतीयों के हृदय में नयी आस्था और नये विश्वास का संचार किया। स्वामी विवेकानन्द के विचारों का तत्कालीन भारतीय साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। हिन्दी में तथाकथित छायावादी कवियों के काव्य में वेदान्त-दर्शन एवं अद्वैतवाद का जो प्रभाव परिलक्षित होता है उसके मूल में बहुत कुछ विवेकानन्द के ही विचारों का प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है।

1.1.2.5 थियॉसॉफिकल सोसाइटी

थियॉसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना 1875 को न्यूयॉर्क में हुई थी। यह आंदोलन भारतीय धार्मिक परंपरा पर आधारित था। सोसाइटी के संस्थापक 1879 में भारतवर्ष पहुँचे और 1882 में अड्यार (मद्रास) में इसकी शाखा खोल दी गयी। इस संस्था की इंग्लैंड की शाखा

▶ 1875 को न्यूयॉर्क में

से संबद्ध श्रीमती एनी बेसेंट 1893 में भारत आयीं और सोसाइटी के विकास के तन-मन से जुट गयीं। श्रीमती बेसेंट ने समस्त देश का दौरा किया और हिंदू धर्म की आध्यात्मिकता के पक्ष में ओजस्वी भाषण दिये। थियॉसॉफी में अपने आदर्शों को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने शिक्षा-संस्थाएँ भी खोलीं। बनारस का सेंट्रल हिंदू कॉलेज इसी तरह की संस्था है।

ब्रह्म समाज	-	1828	-	राजा राममोहन राय
प्रार्थना समाज	-	1867	-	केशवचन्द्र सेन
आर्य समाज	-	1867	-	दयानन्द सरस्वती
रामकृष्ण मिशन	-	1897	-	विवेकानंद
थियॉसॉफिकल सोसाइटी	-	1875	-	श्रीमती बेसेंट

ये संस्थाएँ भारतीय समाज में सामाजिक और धार्मिक सुधारों को बढ़ावा देने के लिए सक्रिय थे।

1.1.3 हिन्दी गद्य का उद्‌भव और विकास

हिन्दी गद्य का उद्‌भव और विकास ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों भाषाओं में हुआ। इसके विकास में कलकत्ता में 1800 ई. में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज की प्रमुख भूमिका रही। लल्लू लाल, सदल मिश्र, सदासुख लाल और इंशा अल्लाह खाँ आदि रचनाकारों ने खड़ी बोली और ब्रजभाषा से सम्बन्धित अनेक रचनाएँ कीं।

1.1.3.1 ब्रजभाषा गद्य की प्रारम्भिक रचनाएँ

▶ 'श्रृंगार रस मंडन' की रचना ब्रजभाषा गद्य में

भक्तिकाल में कृष्णभक्ति शाखा के भीतर गद्य ग्रंथ मिलते हैं। रामचन्द्र शुक्ल जी के अनुसार श्रीवल्लभाचार्य के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथजी ने 'श्रृंगाररस मंडन' की रचना ब्रजभाषा गद्य में की, उसके बाद दो वार्ता ग्रन्थ लिखे गए हैं - 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता'। दोनों रचनाओं के रचनाकार गोकुलनाथ जी हैं। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' 17वीं सदी में लिखी गई, इसमें बल्लभाचार्य के शिष्यों का जीवनवृत्त है। जबकि 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' औरंगजेब के काल में लिखी गई। इसमें गोसाई विट्ठलनाथ के शिष्यों का जीवनवृत्त है।

▶ वैकुंठमणि शुक्ल ने ब्रज भाषा गद्य में 'अगहन माहात्म्य' और 'वैशाख माहात्म्य' नाम की पुस्तकें लिखीं

नाभादासजी संवत् 1660 के आसपास 'अष्टयाम' नामक एक पुस्तक ब्रजभाषा में लिखी जिसमें भगवान राम की दिनचर्या का वर्णन है।

सं 1670 के लगभग वैकुंठमणि शुक्ल ने, जो ओरछा के महाराज जसवंत सिंह के यहाँ थे, ब्रजभाषा गद्य में 'अगहन माहात्म्य' और 'वैशाख माहात्म्य' नाम की दो छोटी-छोटी पुस्तकें लिखीं। सुरति मिश्र संवत् 1767 में संस्कृत से कथा लेकर 'बैताल पचीसी' लिखी।

▶ खड़ी बोली के प्राचीन रूप

इस प्रकार की ब्रजभाषा गद्य की कुछ पुस्तकें इधर-उधर पाई जाती हैं जिनसे गद्य का कोई विकास प्रकट नहीं होता। भोज के समय से लेकर हम्मीरदेव के समय तक अपभ्रंश काव्यों की जो परंपरा चलती रही उसके भीतर खड़ी बोली के प्राचीन रूप की भी झलक अनेक पद्यों में मिलती है।

1.1.3.2 खड़ी बोली गद्य की प्रारम्भिक रचनाएँ

अकबर के समय में गंग कवि ने 'चंद छंद बरनन की महिमा' नामक एक गद्य पुस्तक खड़ीबोली में लिखी थी। 1741 ई. में रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषायोग वाशिष्ठ' नामक ग्रन्थ साफ सुथरी खड़ी बोली में लिखा। निरंजनी जी के गद्य से स्पष्ट है कि मुंशी सदासुख लाल एवं लल्लू लाल से पहले भी खड़ी बोली का गद्य अच्छे परिमार्जित रूप में व्यवहृत होता था। अब तक प्राप्त पुस्तकों में 'भाषायोगवाशिष्ठ' ही सबसे पुरानी है, जिसमें गद्य अपने परिष्कृत रूप में दिखाई पड़ता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रामप्रसाद निरंजनी जी को प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक मानते हैं।

▶ रामप्रसाद निरंजनी जी प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक

मुंशी सदासुख लाल 'नियाज़' दिल्ली के निवासी थे। इन्होंने विष्णु पुराण से कोई उपदेशात्मक प्रसंग लेकर एक पुस्तक लिखी थी, जो पूरी नहीं मिली है। इन्होंने 'सुखसागर' में श्रीमद् भागवत् का हिन्दी अनुवाद किया है। मुंशी जी ने हिन्दुओं की शिष्ट बोलचाल की भाषा ग्रहण की और हिन्दी-उर्दू मिश्रित भाषा का प्रयोग किया।

▶ 'सुखसागर' श्रीमद् भागवत् का हिन्दी अनुवाद

लल्लू लाल ने उर्दू, खड़ी बोली हिन्दी और ब्रजभाषा तीनों में गद्य की पुस्तकें लिखीं। 'माधव विलास' और 'सभा विलास' नाम से ब्रजभाषा पद्य के संग्रह ग्रन्थ भी इन्होंने प्रकाशित किए। संवत् 1860 में कलकत्ते के फोर्टविलियम कालेज के अध्यापक जॉन गिलक्राइस्ट के आदेश से इन्होंने खड़ी बोली गद्य में 'प्रेमसागर' लिखा जिसमें भागवत दशमस्कंध की कथा वर्णित है। इंशा के समान इन्होंने केवल ठेठ हिन्दी लिखने का संकल्प तो नहीं किया था पर विदेशी शब्दों के न आने देने की प्रतिज्ञा अवश्य लक्षित होती है।

▶ 'प्रेमसागर' में भागवत दशमस्कंध की कथा का वर्णन है

इंशाअल्ला खाँ- उर्दू के बहुत प्रसिद्ध शायर थे जो दिल्ली के उजड़ने पर लखनऊ चले आए थे। इनके पिता मीर माशाअल्ला खाँ काश्मीर से दिल्ली आए थे जहाँ वे शादी हकीम हो गए थे। 'इंशा ने 'उदयभानचरित' या 'रानी केतकी की कहानी' संवत् 1855 और 1860 के बीच लिखी होगी। इंशा ने अपनी भाषा को तीन प्रकार के शब्दों से मुक्त रखने की प्रतिज्ञा की है- बाहर की बोली-अरबी, फारसी तुर्की. गँवारी ब्रजभाषा, अवधी आदि। इंशा का उद्देश्य ठेठ हिन्दी लिखने का था जिसमें हिन्दी को छोड़कर और किसी बोली का पुट न रहे।

▶ इंशा ने अपनी भाषा को तीन प्रकार के शब्दों से मुक्त रखने की प्रतिज्ञा

सदल मिश्र बिहार के निवासी थे। ये फोर्ट विलियम कॉलेज में काम करते थे। कॉलेज अधिकारियों की प्रेरणा से इन्होंने खड़ी बोली गद्य की पुस्तक 'नासिकेतोपाख्यान' लिखी।

▶ खड़ी बोली गद्य की पुस्तक 'नासिकेतोपाख्यान'

राजा लक्ष्मण सिंह आगरा के रहने वाले थे, उन्होंने 1861 ई. में आगरा से 'प्रजा हितैषी' नामक पत्र प्रकाशित किया और 1862 ई. में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' का अनुवाद सरस एवं विशुद्ध हिन्दी में प्रकाशित किया। हिन्दी के रक्षकों में बाबू शिवप्रसाद सितारेहिन्द के साथ-साथ पंजाब के बाबू नवीनचन्द्र राय भी शामिल थे। उर्दू के पक्षपातियों से उन्होंने बराबर संघर्ष किया।

▶ राजा लक्ष्मण सिंह ने प्रजा हितैषी नामक पत्र प्रकाशित किया

आधुनिक काल (1857 ई. के बाद) में गद्य का विकास भारतीय साहित्य में एक महत्वपूर्ण घटना थी, जिसमें कई प्रमुख गद्य-लेखकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और राजा लक्ष्मणसिंह इस अवधि के प्रारंभिक गद्य-लेखकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

1. राजा शिवप्रसाद (1823 -1865 ई.) ने 1845 ई. में बनारस से 'बनारस अखबार' निकाला। आगे चलकर उनकी नियुक्ति सरकारी-शिक्षा-विभाग में इन्स्पेक्टर के पद पर हो गई। इस पद पर रहते हुए उन्होंने पाठ्य पुस्तकों के अभाव की पूर्ति के लक्ष्य से विभिन्न विषयों की पुस्तकें हिन्दी में लिखीं। प्रारम्भ में उन्होंने परिष्कृत हिन्दी का प्रयोग किया किन्तु सरकारी अधिकारियों के प्रभाव से उनका झुकाव उर्दू या उर्दू- मिश्रित हिन्दी की ओर हो गया, अतः आगे चलकर वे उर्दू के ही पक्षपाती हो गये। जहाँ उनके प्रारम्भिक ग्रन्थों 'मानव धर्म-सार', 'योगवाशिष्ठ के चुने हुए श्लोक', 'उपनिषद्-सार', 'भूगोल- हस्तामलक', 'बामा मन-रंजन', 'आलसियों का कोड़ा', 'विद्यांकुर', 'राजा भोज का सपना', आदि की भाषा संस्कृत मिश्रित हिन्दी है वहीं परवर्ती गन्थों - 'इतिहास तिमिर नाशक', 'वैताल-पचीसी', आदि की भाषा उर्दू है।

▶ 1845 ई. में बनारस से 'बनारस अखबार'

2. राजा लक्ष्मणसिंह (1826-1866 ई.) विशुद्ध हिन्दी के समर्थक थे, अतः उन्होंने राजा शिवप्रसाद की उपयुक्त भाषा नीति का विरोध करते हुए स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि हिन्दी और उर्दू दो न्यारी-न्यारी बोलियाँ हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि अरबी-फारसी के शब्दों के बिना हिन्दी न बोली जाये। अपने इसी दृष्टिकोण के अनुरूप उन्होंने कालिदास के अनेक ग्रन्थों-मेघदूत, शकुन्तला, रघुवंश आदि का अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किया। इनमें उन्होंने गद्य को खड़ी बोली में तथा पद्य को ब्रजभाषा में प्रस्तुत किया है। उनकी गद्य-शैली पर भी ब्रजभाषा का किंचित् प्रभाव परिलक्षित होता है; यथा- 'फिर भी एक बेर प्यारी ने मुझ निदंमी की ओर आँसू भरे नेत्रों से देखा। अब वही दृष्टि मेरे हृदय को बिंब की बुझी भाल के समान छेदती है।' ('शकुन्तला' नाटक; 1861 ई.) वस्तुतः इनकी भाषा काव्य के लिए अधिक उपयुक्त है, बौद्धिक विवेचन की क्षमता का उसमें अभाव है।

▶ विशुद्ध हिन्दी के समर्थक

इन सभी लेखकों और उनके कार्यों ने हिन्दी गद्य की विविधता और विकास को प्रेरित किया। इस प्रकार, हिन्दी गद्य की यात्रा ने समय के साथ विकसित होते हुए आधुनिक काल में एक नई पहचान प्राप्त की है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी साहित्य का 'आधुनिक काल' साहित्यिक दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ युग माना जाता है। इस युग में हिन्दी की अनेक नई विधाओं का विकास हुआ, जिसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का विशेष योगदान रहा। यह काल खड़ी बोली, ब्रजभाषा व गद्य लेखन की दृष्टि से स्वर्ण काल माना जाता है।

ईसाई पादरियों ने बाइबिल का हिन्दी में अनुवाद कर उसका वितरण कराया, जिससे हिन्दी गद्य का विकास हुआ। आधुनिक काल में भाव व अभिव्यक्ति के लिए गद्य विकसित हो गया। ब्रजभाषा धीरे-धीरे समाप्त हो गई तथा साहित्य खड़ी बोली में रचा जाने लगा। राष्ट्रीयता व स्वाभिमान की इच्छा इस युग में विकसित हो गई। एक ओर व्यक्ति रूढियों व अन्धविश्वासों से मुक्त हो रहे थे, तो दूसरी ओर राष्ट्रीयता को आत्मसात् कर रहे थे। कविता, निबन्ध, उपन्यास एवं नाट क में यहीं नवजागरण का स्वर आधुनिक काल के साहित्य में दिखाई देता है। इस युग के लेखकों का योगदान हिन्दी गद्य साहित्य के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण था। उनके लेखन ने न केवल साहित्यिक मानदंडों को स्थापित किया, बल्कि समाज के प्रति जागरूकता और सांस्कृतिक संवेदनशीलता को भी बढ़ावा दिया।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. 1857 की क्रांति के बारें में टिप्पणी लिखिए।
2. खड़ी बोली गद्य के विकास पर टिप्पणी लिखिए।
3. समाज सुधारक संगठनों पर आलेख प्रस्तुत कीजिए।
4. हिन्दी गद्य का उद्‌भव और विकास पर आलेख लिखिए।
5. आधुनिक काल की परिस्थितियों पर टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
5. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
6. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय
7. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
8. हिन्दी काव्य का इतिहास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
9. हिन्दी कविता का प्रवृत्तिगत इतिहास - पूरणचंद टण्डन, विनीता कुमारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रामचंद्र शुक्ल
4. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 2

भारतेन्दु युग, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु युगीन काव्य प्रवृत्तियाँ, भारतेन्दु मंडल के साहित्यकार

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- भारतेंदु-युग के बारे में समझता है
- भारतेन्दु युगीन काव्य प्रवृत्तियाँ के बारे में समझता है
- भारतेंदु-युग के प्रमुख रचना एवं रचनाकार के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- भारतेन्दु मंडल के बारे में समझता है

Background / पृष्ठभूमि

आधुनिक हिन्दी काव्य का प्रथम चरण 'भारतेन्दु युग' के नाम से जाना जाता है, जिसमें भारतेन्दु हरिश्चंद्र हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के प्रमुख प्रतिनिधि माने जाते हैं। उन्होंने 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगजीन', और 'हरिश्चंद्र पत्रिका' जैसे पत्रिकाएँ प्रकाशित कीं और नाटकों की रचना भी की। इस काल में निबंध, नाटक, उपन्यास, और कहानियों का लेखन हुआ और इसे नवजागरण काल भी कहा जाता है। भारतेन्दु युग में हिन्दी साहित्य में एक ओर पुरानी परंपराओं का निर्वाह होता रहा, वहीं दूसरी ओर सामाजिक और राजनीतिक सक्रियता के साथ नए विचारों का साहित्य पर प्रभाव बढ़ने लगा। प्रारंभिक 25 वर्षों (1843 से 1869) तक यह प्रभाव सीमित था, लेकिन 1868 के बाद नवजागरण के संकेत स्पष्ट रूप से उभरने लगे, जिसका श्रेय भारतेन्दु हरिश्चंद्र को दिया जाता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

नयीधारा, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु-मंड़ल, पुनर्जागरण-काल

Discussion / चर्चा

1.2.1 भारतेंदु-युग

भारतेंदु-युग अथवा पुनर्जागरण-काल का उदय हिन्दी-कविता के लिए नवीन जागरण के संदेशवाहक युग था, किंतु इसके सीमांकन के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) के रचनाकाल को दृष्टि में रख कर संवत् 1925 से 1950 की अवधि को 'नयी धारा' अथवा 'प्रथम उत्थान' की संज्ञा दी है और इस काल को भारतेंदु हरिश्चंद्र तथा उनके सहयोगी लेखकों के कृतित्व से समृद्ध माना है। किंतु उनके द्वारा निर्धारित कालावधि से कुछ अन्य लेखकों का मतभेद है। मिश्रबंधुओं ने 1926-1945 वि. तक, डॉ. रामकुमार वर्मा ने 1927-1957 वि. तक, डॉ. केसरी नारायण शुक्ल ने 1922-1957 वि. तक और डॉ. रामविलास शर्मा ने 1925-1957 वि. तक भारतेंदु युग की व्याप्ति मानी है। यह

उल्लेखनीय है कि भारतेंदु द्वारा संपादित मासिक पत्रिका 'कविवचनसुधा' का प्रकाशन 1868 ई. में आरंभ हुआ था। अतः भारतेंदु- युग का उदय 1868 ई. (1925 वि.) से मानना उचित है। इसी तर्क का अनुसरण करते हुए 'सरस्वती' के प्रकाशन वर्ष (1900 ई.) को भारतेंदु-युग की परिसमाप्ति का सूचक माना जा सकता है। यह ठीक ही है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र के देहावसान के साथ ही भारतेंदु-युग की समाप्ति न मान कर उनके समकालीन कवियों द्वारा बाद में रचित कृतियों को ध्यान में रखते हुए इस काल की व्याप्ति 1900 ई.तक स्वीकार की जाये, क्योंकि इस समय तक साहित्य-क्षेत्र में अनेक नवीन प्रवृत्तियों का उदय लक्षित होने लगा था।

भारतेन्दु के पहले ब्राजभाषा में भक्ति और श्रृंगार परक रचनाएँ होती थीं और लक्षण ग्रंथ भी लिखे जाते थे। भारतेन्दु के समय से काव्य के विषय चयन में व्यापकता और विविधता आई। श्रृंगारिकता, रीतिबद्धता में कमी आई। राष्ट्र-प्रेम, भाषा-प्रेम और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम कवियों के मन में भी पैदा होने लगा। उनका ध्यान सामाजिक समस्याओं और उनके समाधान की ओर भी गया। इस प्रकार उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में होनेवाले गतिशील नवजागरण को अपनी रचनाओं के द्वारा प्रोत्साहित किया। इस युग को हिन्दी साहित्य में नवजागरण और आधुनिकता की शुरुआत के रूप में माना जाता है।

▶ रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल को 'नयी धारा' अथवा 'प्रथम उत्थान' की संज्ञा दी

1.2.1.1 भारतेन्दु हरिश्चंद्र

कविवर हरिश्चंद्र (1850-1885) इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचंद की वंश-परंपरा में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता बाबू गोपालचंद्र 'गिरिधरदास' भी अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। हरिश्चंद्र ने बाल्यावस्था में ही काव्य-रचना आरंभ कर दी थी और अल्पायु में कवित्व प्रतिभा और सर्वतोन्मुखी रचना-क्षमता का ऐसा परिचय दिया था कि उस समय के पत्रकारों तथा साहित्यकारों ने 1880 ई. में उन्हें 'भारतेंदु' की उपाधि से सम्मानित किया था। कवि होने के साथ ही भारतेंदु पत्रकार भी थे। 'कविवचनसुधा' और 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' उनके संपादन में प्रकाशित होने वाली प्रसिद्ध पत्रिकाएँ थीं। नाटक, निबंध आदि की रचना द्वारा उन्होंने खड़ीबोली की गद्य-शैली के निर्धारण में भी महत्वपूर्ण योग दिया था। उनकी कविताएँ विविध-विषय-विभूषित हैं। भक्ति, श्रृंगारिकता, देशप्रेम, सामाजिक परिवेश और प्रकृति के विभिन्न संदर्भों को लेकर उन्होंने विपुल परिमाण में काव्य-रचना की, जो कहीं सरसता और लालित्य में अद्वितीय है और अन्यत्र स्थूल वर्णनात्मकता की परिधि को लांघने में असमर्थ है।

▶ कम उम्र में ही कवित्व प्रतिभा और रचना क्षमता का परिचय

उनकी काव्य-कृतियों की संख्या सत्तर है, जिनमें 'प्रेम-मालिका', 'प्रेम-सरोवर', 'गीत-गोविंदानंद', 'वर्षा-विनोद', 'विनय- प्रेम-पचासा', 'प्रेम-फुलवारी', 'वेणु-गीति' आदि प्रमुख हैं। उनकी प्रमुख विशेषता यह है कि अपनी अनेक रचनाओं में जहाँ वे प्राचीन काव्य-प्रवृत्तियों के अनुवर्ती रहे, वहीं नवीन काव्यधारा के प्रवर्तक भी थे। राजभक्त होते हुए भी वे देशभक्त थे, दास्य भाव की भक्ति के साथ ही उन्होंने माधुर्य भाव की भक्ति भी की है, नायक-नायिका के सौंदर्य वर्णन में ही न रम कर उन्होंने उनके लिए नवीन कर्तव्य क्षेत्रों का भी निर्देश किया है और इतिवृत्तात्मक काव्यशैली के साथ ही उनमें हास्य-व्यंग्य का पैनापन भी विद्यमान है। अभिव्यंजना-क्षेत्र में भी उन्होंने ऐसी ही परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली प्रवृत्तियों को अपनाया है, जो उनकी प्रयोगधर्मी मनोवृत्ति का प्रमाण है। 'हिन्दी भाषा' में प्रबल हिन्दी वादी होते हुए भी उन्होंने उर्दू-शैली में कविताएँ लिखी हैं और काव्य-रचना के लिए ब्रजभाषा को ही उपयुक्त मानते हुए भी वे खड़ीबोली में 'दशरथविलाप' तथा 'फूलों का गुच्छा' कविताएँ लिखते दिखायी देते हैं। काव्यरूपों की विविधता उनकी अनन्य विशेषता है। छंदोबद्ध कविताओं के साथ ही

▶ 1880 ई. में 'भारतेंदु' की उपाधि से सम्मानित

उन्होंने गेय पद-शैली में भी विदग्धता का परिचय दिया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कविता के क्षेत्र में वे नवयुग के अग्रदूत थे। अपनी ओजस्विता, सरलता भावमर्मज्ञता और प्रभावात्मकता से उनका काव्य इतना प्राणवान है कि उस युग का शायद ही कोई कवि उनसे अप्रभावित रहा हो।

1.2.2 भारतेन्दु युगीन काव्य प्रवृत्तियाँ

भारतेन्दु हरिश्चंद्र (1850-1885) के युग को हिन्दी साहित्य का एक महत्वपूर्ण मोड़ माना जाता है, जिसमें आधुनिक हिन्दी कविता और नाटक की नींव रखी गई। उनके युग की काव्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं:

1.2.2.1 राष्ट्रीयता

▶ जनमानस में राष्ट्रीय भावना के बीज-वपन

देश के उत्कर्ष-अपकर्ष के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों पर प्रकाश डाल कर इस युग के कवियों ने जनमानस में राष्ट्रीय भावना के बीज-वपन का महत्वपूर्ण कार्य किया। देशभक्ति की जो भावना बाद में मैथिलीशरण गुप्त-कृत 'भारत-भारती' में लक्षित हुई, उसकी प्रेरणा-भूमि भारतेंदु, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास आदि की कविताएँ ही हैं। भारतेंदु की 'विजयिनी विजय वैजयंती', प्रेमघन की 'आनंद अरुणोदय', प्रतापनारायण मित्र की 'महापर्व' और 'नया संवत' तथा राधाकृष्णदास की 'भारत बारहमासा' और 'विनय' शीर्षक कविताएँ देशभक्ति की प्रेरणा से युक्त हैं।

भारतेन्दु जी ने भी अंग्रेज़ों द्वारा किये गये शोषण का चित्र अपनी कविता में इसप्रकार उतारा-

"भीतर भीतर सब रस चूसै
हँसि-हाँसि के तन मन धन मूसै
जाहिर बात न में अति तेज
क्यों सखि साजन नाहिं अंग्रेज़ ।।"

1.2.2.2 भक्ति-भावना

▶ इस काल के भक्तिकाव्य तीन वर्गों में विभाजित

भारतेंदु-युग में परंपरागत धार्मिकता और भक्ति-भावना को अपेक्षतया गौण स्थान प्राप्त हुआ, फिर भी इस काल के भक्तिकाव्य को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : निर्गुण भक्ति, वैष्णव भक्ति और स्वदेशानुराग-समन्वित ईश्वर-भक्ति।

1.2.2.3 श्रृंगारिकता

भारतेंदु और उनके समकालीन कवियों ने रस को काव्य की आत्मा मानकर अपनी रचनाओं में विविध रसानुभुतियों का चित्रण किया है, जिनमें श्रृंगार रस सर्वप्रमुख है। प्रतापनारायण मिश्र के अतिरिक्त प्रायः सभी मुख्य कवियों ने श्रृंगार-वर्णन की ओर उन्मुख रीतिकालीन कवियों का अनुसरण करते हुए सामान्यतः उन्होंने कृष्णकथा के संदर्भ में सौंदर्य का वर्णन किया है; किंतु राधाकृष्णदास की 'राम-जानकी' कविता में मर्यादित श्रृंगार के और हरिनाथ पाठक की 'श्री ललित रामायण' आदि में रामकथा की रसिकतायुक्त अवधारणा मिलती है।

भारतेन्दु की अनेक रचनाओं-प्रेम-सरोवर, प्रेमाश्रु, प्रेम-तरंग, प्रेम-माधुरी आदि-में विशुद्ध श्रृंगार-वर्णन की अभिव्यक्ति हुई है।

▶ भारतेन्दु श्रृंगार वर्णन में अश्लीलता को प्रायः स्थान नहीं दिया

प्रेम के इसी उच्च आदर्श को लेकर भारतेन्दु श्रृंगार वर्णन में प्रवृत्त हुए है। उन्होंने प्रेमालम्बन-नायिका के सौन्दर्य-का आख्यान किया है, किन्तु उसमें स्थूल शारीरिकता एवं अश्लीलता को प्रायः स्थान नहीं दिया गया है। भारतेन्दु के प्रेम-वर्णन में यद्यपि कहीं-कहीं संयोग की घड़ियों का भी प्रवेश हुआ, किन्तु अधिकता उसमें विरह-वर्णन की ही है। उन्होंने वियोग की विभिन्न अनुभूतियों की व्यंजना अत्यन्त स्वाभाविकता से की है।

1.2.2.4 हास्य-व्यंग्य

भारतेंदु-युग में हास्य-व्यंग्यात्मक कविताओं की भी प्रचुर परिमाण में रचना हुई। पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन, सामाजिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों आदि पर व्यंग्य करने के लिए कवियों ने विषय और शैली की दृष्टि से अनेक नये प्रयोग किये। इस दिशा में भारतेंदु का योगदान सर्वाधिक है। अपने नाटकों के प्रगीतों में कहीं-कहीं शिष्ट हास्य को स्थान देने के अतिरिक्त उन्होंने व्यंग्यगीतियों और मुकरियों की भी रचना की है। उनकी व्यंग्यगीतियों को तीन गणों में विभाजित किया जा सकता है- पैरोडी, स्यापा और गाली। 'बंदरसभा' के गीतों की रचना उन्होंने उर्दू-नाटक 'इंदरसभा' के गीतों की पैरोडी के रूप में की है। 'उर्दू का स्यापा', उर्दू-फ़ारसी के 'स्यापा' नामक काव्यरूप की शैली में लिखित है। उर्दू हाय हाय, कहाँ सिधारी हाय हाय' आदि पंक्तियों में उन्होंने 'बनारस अखबार' के समाचार-शीर्षक 'उर्दू मारी गयी' पर व्यंग्य किया है। 'समधिन मधुमास' की रचना 'गाली' नामक व्यंग्यगीति की शैली में की गयी है। 'नये ज़माने की मुकरी' शीर्षक से उन्होंने समकालीन सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों को ले कर कुछ मनोहारिणी मुकरियों की भी रचना की है, जिन पर अमीर खुसरो की शैली की स्पष्ट छाप है।

▶ व्यंग्यगीतियों को तीन गणों में विभाजित किया जा सकता है

इस काल के अन्य हास्य-व्यंग्यकारों में प्रेमघन और प्रतापनारायण मिश्र प्रमुख हैं। 'प्रेमघन-सर्वस्व' का 'हास्य-बिंद' शीर्षक प्रकरण समसामयिक स्थितियों के विनोदपूर्ण वर्णन और उनकी दृष्टि से ध्यान आकृष्ट करता है। प्रतापनारायण मिश्र की 'तृप्यन्ताम', 'हरगंगा' और 'बुढापा' और 'ककाराष्टक' शीर्षक कविताएँ भी अपनी नयी तर्ज के लिए प्रसिद्ध हैं। अंग्रेजी-शिक्षा-प्राप्त नवयुवकों द्वारा भारतीय रीति-नीति को त्याग कर पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण करने पर उन्होंने अत्यंत मार्मिक व्यंग्य किया है।

▶ अन्य हास्य-व्यंग्यकारों में प्रेमघन और प्रतापनारायण मिश्र प्रमुख

जग जानें इंगलिश हमैं, वाणी वस्त्रहिं जोय।
मिटै बदन कर श्याम रंग, जन्म सुफल तब होय

इन प्रवृत्तियों ने भारतेन्दु युग को हिन्दी साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया और आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में अहम भूमिका निभाई।

1.2.3 भारतेन्दु मंडल के साहित्यकार

▶ 'भारतेन्दु-मंड़ल'

भारतेन्दु-मंडल के अन्य कवि-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रभाव से उनके युग में साहित्यकारों का एक ऐसा मंडल तैयार हो गया था जिसने काव्यादर्श, विषय-वस्तु, भाव एवं शैली की दृष्टि से भारतेन्दु का अनुकरण-अनुसरण किया; इस मंडल को 'भारतेन्दु-मंड़ल' की संज्ञा दी जा सकती है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, राधा कृष्णदास, अम्बिकादत्त व्यास, बालमुकुन्द गुप्त आदि का नाम उल्लेखनीय है।

1.2.3.1 बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

भारतेंदु-मंडल के कवियों में प्रेमघन (1855-1923) को प्रमुख स्थान है। उनका जन्म उत्तरप्रदेश के ज़िला मिर्जापुर के एक संपन्न ब्राह्मणकुल में हुआ था। भारतेंदु की भांति उन्होंने भी पद्य और गद्य दोनों में विपुल साहित्य-रचना की है। साप्ताहिक 'नगरी-नीरद' और मासिक 'आनंदकादंबिनी' के संपादन द्वारा उन्होंने तत्कालीन पत्रकारिता को नयी दिशा दी थी। 'अब्र' नाम से उन्होंने उर्दू में कुछ कविताएँ लिखी हैं। 'जीर्ण जनपद', 'आनंद अरुणोदय', 'हार्दिक हर्षादर्श', 'मयंक-महिमा', 'अलौकिक लीला', 'वर्षा-विंदु' आदि उनकी प्रसिद्ध काव्यकृतियाँ हैं, जो अन्य रचनाओं के साथ 'प्रेमघन-सर्वस्व' के प्रथम भाग में संकलित हैं। भारतेंदु के काव्य में प्राप्त होने वाली सभी प्रवृत्तियाँ प्रेमघन की रचनाओं में भी उपलब्ध हैं। 'लालित्य-लहरी' के वंदना संबंधी दोहों और 'बृजचंद-पंचक' में उनकी भक्ति-भावना व्यक्त हुई है, तो उनकी श्रृंगारिक कविताएँ भी रसिकता-संपन्न हैं। उनका मुख्य क्षेत्र जातीयता, समाजदशा और देशप्रेम की अभिव्यक्ति है। यद्यपि उन्होंने राजभक्ति संबंधी कविताओं की भी रचना की है, तथापि राष्ट्रीय भावना की नयी लहर से उनका अविच्छिन्न संबंध था। देश की दुरवस्था के कारणों और देशोन्नति के उपायों का जितना वर्णन उन्होंने किया है, उतना भारतेंदु की कविताओं में भी नहीं मिलता। इस संदर्भ में नयी-से-नयी घटना को भी वे कविता का विषय बना लेते थे।

▶ बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन ने 'अब्र' नाम से उर्दू में लिखा

1.2.3.2 प्रतापनारायण मिश्र

ब्राह्मण-संपादक प्रतापनारायण मिश्र (1856-1894) का जन्म बेजेगांव, ज़िला उन्नाव में हुआ था। पिता के कानपुर चले जाने के कारण उनकी शिक्षा-दीक्षा वहीं हुई। ज्योतिष का पैतृक व्यवसाय न अपना कर वे साहित्य-रचना की ओर प्रवृत्त हुए। कविता, निबंध और नाटक उनके मुख्य रचनाक्षेत्र हैं। कानपुर के रंगमंच और वहाँ की साहित्यिक संस्था 'रसिक-समाज' से उनका निकट का संबंध था। 'प्रेमपुष्पावली', 'मन की लहर', 'लोकोक्ति शतक', 'तृप्यन्ताम्' और 'शृंगार-विलास' उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'प्रताप-लहरी' उनकी प्रतिनिधि कविताओं का संकलन है। भारतेंदु की भांति उन्होंने भी विभिन्न विषयों को ले कर काव्य-रचना की है, किंतु भक्ति और प्रेम की तुलना में समसामयिक देश-दशा और राजनीतिक चेतना का वर्णन उन्होंने अधिक मनोयोग से किया है। इस संदर्भ में उनकी ये पंक्तियाँ कितनी सटीक और व्यंग्यात्मक हैं:

▶ प्रतापनारायण मिश्र को साहित्यिक संस्था 'रसिक-समाज' से निकट का संबंध

पढ़ि कमाय कीन्हों कहा, हरे न देश कलेस।

जैसे कन्ता घर रहे, तैसे रहे विदेस।

वस्तुतः मिश्र जी का शैली सर्वत्र अत्यन्त सरल, रोचक एवं प्रभावोत्पादक है। इन्होंने जनता के लिए लिखा था, अतः इनकी बोली और ढंग दोनों जनता के अनुकूल हैं। अपना कथ्य जनता तक पहुँचाने के लिए इन्होंने लोक गीतों की शैली एवं तर्ज़ को भी अपनाया है; विशेषतः इनकी लवानियाँ तो इसी प्रकार की है। इस दृष्टि से मिश्र जी मार्क्सवाद की बिना दीक्षा लिए तथा प्रगतिवाद का बिल्ला लगाये बिन भी पूरे जनवादी कवि थे। इनकी 'हरगंगा', 'तृप्यन्ताम्', 'बुढ़ापा' आदि कविताएँ हास्य-व्यंग्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं तथा 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान' में 'हिन्दी की हिमायती' बड़े सुन्दर ढंग से हुई है। वस्तुतः मिश्र जी अत्यन्त प्रतिभाशाली साहित्यकार थे।

▶ 'हरगंगा', 'तृप्यन्ताम्', 'बुढ़ापा' आदि कविताएँ हास्य-व्यंग्य का उत्कृष्ट उदाहरण

1.2.3.3 ठाकुर जगमोहन सिंह

ठाकुर जगमोहन सिंह (1857-1899) मध्यप्रदेश की विजय राघवगढ़ रियासत के राजकुमार थे। उन्होंने काशी में संस्कृत और अंग्रेज़ी की शिक्षा प्राप्त की। वहाँ रहते हुए उनका भारतेंदु हरिश्चंद्र से संपर्क हुआ, किंतु भारतेंदु की रचनाशैली की उन पर वैसी छाप नहीं मिलती, जैसी प्रेमघन और प्रतापनारायण मिश्र के कृतित्व में लक्षित होती है। श्रृंगार-वर्णन और प्रकृति-सौंदर्य की अवधारणा उनकी मुख्य काव्य-प्रवृत्तियाँ हैं, जिन्हें उनकी काव्य-कृतियों- 'प्रेमसंपत्तिलता' (1885), 'श्यामालता' (1885), 'श्यामा-सरोजिनी' (1886) और 'देवयानी' (1886)- में सर्वत्र पाया जा सकता है। 'श्यामास्वप्न' शीर्षक उपन्यास में भी उन्होंने प्रसंगवश कुछ कविताओं का समावेश किया है। उनके द्वारा अनूदित 'ऋतुसंहार' और 'मेघदूत' भी ब्रजभाषा की सरस कृतियाँ हैं। जगमोहन सिंह में काव्य-रचना की स्वाभाविक प्रतिभा थी और वे भावुक मनोवृत्ति के कवि थे। कल्पना-लालित्य, भावुकता, चित्रशैली और सरस-मधुर ब्रजभाषा उनकी रचनाओं की अन्यतम विशेषताएँ हैं। अलंकारों का स्वाभाविक नियोजन भी उनमें भारतेंदुयुगीन कवियों का अपेक्षा अधिक दृष्टिगत होता है।

▶ ठाकुर जगमोहन सिंह का प्रसिद्ध उपन्यास 'श्यामास्वप्न'

1.2.3.4 अंबिकादत्त व्यास

कविवर दुर्गादत्त व्यास के पुत्र अंबिकादत्त व्यास (1858-1900) : काशी-निवासी सुकवि थे। वे संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान थे और दोनों भाषाओं में साहित्य-रचना करते थे। 'पीयूष-प्रवाह' के संपादक के रूप में भी उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी काव्यकृतियों में 'पावस पचासा' (1886), 'सुकवि-सतसई' आदि रचनाएँ ललित ब्रजभाषा में और 'हो हो होरी' (1891) विशेष उल्लेखनीय हैं। खड़ीबोली में 'कंस वध' (अपूर्ण) शीर्षक प्रबंधकाव्य की रचना भी आरंभ की थी, लेकिन केवल तीन सर्ग ही लिखे जा सके। 'बिहारी-बिहार' उनकी एक अन्य प्रसिद्ध रचना में महाकवि बिहारी के दोहों का कुंडलिया छंद में भावविस्तार किया गया है। उनकी समस्यापूर्तियाँ भी उपलब्ध होती है। अपने नाटकों (भारत-सौभाग्य, गोसंकट नाटक) में उन्होंने कुछ गेय पदों का समावेश किया है। उन्होंने सरल और कोमलकांत पदावली के प्रयोग को वरीयता दी है। 'सतसई' के निम्नलिखित दोहों में स्वच्छ सरस ब्रजभाषा में श्रीकृष्ण के प्रति भाव-निवेदन गया है:

▶ 'सुकवि-सतसई' की रचना ललित ब्रजभाषा में

सुमिरत छवि नन्दनन्द की, बिसरत सब दुखदन्द।
होत अमन्द अनन्द हिय, मिलत मनहुं सुख कन्द।।
रसना हू बस ना रहत, बरनि उठत करि ज़ोर।
नन्दनन्द मुखचन्द पै, चितहू होत चकोर।।

1.2.3.5 राधाकृष्णदास

भारतेंदु हरिश्चंद्र के फुफेरे भाई राधाकृष्णदास (1865-1907) बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कविता के अतिरिक्त उन्होंने नाटक, उपन्यास और आलोचना के क्षेत्रों में उल्लेखनीय साहित्य-रचना की है। उनकी कविताओं में भक्ति, श्रृंगार और समकालीन सामाजिक राजनीतिक चेतना को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। 'भारत-बारहमासा' और 'देश-दशा' समसामायिक भारत के विषय में उनकी प्रसिद्ध कविताएँ हैं। कुछ कविताओं में प्रसंगवश प्रकृति के सुंदर चित्र भी उकेरे गये हैं। राधाकृष्ण-प्रेम के निरूपण में भक्तिकाल और रीतिकाल

▶ भारतेंदु हरिश्चंद्र के फुफेरे भाई

की वर्णन-परंपराओं के उन पर समान प्रभाव पड़ा है।

1.2.3.6 बालकुमुन्द गुप्त (1865-1607 ई.)

▶ भारतेन्दु को छोड़कर अन्य कवियों में सबसे अधिक सशक्त एवं प्रभावशाली

रचना-काल की दृष्टि से भारतेन्दु- मंडल के अन्तिम कवियों में से हैं किन्तु काव्यत्व की दृष्टि से ये भारतेन्दु को छोड़कर अन्य रचनाकारों से सबसे अधिक सशक्त एवं प्रभावशाली सिद्ध होते हैं। अपने युग के प्रायः सभी प्रचलित विषयों पर इन्होंने विभिन्न कविताएँ लिखी हैं, फिर भी समाज की आर्थिक स्थिति एवं राजनीतिक पराधीनता की ओर इनका विशेष ध्यान रहा है।

भारतेन्दु मंडल का प्रभाव हिन्दी साहित्य में अमूल्य रहा और इसने आधुनिक हिन्दी साहित्य की दिशा और स्वरूप को आकार दिया।

इस युग में यों तो शताधिक कवियों ने विविध प्रवृत्तियों के अंतर्गत काव्य-रचना की है, किंतु उनमें भारतेंदु हरिश्चंद्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, जगमोहन सिंह, अंबिकादत्त व्यास और राधाकृष्णदास ही प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त श्रीधर पाठक (1859-1928), बालमुकुंद गुप्त (1865-1907) और हरिऔध (1865-1945) की - कविताओं का प्रकाशन भी इस युग में आरंभ हो गया था, किंतु इनके कृतित्व का बहुल अंश परवर्ती युग में ही सामने आया।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

भारतेन्दु युग नई चेतना एवं नव जागृति का युग था। इस युग के साहित्यकारों ने अनेक सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों को जन्म दिया, जिन्होंने आगे चलकर और अधिक गम्भीर रचनाओं से अपने अस्तित्व को रूपायित किया।

भारतेन्दु मंडल 19वीं सदी के हिन्दी साहित्य में एक महत्वपूर्ण साहित्यिक समूह था, जिसे भारतेन्दु हरिश्चंद्र के नेतृत्व में स्थापित किया गया था। इस मंडल का उद्देश्य हिन्दी साहित्य की उन्नति, सामाजिक जागरूकता, और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण के साथ स्वतंत्रता आन्दोलन को शक्ति प्रदान करना था।

वस्तुतः समग्र रूप में यह युग ऐसी नवीन प्रवृत्तियों के उन्मेष का युग है जिनका विकास परवर्ती युग में हुआ। संक्षेप में कहा जाय तो एक ओर तो इस युग के कवियों ने परम्परागत भक्ति एवं श्रृंगार की भावनाओं को अपेक्षाकृत अधिक विकसित एवं परिष्कृत रूप में व्यक्त किया तो दूसरी ओर उन्होंने राष्ट्रीयता, देश-भक्ति, समाज-सुधार, सांस्कृतिक-जागरण, विदेशी संस्कृति के दूषित प्रभाव के विरोध की प्रवृत्तियों को पल्लवित किया। राष्ट्रीयता के क्षेत्र में इन्होंने केवल स्वदेश के अतीत का गौरव-गान किया और वर्तमान दुर्दशा पर आँसू बहाये अपितु भविष्य के लिए भी परिवर्तन की पृष्ठभूमि या भावभूमि निर्मित की।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. भारतेन्दु युग की परिस्थितियों पर टिप्पणी लिखिए।
2. भारतेंदु काल एवं नवजागरण विषय पर टिप्पणी लिखिए।
3. भारतेन्दु युगीन प्रमुख रचनाकार एवं रचनाएँ विषय पर आलेख तैयार कीजिए।
4. भारतेन्दु युगीन काव्य की विशेषताएँ पर टिप्पणी लिखिए।
5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की राष्ट्रीय चेतना पर टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
5. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
6. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय
7. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
8. हिन्दी काव्य का इतिहास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
9. हिन्दी कविता का प्रवृत्तिगत इतिहास - पूरणचंद टण्डन, विनीता कुमारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रामचंद्र शुक्ल
4. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 3

भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य की अन्य विधाएँ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- भारतेन्दु युग के नाटक एवं नाटककारों से परिचय प्राप्त करता है
- भारतेन्दु युग के उपन्यास एवं उपन्यासकार से परिचय प्राप्त करता है
- भारतेन्दु युग की कहानी एवं कहानीकारों से परिचय प्राप्त करता है
- भारतेन्दु युग की अन्य गद्य विधाओं से भी परिचय प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

भारतेंदु-युग हिन्दी-गद्य के बहुमुखी विकास का युग है। इसके पूर्व जिन गद्य-लेखकों- राजा लक्ष्मणसिंह (1826-1896), राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' (1823-1895), नवीनचंद्र राय(1837-1890) और श्रद्धाराम फुल्लौरी का उल्लेख इतिहास ग्रंथों में किया गया है, उनकी कृतियों का साहित्यिक महत्व नहीं के बराबर है। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने छात्रों के लिए पाठ्य पुस्तकें तैयार कीं, नवीनचंद्र राय के साहित्य की मूल प्रेरणा धार्मिक है और श्रद्धाराम फुल्लौरी भी धार्मिक व्यक्ति थे। राजा लक्ष्मणसिंह का 'अभिज्ञानशाकुंतल' का अनुवाद (1863) अवश्य एक उत्तम अनूदीत-कृति है, किंतु इसका प्रचार इसकी शुद्ध भाषानीति के कारण ही हुआ। वस्तुतः उपर्युक्त लेखकों का महत्व खड़ीबोली-गद्य के स्वरूप-विकास के क्रम में अदा की गयी भूमिकाओं के कारण है। इस युग में मुख्य संघर्ष हिन्दी की स्वीकृति और प्रतिष्ठा को ले कर था। फ़ारसी के स्थान पर हिन्दी को प्रतिष्ठा दिलाने के लिए किये गये प्रयत्न ही जागरण के आधार बने। इस युग के दो प्रसिद्ध लेखकों-राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह ने हिन्दी के स्वरूप- निर्धारण के प्रश्न पर दो सीमांतों का अनुगमन किया। राजा लक्ष्मणसिंह ने विशुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का समर्थन किया और राजा शिवप्रसाद ने हिन्दी का गंवारूपन दूर करते-करते उसे उर्दू-ए-मुअल्ला बना दिया। इन दोनों के बीच सर्वमान्य हिन्दी-गद्य की प्रतिष्ठा कर गद्य-साहित्य के विविध विधाओं के विकास का ऐतिहासिक कार्य भारतेंदु-युग में पूरा हुआ। भारतेंदु-युग में अर्थात उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में पूरे देश में सांस्कृतिक जागरण की लहर दौड़ चुकी थी।

भारतेंदुकालीन साहित्य सांस्कृतिक जागरण का साहित्य है। इस युग में उदित गद्य-साहित्य की प्रत्येक विधा के परिचय से विशेषतः इस सांस्कृतिक जागरण का स्वरूप स्पष्ट होता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

भारतेन्दु युग- नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आत्मकथा, संस्मरण

Discussion / चर्चा

आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य का विकास पद्य के साथ-साथ गद्य विधाओं के रूप में भी हुआ। इससे पूर्व साहित्य केवल पद्य में उपलब्ध होता था, अतः हिन्दी गद्य का विकास आधुनिक काल की प्रमुख उपलब्धि कही जा सकती है। इस काल में गद्य को दृष्टिगत रखकर ही आचार्य शुक्ल ने इसे गद्यकाल की संज्ञा से विभूषित किया था।

1.3.1 नाटक

हिन्दी नाटकों का आरंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र से ही स्वीकार किया जाना चाहिए। इसके पूर्व प्राणचंद चौहान-कृत 'रामायण महानाटक' (1610), लछिराम-कृत 'करुणाभरण' (1657), नेवाज-कृत 'शकुंतला' (1680), महाराज विश्वनाथ सिंह-कृत 'आनंद रघुनंदन' (अनुमानतः 1700 ई.), रघुराय नागर-कृत 'सभासार' (1700), उदय-कृत 'रामकरुणाकर' एवं 'हनुमान नाटक' (1840) का उल्लेख मिलता है, वे वस्तुतः नाटक नहीं थे। ये पद्यात्मक प्रबंध थे जिनमें काव्यगुणों का भी अभाव है। इनमें 'आनंद रघुनंदन' ही ऐसी रचना है, जिसमें कुछ नाट्य-संबंधी तत्व शामिल थे, इसलिए विद्वानों ने इसे हिन्दी का प्रथम नाटक माना है, किंतु इसमें नाट्यदृष्टि से अनेक दोष हैं। अन्य पूर्ववर्ती कृतियों में अमानतकृत 'इंदरसभा' (1853) को भी गीतिनाट्य (ऑपेरा) होने पर भी हिन्दी के साहित्यिक नाटकों की परंपरा में नहीं जोड़ा जा सकता। यह नवाब की महफ़िल की नाटकीय योजना मात्र है, न इसमें कथा-तत्व है और न ही चरित्र- विकास।

▶ आनंद रघुनंदन - हिन्दी का प्रथम नाटक

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हिन्दी का पहला नाटक अपने पिता गोपालचंद्र द्वारा रचित 'नहुष' को माना, लेकिन यह ब्रजभाषा के पुराने पद्य-नाटकों की परंपरा में आता है। भारतेंदु का पहला नाटक 'विद्यासुंदर' भी एक बंगाली नाटक का छायानुवाद था। इसके बाद उन्होंने कई मौलिक और अनुवादित नाटक लिखे, जैसे 'पाखंड-विडंबन', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'धनंजय-विजय', 'मुद्राराक्षस', और 'सत्य-हरिश्चंद्र'। इन नाटकों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों और धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों पर तीखा व्यंग्य किया। 'विषस्य विषमौषधम्' में देशी नरेशों की दुर्दशा और 'भारत-दुर्दशा' में अंग्रेजों के दमनकारी व्यवहार का चित्रण किया गया है।

▶ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रथम नाटक 'नहुष' माना

भारतेन्दु हरिश्चंद्र को संस्कृत, प्राकृत, बंगला और अंग्रेजी नाटक-साहित्य का गहरा ज्ञान था और उन्होंने इन भाषाओं से अनुवाद किए। उन्होंने नाट्य-कला के सिद्धांतों का भी अध्ययन किया और अपने नाटकों में अभिनय भी किया। इस काल के नाटक पौराणिक, ऐतिहासिक, रोमानी, सामयिक, प्रहसन, और प्रतीकवादी श्रेणियों में बंटे थे। इन नाटकों का उद्देश्य समाज सुधार और राष्ट्रीय भावना को जागरूक करना था। ऐतिहासिक नाटकों में भारतेन्दु का 'नीलदेवी', श्रीनिवासदास का 'संयोगिता स्वयंवर', और राधाकृष्णदास का 'महाराणा प्रताप' प्रमुख हैं। 'महाराणा प्रताप' को विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई।

▶ श्रीनिवासदास - कृत 'संयोगिता स्वयंवर'

प्रेमप्रधान रोमानी नाटकों में श्रीनिवासदास-कृत 'रणधीर-प्रेममोहिनी'(1877) और 'तप्ता संवरण'(1883), खड्गबहादुर मल्ल-कृत 'रति-कुसुमायुध'(1885), किशोरीलाल गोस्वामी- कृत 'प्रणयिनी परिणय'(1890) और 'मयंक मंजरी'(1891), तथा गोकुलनाथ शर्मा-कृत 'पुष्पवती' (1899) उल्लेखनीय हैं। इनमें 'रणधीर-प्रेममोहिनी' हिन्दी का पहला दुःखांत नाटक है।

▶ 'रणधीर-प्रेममोहिनी' हिन्दी का पहला दुःखांत नाटक

सामयिक उपादानों को ले कर लिखे गये नाटकों में भारतेंदु-कृत 'भारतदुर्दशा', बालकृष्ण भट्ट-कृत 'नयी रोशनी का विष' (1884), खड्गबहादुर मल्ल-कृत 'भारत भारत' (1985), अंबिकादत्त व्यास-कृत 'भारत-सौभाग्य' (1887), राधाकृष्णदास-कृत 'दुःखिनी बाला' (1989), गोपालराम गहमरी-कृत 'देश-दशा' (1892), काशीनाथ खत्री-कृत 'विधवा-विवाह' और देवकीनंदन त्रिपाठी-कृत 'भारतहरण' (1899) उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में देश की तत्कालीन दुर्दशा का चित्र खींचा गया है और समाज की समस्याओं को प्रत्यक्ष करके उनके मूल में काम करने वाली बुराइयों को दूर करने की प्रेरणा दी गयी है।

▶ इन नाटकों में देश की तत्कालीन दुर्दशा का चित्र खींचा

आलोच्य युग में कई सफल प्रहसन लिखे गए, जिनमें भारतेंदु का 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' और 'अंधेर नगरी', बालकृष्ण भट्ट का 'जैसा काम वैसा परिणाम' और 'आचार विडंबन', विजयानंद त्रिपाठी का 'महाअंधेर नगरी', प्रतापनारायण मिश्र का 'कलिकौतुक रूपक', और राधाचरण गोस्वामी का 'बूढ़े मुंह मुंहासे' शामिल हैं। इन प्रहसनों ने हास्य और व्यंग्य के माध्यम से धार्मिक पाखंड और सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया।

▶ भारतेंदु-कृत प्रमुख प्रहसन 'अंधेर नगरी'

प्रतीकवादी नाटकों की रचना इस काल में अधिक नहीं हुई। कमलाचरण मिश्र-कृत 'अद्भुत नाटक' (1885), रतनचंद्र-कृत 'न्याय सभा' (1892) और शंकरानंद-कृत 'विज्ञान' (1897) इस दिशा में एकमात्र उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इन नाटकों में भावों एवं मनोवृत्तियों को ही पात्रों का रूप दिया गया है।

वस्तुतः भारतेंदु काल में नाटकों की रचना का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ ही जनमानस को जाग्रत करना और उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न करना था। इन नाटकों ने सत्य, न्याय, और मानवीय मूल्यों को बढ़ावा दिया, प्राचीन संस्कृति को सम्मानित किया, और समाज में सुधार का प्रयास किया। भारतेंदु ने संस्कृत-नाट्यशास्त्र की मर्यादा को बनाए रखते हुए पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के तत्वों भी स्वीकार किया और दुःखांत नाटकों की परंपरा शुरू की। उन्होंने पारसी थियेट्रिकल कंपनियों के व्यावसायिक दृष्टिकोण की आलोचना की और सांस्कृतिक, साहित्यिक नाटकों को बढ़ावा दिया। इसके बाद द्विवेदी-युग में पारसी नाटकों की लोकप्रियता बढ़ गई।

▶ भारतेंदु ने पारसी थियेट्रिकल कंपनियों के व्यावसायिक दृष्टिकोण की आलोचना की

भारतेंदु काल में साहित्यकारों ने मुख्यतः संस्कृत, बंगला, और अंग्रेजी भाषाओं से नाटकों का अनुवाद और रूपांतरण किया। भारतेंदु ने इस दिशा में मार्गदर्शन किया, जिससे नाटक-साहित्य में नई दृष्टि आई और हिन्दी साहित्यकारों को व्यापक अनुभव मिला। संस्कृत से भवभूति और कालिदास के नाटकों के अनुवाद हुए, जिसमें राजा लक्ष्मणसिंह का 'अभिज्ञानशाकुन्तल' प्रमुख था। बंगला से माइकेल मधुसूदन के नाटकों के अनुवाद हुए, और अंग्रेजी से शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद ने हिन्दी नाटक को प्रभावित किया। पारसी कंपनियों द्वारा शेक्सपियर के उर्दू अनुवाद ने इन नाटकों के प्रचार में योगदान दिया। इसी प्रभाव के तहत लाला श्रीनिवासदास ने 'रणधीर प्रेममोहिनी' नामक दुःखांत नाटक लिखा।

▶ राजा लक्ष्मणसिंह ने 'अभिज्ञानशाकुन्तल' का अनुवाद किया

1.3.2 उपन्यास

भारतेंदु-युग में लेखकों को उपन्यास-रचना की प्रेरणा बंगला और अंग्रेज़ी के उपन्यासों से प्राप्त हुई। अंग्रेज़ी ढंग का पहला मौलिक उपन्यास लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु' (1882) माना जाता है। इसके पूर्व श्रद्धाराम फुल्लौरी ने 'भाग्यवती' (1877) शीर्षक लघु सामाजिक उपन्यास लिखा 'भाग्यवती' की रचना के पूर्व बंगला में सामाजिक और ऐतिहासिक

दोनों ही प्रकार के अच्छे उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। हिन्दी में मौलिक उपन्यासों की रचना आरंभ होने के पूर्व बंगला उपन्यासों के अनुवादों को लोकप्रियता मिल चुकी थी। हिन्दी के भारतेंदुयुगीन मौलिक उपन्यासों पर संस्कृत के कथा-साहित्य एवं परवर्ती नाटक-साहित्य के प्रभाव के साथ ही बंगला-उपन्यासों की छाप भी लक्षित की जा सकती है। इस युग के उपन्यासकारों में लाला श्रीनिवासदास (1851-1887), किशोरीलाल गोस्वामी (1865-1932), बालकृष्ण भट्ट (1844-1914), ' ठाकुर जगमोहन सिंह (1857-1899), राधाकृष्णदास (1865-1907), लज्जाराम शर्मा (1863-1931), देवकीनंदन खत्री (1861-1913) और गोपालराम गहमरी (1866-1946) उल्लेखनीय हैं।

▶ श्रद्धाराम फुल्लौरी ने 'भाग्यवती' लघु सामाजिक उपन्यास लिखा

भारतेंदु-काल में सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी-ऐयारी, जासूसी तथा रोमानी उपन्यासों की रचना-परंपरा का सूत्रपात हुआ। यह परंपरा आगे चल कर द्विवेदी-युग में अधिक विकसित और पुष्ट हुई। आलोच्य युग के सामाजिक उपन्यासों में 'भाग्यवती' और 'परीक्षागुरु' के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट-कृत 'रहस्यकथा' (1879), 'नूतन ब्रह्मचारी' (1886) और 'सौ अजान एक सुजान' (1892), राधाकृष्णदास कृत 'निस्सहाय हिंदू' (1890), लज्जाराम शर्मा-कृत 'धूर्त रसिकलाल' (1890) और 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' (1899), तथा किशोरीलाल गोस्वामी-कृत 'त्रिवेणी वा सौभाग्यश्री' (1890) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

▶ बालकृष्ण भट्ट-कृत 'रहस्यकथा'

सामाजिक उपन्यासों की तुलना में आलोच्य युग में ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम लिखे गये। इस क्षेत्र में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम ही उल्लेखनीय है, किंतु उनके 'लवंगलता' (1890) उपन्यास को ऐतिहासिक उपन्यास की मर्यादा देना उचित नहीं है। वस्तुतः इस युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की आकांक्षा को पूर्ति बंकिम के ऐतिहासिक उपन्यासों के अनुवादों से हुई।

तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों में देवकीनंदन खत्री-कृत 'चंद्रकांता' (1882), 'चंद्रकांता-संतति' (1888), वीरेंद्र वीर' (1895) और 'कुसुमकुमारी' (1899) तथा हरेकृष्ण जौहर-कृत 'कुसुमलता' (1899) उल्लेखनीय हैं। तिलस्मी उपन्यास सामान्य जनता में खूब लोकप्रिय हुए थे। तिलस्मी उपन्यासों में 'चंद्रकांता संतति' की ऐसी धूम मची कि न जाने कितने उर्दू जीवी लोगों ने हिन्दी सीखी। इस युग के जासूसी उपन्यासों में गोपालराम गहमरी कृत- 'अद्भुत लाश' (1896)और 'गुप्तचर' (1889) उल्लेखनीय हैं। रोमानी उपन्यासों में ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामास्वान' (1888) प्रमुख है।

▶ तिलस्मी उपन्यास सामान्य जनता में खूब लोकप्रिय हुए

उपर्युक्त उपन्यासों में सबसे महत्वपूर्ण एवं सशक्त धारा उन सामाजिक उपन्यासों की है जिनका श्रीगणेश 'परीक्षागुरु' से हुआ था। अन्य उपन्यासों का महत्व इतना ही है कि उनसे सामान्य जनता में हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ी। इस युग के सर्वप्रधान उपन्यास-लेखक किशोरीलाल गोस्वामी माने गये हैं। गोस्वामी जी ने मानवीय प्रेम के विविध पक्षों के उद्घाटन में ही शक्ति का अपव्यय किया। वस्तुतः जीवन के यथार्थ को कला में ढालने वाले उपन्यासों का वातावरण अभी नहीं बन पाया था। इस शैली का आरंभ आगे चल कर द्विवेदी-युग में हुआ।

▶ इस युग के सर्वप्रधान उपन्यास- लेखक किशोरीलाल गोस्वामी माने गये

1.3.3 कहानी

आलोच्य युग में आधुनिक कलात्मक कहानी का आरंभ नहीं हुआ। कहानियों के नाम पर जो प्रकाशित संग्रह प्राप्त हुए हैं, जैसे मुंशी नवलकिशोर द्वारा संपादित 'मनोहर कहानी'

(1880) में संकलित एक सौ कहानियाँ, अंबिकादत्त व्यास-कृत 'कथा-कुसुम-कलिका' (1888), राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद-कृत 'वामा-मनोरंजन' (1886) और चंडीप्रसाद सिंह-कृत 'हास्य-रतन' (1886), वे लोकप्रचलित तथा इतिहास-पुराण-कथित शिक्षा, नीति या हास्यप्रधान कथाएँ हैं, जिन्हें तत्कालीन लेखकों ने स्वयं लिख कर या लिखवाकर संपादन करके प्रकाशित करा दिया। कहानी के नाम पर जिन स्वप्न-कथाओं का उल्लेख किया गया है, वे वस्तुतः कथात्मक निबंध हैं। इनका आरंभ कथात्मक पद्धति पर हुआ है, किंतु आगे चल कर अवसर मिलते ही तत्कालीन समाज की विकृतियों का वर्णन आरंभ हो गया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र और बालकृष्ण भट्ट की स्वप्नकथाओं, कहानी और निबंध के बीच की रचनाएँ हैं। कहानियों के अभाव में तत्कालीन पाठक लघु उपन्यासों, मध्यकालीन प्रेमकथाओं के गद्यात्मक रूपांतरों, 'बैताल पच्चीसी' और 'सिंहासन- बतीसी' की कहानियों, रसात्मक लोककथाओं और इन्हीं स्वप्नकथाओं से अपनी मानसिक तुष्टि कर लेता था।

▶ स्वप्नकथाओं, कहानी और निबंध के बीच की रचनाएँ है

1.3.4 गद्य-साहित्य की अन्य विधाएँ

हिन्दी-गद्य-साहित्य की प्रमुख एवं प्रचलित विधाओं के विकास में ही नहीं, अपितु गौण समझी जाने वाली जीवनी, यात्रावृत्त सदृश विधाओं के विकास में भी भारतेंदु हरिश्चंद्र तथा उनके समकालीन लेखकों का योगदान उल्लेखनीय है।

1.3.4.1 निबंध

भारतेन्दु युग में सबसे अधिक सफलता निबंध लेखन में प्राप्त हुई। निबंधों का संबंध पत्रिकाओं से सीधे जुड़ा हुआ था। लेखकों के सामने अनंत विषय थे। राजनीति, समाजसुधार, पर्व, अध्यात्म आर्थिक दुर्दशा, अतीत का गौरव, महापुरुषों को जीवनियाँ आदि विषयों पर विचार करते हुए भारतेंदु-युग के लेखकों ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से निबंध साहित्य को समृद्ध किया। वस्तुतः अन्य गद्य-विधाओं में विचारों को सीधे व्यक्त करने की छूट नही होती, जबकि निबंधों में शैली के आकर्षण एवं कथन की भंगिमा के वैशिष्ट्य को बनाये रख कर भी किसी विषय पर सीधे बात की जा सकती है। निबंधों का आरंभ भारतेंदु से ही मानना चाहिए। बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ने इस गद्यविधा को और भी विकसित किया तथा इन्हें हिन्दी का स्टील और एडीसन' कहा है। इसमें संदेह नहीं कि भट्ट जी और मिश्र जी हिन्दी के सच्चे आत्मव्यंजक निबंधकार थे। इस युग के प्रमुख निबंधकार थे - भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी, काशीनाथ खत्री (1849-1891)आदि। उपर्युक्स सभी निबंधकारों का संबंध किसी-न-किसी पत्र-पत्रिका से था।

▶ लेखकों ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से निबंध साहित्य को समृद्ध किया

भारतेंदु ने 'हरिश्चंद्र मैगजीन', प्रताप नारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण', बालकृष्णा भट्ट ने 'हिन्दी-प्रदीप', बदरीनारायण चौधरी ने आनंदकादम्बनी, श्रीनिवासदास ने 'सदादर्श' (1874) और राधाचरण गोस्वामी ने 'भारतेंदु' का संपादन किया था। अतः भारतेंदु-युग के निबंध मुख्य रूप से मासिक और पाक्षिक पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित हुए थे। उनका उद्देश्य उपदेश, उद्‌बोधन, आह्वान, व्याख्या, व्यंग्य-हास्य आदि अनेक माध्यमों से जनता को शिक्षित और प्रबुद्ध करना था।

▶ राधाचरण गोस्वामी ने 'भारतेंदु' का संपादन किया

भारतेंदु के सहयोगी लेखक स्थायी विषयों के साथ-साथ समाज की जीवनचर्या, ऋतुचर्या, पर्व त्योहार आदि पर भी साहित्यिक निबंध लिखते आ रहे थे। उनके लेखों में देश की

▶ साहित्यिक निबंध

परंपरागत भावनाओं और उमंगों का प्रतिबिंब रहा करता था। होली, विजयदशमी, दीपावली, रामलीला इत्यादि पर उनके लिखे प्रबंधों में जनता के जीवन का रंग पूरा-पूरा रहता था। इसके लिये वे वर्णनात्मक और भावात्मक दोनों विधानों का बड़ा सुंदर मेल करते थे। यह सामाजिक सजीवता द्वितीय उत्थान के लेखकों में वैसी न रही।

▶ 'बेकन विचार-रत्नावली', 'निबंधमालादर्श' आदि अनुवाद ग्रंथ प्रकाशित हुए

इस उत्थान काल के आरंभ में ही निबंध का रास्ता दिखानेवाले दो अनुवाद ग्रंथ प्रकाशित हुए- 'बेकन विचार-रत्नावली' (अग्रेज़ी के निबंधलेखक लार्ड बेकन के कुछ निबंधों का अनुवाद) और 'निबंधमालादर्श' (चिपलूणकर के मराठी निबंधों का अनुवाद)। पहली पुस्तक पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी की ही है और दूसरी पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री की। उस समय आशा हुई थी कि इन अनुवादों के पीछे वे दोनों महाशय शायद उसी प्रकार के मौलिक निबंध लिखने में हाथ लगाएँ पर ऐसा न हुआ। मासिक पत्रिकाएँ इस द्वितीय उत्थान के भीतर बहुत सी निकलीं पर उनमें अधिकतर लेख 'बातों का संग्रह' के रूप में ही रहते थे, लेखकों के अंतःप्रयास से निकली विचारधारा के रूप में नहीं।

▶ विविध शैलियों के निबंध भारतेंदु-युग में लिखे गये

शैली की दृष्टि से देखा जाये तो यों तो प्रत्येक निबंधकार की शैली व्यक्तित्व-भेद से अलग-अलग है, किंतु सामान्यतः सुविधा की दृष्टि से विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, कथात्मक, इतिवृत्तात्मक, अनुसंधानात्मक एवं भाषण आदि सभी शैलियों के निबंध भारतेंदु-युग में लिखे गये हैं। अभिव्यक्ति की ऐसी कोई भंगिमा नहीं है, जिसका आरंभ इस युग में न हुआ हो। सत्य तो यह है कि आगे चल कर द्विवेदी-युग में निबंधों के क्षेत्र में किसी नवीन परंपरा का सूत्रपात नहीं हुआ। भारतेंदु-युग के निबंधों की सबसे बड़ी विशेषता उनके माध्यम से प्रकट होने वाला व्यापक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण है। यह साहित्य विधा तत्कालीन जीवन-चेतना से सीधे जुड़ी हुई है। वस्तुतः इस संदर्भ में भारतेंदु युग का निबंधकार जितना सजग था, उतना उपन्यासकार या नाटककार नहीं। इस आधार पर इस युग के निबंध-साहित्य को एक विशिष्ट उपलब्धि के रूप में स्वीकार करना सर्वथा समीचीन होगा।

1.3.4.2 जीवनी-साहित्य

आधुनिक युग की अन्य अनेक साहित्य विधाओं के समान जीवनी साहित्य का आरंभ भी भारतेंदु युग में ही हुआ। स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने विक्रम, कालिदास, रामानुज, जयदेव, सूरदास, शंकराचार्य, से संबद्ध अनेक महत्वपूर्ण जीवनियाँ लिखीं, जो 'चरितावली', 'बादशाहदर्पण', 'उदयपुरोदय का राजवंश' नामक ग्रंथों में संकलित हैं।

भारतेंदु-युग की जीवनी में कार्तिकप्रसाद खत्री की 'अहिल्याबाई का जीवनचरित्र' (1887), 'छत्रपति शिवाजी का जीवनचरित्र' रमाशंकर व्यास की 'नेपोलियन बोनापार्ट का जीवनचरित्र' (1883) आदि उल्लेखनीय है।

इस युग के सर्वप्रसिद्ध जीवनी-लेखक देवीप्रसाद मुंसिफ हैं। उन्होंने 'महाराज मानसिंह कच्छवाह अमीर का जीवनचरित्र' (1889), 'राजा मालदेव का जीवनचरित्र' (1889), आदि ऐतिहासिक जीवनियाँ लिख कर जीवनी-साहित्य को समृद्ध किया।

राधाकृष्णदास ने 'आर्यचरितामृत बाप्पा रावल' (1884) के अतिरिक्त 'श्रीनागरीदास जी का जीवनचरित्र' (1894), 'कविवर बिहारीलाल' (1895), 'सूरदास' (1900) आदि साहित्यकारों की जीवनियाँ लिखीं। गोपाल शर्मा शास्त्री, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त,

गोकुलनाथ शर्मा, बलभद्र मिश्र तथा अंबिकादत्त व्यास ने क्रमशः 'दयानंद-दिग्विजय' (1881), 'आर्यचरितामृत' (1884), 'हरिदास गुरमानी' (1896), 'श्री देवीसहायचरित्र', (1897), 'स्वामी दयानंद महाराज का जीवनचरित्र' (1897) और स्वामी भास्करानंद से संबद्ध 'स्वामी चरितामृत' (1899) नामक जीवनीग्रंथ लिखे। इनमें से 'आर्यचरितामृत' बंगला से अनूदित है। हिन्दी-जीवनी साहित्य के विकास में विदेशी मिशनरियों ने भी पर्याप्त योग दिया। 'विक्टोरिया महारानी का वृत्तांत' (1896), 'सिकंदर महान का वृत्तांत' (1899) आदि पुस्तकें ईसाई मिशनरियों के प्रयत्नस्वरूप ही प्रकाशित हुईं। विदेशी महापुरुषों की जीवनियों में रमाशंकर व्यास कृत 'नेपोलियन बोनापार्ट' (1883) भी महत्वपूर्ण है। किंतु भारतेंदुयुगीन जीवनी-साहित्य का समग्र रूपेण मूल्यांकन करने पर यह कहा जा सकता है कि परिमाण की दृष्टि से अत्यल्प न होने पर भी इस युग के जीवनी साहित्य में प्रायः न तो परिमार्जित एवं प्रतिनिष्ठित भाषा-प्रयोग परिलक्षित होता है और न चित्ताकर्षक शैली ही मिलती है। वस्तुतः इस युग को जीवनी-साहित्य का बीज वपन काल कहना ही उचित होगा।

▶ इस युग के सर्वप्रसिद्ध जीवनी-लेखक देवीप्रसाद मुंसिफ हैं

1.3.4.3 यात्रावृत्त

यात्रावृत्त-लेखन की दिशा में भी भारतेंदु युग के अनेक लेखकों ने योग दिया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने यात्रावृत्त विषयक अनेक रचनाएँ लिखीं, जो 'कविवचनसुधा' के 1871 से 1879 तक के अंकों में समय-समय पर प्रकाशित होती रहीं। इनमें 'सरयू-पार की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा' और 'हरिद्वार की यात्रा' उल्लेखनीय हैं। बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र ने भी क्रमशः 'गया- यात्रा' और 'विलायतयात्रा' नामक रचनाएँ लिखीं, जो क्रमशः 'हिन्दी-प्रदीप' के मार्च, 1894 तथा नवंबर, 1897 के अंकों में प्रकाशित हुई। इस युग में यात्रावृत्त संबंधी जो कृतियाँ पुस्तकाकार प्रकाशित हुई, उनमें श्रीमती हरदेवी, भगवानदास वर्मा, दामोदर शास्त्री, तोताराम वर्मा, कल्याणचंद और विगू मिश्र द्वारा क्रमशः रचित 'लंदन-यात्रा' (1883), 'लंदन का यात्री' (1884)', 'पूर्व-दिग्यात्रा' (1885) और 'मेरी दक्षिण-दिग्यात्रा' (1886), 'व्रजविनोद' (1888), 'बदरी विशेष रूपेण' उल्लेखनीय हैं।

▶ भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'सरयू-पार की यात्रा' लिखी

1.3.4.4 आलोचना

भारतेंदु-युग में हिन्दी-आलोचना का आरंभ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ, किंतु आधुनिक आलोचना का उत्कृष्ट उदाहरण इस काल में नहीं मिलता। 'हिन्दी-प्रदीप' (1877-1910) ही एक ऐसा पत्र था, जो अपेक्षाकृत गंभीर आलोचनाएँ प्रकाशित करता था।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी-गद्य-साहित्य के विकासक्रम में भारतेंद्र-युग के गद्य-साहित्य का महत्व और मूल्य असाधारण है। इसी युग में हिन्दी-प्रदेश में आधुनिक जीवनचेतना का उन्मेष हुआ। मध्यवर्गीय सामाजिक परिवेश में साहित्यरचना का जो रूप उभरा, उसमें कहीं-कहीं सामंतीय संस्कारों का अवशेष लक्षित अवश्य होता है, किंतु वह टूटने के क्रम में है। रचनागत प्रतिपाद्य की दृष्टि से यह बहुत बड़ा परिवर्तन था। यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश-शासन-व्यवस्था की दृढता के बावजूद उसके प्रति विरोध का भाव प्रत्येक साहित्यकार के मन में विद्यमान है। देश और समाज के हित की भावना से सभी भावित हैं। साहित्य-सर्जन की दृष्टि से ही गद्य विधाओं का सूत्रपात इसी युग में हुआ, विशेषतः निबंध और नाटक इन दो विधाओं में लेखकों को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। उपन्यासों में सामाजिक जीवन के स्पंदन का स्वर भी इसी युग में सुनायी पड़ने लगा। सब मिला कर भारतेंदु-काल का साहित्य व्यापक जागरण का संदेश लेकर आया और भाषा के स्वरूप विकास में भी अभूतपूर्व प्रगति प्राप्त थी। इस युग में न केवल हिन्दी-गद्य का स्वरूप स्थिर हुआ, वरन उसके शुद्ध साहित्योपयोगी और व्यवहारोपयोगी रूपों की पूर्ण प्रतिष्ठा भी हुई। इस प्रकार भाषा और साहित्य दोनों जीवन की गति के साथ जुड़ गये। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन और प्रचार की गति भी तीव्र हुई।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. भारतेन्दु युग के अनूदित गद्य विधाओं पर टिप्पणी लिखिए।
2. 'नाटककार भारतेन्दु हरिश्चंद्र' विषय पर आलेख तैयार कीजिए।
3. भारतेन्दु युग के निबंध साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।
4. 'भारतेन्दु युग की आलोचना' विषय पर आलेख लिखिए।
5. भारतेन्दु युग के नाटक एवं नाटककारों पर आलेख तैयार कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
5. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
6. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय
7. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
8. हिन्दी कविता का प्रवृत्तिगत इतिहास - पूरणचंद टण्डन, विनीता कुमारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रामचंद्र शुक्ल
4. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

SGOU

इकाई : 4

पत्रकारिता का आरंभ और 19वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- भारतीय समाचार-पत्र के बारे में समझता है
- हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- 19वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता के तीन चरणों की जानकारी प्राप्त करता है
- 19वीं शताब्दी की प्रमुख हिन्दी पत्रिकाओं से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

'उदंत मार्तंड' के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी पत्रकारिता का शुभांरभ हो चुका था। 1850 ई. तक हिन्दी में छोटे-मोटे 28 समाचार पत्र प्रकाशित हुऐ थे, किंतु इनका महत्व केवल इतना था कि ये हिन्दी पत्रकारिता की आधार भूमि का निर्माण कर रहे थे। इनमें से अधिकांश की आयु कम थी। ये अपने बृहत्तर पाठक वर्ग के अभाव में अल्पजीवी सिद्ध हो रहे थे। इनका प्रचार-प्रसार भी अधिक नही था। हिन्दी का पहला दैनिक अखबार 'सुधा वर्षण' 1854 ई. में प्रकाशित हुआ। इस तरह से इस कालखंड में मासिक पाक्षिक, साप्ताहिक और दैनिक समाचार प्रधान पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ हो चुका था। भारतेन्दु जी ने अपनी प्रतिभा के बल पर इसी समय एकाधिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ किया।

Keywords / मुख्य बिन्दु

'बंगाल गजट', 'उदन्त मार्तण्ड', बंगदूत, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जनजागरण

Discussion / चर्चा

1.4.1 भारत में पत्रकारिता का आरम्भ

भारत में पत्रकारिता की शुरुआत 1780 ई. में हुई। उस समय जेम्स ऑगस्टस हिक्की द्वारा प्रथम मुद्रित अंग्रेजी समाचार ओरिजिनल 'कलकत्ता जेनरल एडवरटाइजर (हिक्कीज़ बंगाल गजट) प्रकाशित किया गया था। सन् 1780-1818 तक भारतीय पत्रकारिता पर केवल अंग्रेज़ी ही छाए रहे तथा सभी पत्र अंग्रेजी में ही छपे। भारतीय भाषाओं में समाचार पत्रों का इतिहास 1818 ई. से प्रारम्भ होता है।

पहला भारतीय समाचार-पत्र 1816 ई. में कलकत्ता में गंगाधर भट्टाचार्य द्वारा 'बंगाल गजट' नाम से निकाला गया। यह साप्ताहिक समाचार पत्र था, परन्तु यह अंग्रेजी भाषा में छपा था। हिन्दी का प्रथम समाचार-पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' था। इसका प्रकाशन 30 मई, 1826 ई. में कलकत्ता से एक साप्ताहिक-पत्र के रूप में हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य भारतीयों को जाग्रत

करना तथा भारतीयों के हितों की रक्षा करना था। इस प्रकार भारतेन्दु के आगमन से पूर्व ही पत्रकारिता का आरम्भ हो चुका था।

▶ उदन्त मार्तण्ड

1.4.2 19वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता

19वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता भारतीय समाज और साहित्य के विकास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर थी। इस काल में हिन्दी पत्रकारिता ने न केवल भाषायी परिवर्तन लाया बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जागरूकता भी बढ़ाई। 19वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता को तीन चरणों में बाँटा जा सकता है;

1. प्रथम उत्थान (1826-1867)
2. द्वितीय उत्थान (1868-1885)
3. तृतीय उत्थान (1886-1900)

प्रथम उत्थान (1826-1867) भारतेन्दु के उदय से पूर्व पत्र-पत्रिकाओं के विकास का प्रथम दौर पूरा हो चुका था। इस प्रकार हिन्दी पत्रकारिता का आरम्भ भारतेन्दु पूर्व युग से हुआ। पत्र-पत्रिकाओं का सीधा सम्बन्ध जन-जागरण से होता है। उस समय जन-जागरण का केन्द्र कलकत्ता था। हिन्दी पत्रकारिता का आरम्भ वहीं से हुआ। 'उदन्त मार्तण्ड' के बाद निकलने वाले प्रमुख समाचार-पत्र हैं- बंगदूत (1829), प्रजामित्र (1834), बनारस अखबार (1845), मालवा अखबार (1849), सुधाकर (1850), बुद्धिप्रकाश (1852) समाचार सुधावर्षण (1854), प्रजाहितैषी (1855), तत्वबोधिनी पत्रिका (1865), ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका (1866), वृत्तान्त विलास (1867) आदि।

▶ जन-जागरण का केन्द्र कलकत्ता

इस प्रथम उत्थान में ज़्यादातर साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन हुआ। इस काल की पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य जनता में जागरण तथा सुधार की भावना उत्पन्न करना था। साथ ही ये पत्रिकाएँ अपनी-अपनी सीमाओं में अन्याय का प्रतिकार भी कर रही थीं। ये पत्रिकाएँ दो या तीन भाषाओं में निकल रही थीं, जिनमें हिन्दी भाषा अपरिष्कृत और अपरिमार्जित थी।

▶ ज़्यादातर साप्ताहिक पत्र

द्वितीय उत्थान (1868-1885) हिन्दी पत्रकारिता में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने हिन्दी भाषा के अभाव को दूर करने का प्रयास किया। इस अवधि में हिन्दी-भाषा का रूप स्थिर और परिमार्जित हुआ, जागरण और सुधार की भावना का प्रसार हुआ तथा अनेक वर्णों और धर्मों में विभाजित भारतवासियों ने अपने जाति-वर्ग के उत्थान के लिए जातीय और धार्मिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ किया। क्रमशः पत्र-पत्रिकाओं में गंभीर लेख निकलने लगे और कुछ शुद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हुआ। इनके माध्यम से राष्ट्रीय चेतना भी अधिक प्रखर रूप में सामने आयी।

▶ जातीय और धार्मिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन

भारतेन्दु के जीवन काल में प्रकाशित होने वाली कुछ प्रमुख पत्रिकाएँ इस प्रकार हैं- कविवचन सुधा (1868), जगत समाचार (1869), हरिश्चन्द्र मैगजीन (1873) बालाबोधिनी (1874), काशी पत्रिका (1875), हिन्दी प्रदीप (1879), आनन्द कादम्बिनी (1881), भारतेन्द (1883), कान्यकुब्जप्रकाश (1884), भारतोदय (1885)। इनमें मुख्यतः पत्रिका नारी शिक्षा से सम्बन्धित थी। (1877),

▶ भारतेन्दु के जीवन काल में प्रकाशित प्रमुख पत्रिकाएँ

तृतीय उत्थान (1886-1900) हिन्दी पत्रकारिता के तृतीय उत्थान में दो सौ से ऊपर

▶ देशव्यापी जनजागरण

छोटी-बड़ी हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। इनमें हिन्दी-भाषा की शक्ति एवं लोकप्रियता का बोध होने के साथ-साथ देशव्यापी जनजागरण की सूचना भी मिलती है।

▶ तीसरे उत्थान तक राजनीतिक चेतना का केन्द्र बंगाल

इस युग की प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ इस प्रकार हैं- 'रहस्य चन्द्रिका' (1888), 'हिन्दी बंगवासी' (1890), 'साहित्य सुधानिधि' (1894), 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका 'समस्यापूर्ति' (1897), 'रसिक पत्रिका' (1897), 'उपन्यास 'पण्डित-पत्रिका' (1898), 'सरस्वती' (1900)।

तीसरे उत्थान तक राजनीतिक चेतना का केन्द्र बंगाल ही था। यह हिन्दी पत्रकारिता अनेक दिशाओं में विकसित हुई।

19वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता ने भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया और भारतीय समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक, और राजनीतिक चेतना को बढ़ावा दिया। इस काल के पत्रकारों और पत्रिकाओं ने एक नई दिशा दी, जिसने हिन्दी पत्रकारिता की आधुनिकता और प्रभावशीलता की नींव रखी।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

19वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता भारतीय समाज और साहित्य में एक महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी दौर था, जिसने समाज में जागरूकता और सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस अवधि में 'उदंत मार्तंड' और 'सत्यधर्म पत्रिका' जैसी प्रारंभिक पत्रिकाओं और समाचार पत्रों ने सामाजिक कुरीतियों, जातिवाद, और स्त्री शिक्षा जैसे मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया, जबकि भारतेन्दु हरिश्चंद्र की 'हिन्दी प्रदीप' और 'कविवचन सुधा' जैसी रचनाओं ने हिन्दी भाषा और साहित्य को नया जीवन प्रदान किया। स्वदेशी आंदोलन के दौरान, पत्रकारिता ने स्वतंत्रता संग्राम को समर्थन और जागरूकता प्रदान की, और इसने हिन्दी को एक प्रमुख साहित्यिक और शैक्षिक भाषा के रूप में स्थापित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि ने पत्र-पत्रिकाओं का संपादन कर साहित्य, समाज, संस्कृति और राजनीति के क्षेत्र को नई चिन्तन दृष्टि प्रदान की। राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में पत्रकारिता की भूमिका इस युग में महत्वपूर्ण रही। सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भूमिका को भी पत्रकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से बडी ही खूबी से निभाया। खड़ी बोली को पत्रकारिता की भाषा बनाने में इस युग का विशेष योगदान रहा है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. 'भारतीय समाचार-पत्र' विषय पर आलेख लिखिए।
2. हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास पर टिप्पणी लिखिए।
3. 19वीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता का मूल्याकंन कीजिए।
4. भारतेन्दु युगीन प्रमुख पत्रकार एवं पत्रिकाओं पर टिप्पणी लिखिए।
5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पत्रकारिकता पर आलेख लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
5. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
6. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय
7. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
8. हिन्दी काव्य का इतिहास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
9. हिन्दी कविता का प्रवृत्तिगत इतिहास - पूरणचंद टण्डन, विनीता कुमारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रामचंद्र शुक्ल
4. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

BLOCK-02

द्विवेदी युग

Block Content

Unit 1: जागरण सुधार काल, महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग

Unit 2: हिन्दी नवजागरण और सरस्वती, द्विवेदी युगीन पत्र-पत्रिकाएँ

Unit 3: राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि-माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान

Unit 4: द्विवेदी युगीन गद्य साहित्य के अन्य विधाएँ, स्वच्छंदतावाद और उसके प्रमुख कवि

इकाई : 1

जागरण सुधार काल, महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- 'द्विवेदी-युग' की जानकारी प्राप्त करता है
- द्विवेदीकालीन कविता की विशेषताएँ समझता है
- द्विवेदी-युग की राष्ट्रीयता के बारे में समझता है
- प्रमुख नेता एवं समाजसेवियों की जानकारी प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

भारतेन्दु युग के बाद का समय द्विवेदी- युग माना जाता है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम पर इस युग का नाम 'द्विवेदी युग' पड़ा। इस युग की समय-सीमा सन् 1900 से 1920 तक मानी जाती है। डॉ. नगेन्द्र ने इस युग को 'जागरण सुधार काल' भी कहा है। राष्ट्रीयता द्विवेदी-युग की प्रधान भावधारा थी। बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों में हिन्दी कविता ने श्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति और रूढ़ियों से स्वच्छंदता की ओर कदम बढ़ाया। ब्रिटिश शासन के तहत भारत में जनता के असंतोष और आर्थिक शोषण के कारण स्वतंत्रता की मांग तेज हो गई। इस काल में गोपालकृष्ण गोखले और बालगंगाधर तिलक जैसे नेताओं ने स्वतंत्रता की प्रेरणा दी और आत्मोत्सर्ग का मार्ग दिखाया। अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों को पश्चिमी विचारधारा से परिचित कराया, जिससे राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता की भावना को बल मिला। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आर्यसमाज, ब्राह्मसमाज, और इंडियन नेशनल कांग्रेस जैसी संस्थाओं ने भारतीय संस्कृति और समाज के पुनरुत्थान के प्रयास किए।

Keywords / मुख्य बिन्दु

द्विवेदी-युग, राष्ट्रीयता, महावीरप्रसाद द्विवेदी, सरस्वती पत्रिका

Discussion / चर्चा

2.1.1 जागरण सुधार काल

द्विवेदी युग का समय सन् 1900 से 1920 तक माना जाता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही यह काल 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है। इसे 'जागरण सुधारकाल' भी कहा जाता है। द्विवेदी युग के प्रवर्तक कवि महावीरप्रसाद द्विवेदी का जन्म 1864 ई. में रायबरेली के दौलतपुर नामक ग्राम में हुआ। 1903 में ये 'सरस्वती' पत्रिका के

सम्पादक बने तथा वर्ष 1920 तक इस पत्रिका के सम्पादक बने रहे। गद्य लेखन के क्षेत्र में भी इन्होंने विशेष सफलता प्राप्त की। द्विवेदी-युग में गद्य और पद्य दोनों प्रकार की रचनाएँ रची गई, दोनों की भाषा रही। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भाषा के प्रति समन्वयकारी दृष्टि अपनाई, जिससे खड़ी बोली समृद्ध हो पाई। आचार्य द्विवेदी ने साहित्य के प्रति साहित्यकारों को नैतिक जवाबदेही बनने की प्रेरणा दी। उनका नैतिकतावादी, उपयोगितावादी दृष्टिकोण इस युग के कवियों का स्वर बन गया। एक ओर महावीरप्रसाद द्विवेदी ने साहित्य के उददेश्य एवं व्यापकता को निर्धारित किया, तो दूसरी ओर उसकी भाषा एवं उसके स्वरूप को भी। उन्होंने आगरा सम्मेलन में साहित्यकारों को सम्बोधित करते हुए कहा कि- जो अपने आप को ब्रज क्षेत्र का मानते हों वे ब्रज भाषा का प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु जो अपना जुड़ाव अखण्ड भारत से मानते हो उनकी भाषा निश्चिंततः खड़ी बोली होनी चाहिए।

▶ महावीरप्रसाद द्विवेदी - युग प्रवर्तक

इस समय ब्रिटिश दमन नीति बहुत बढ़ गया था। जनता में असंतोष और क्षोभ की भावना प्रबल थी। आर्थिक दृष्टि से भी अंग्रेज़ों की नीति भारत के लिए अहितकर थी। यहाँ से कच्चा माल बाहर जाता था और वहाँ के बने माल की खपत भारत में होती थी। देश का धन निरंतर बाहर जाने से भारत निर्धन हो गया। यहाँ उद्योगधंधों के विकास की ओर सरकार का ध्यान ही नहीं गया। ऊपर से एक-पर-एक पड़ने वाले दुर्भिक्षों ने तो देशवासियों की कमर ही तोड़ दी। अत्याचारों एवं सर्वतोमुखी विफलता का मुख्य कारण परतंत्रता ही था। अतः जनता ने पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की। गोपालकृष्ण गोखले और लोकमान्य गंगाधर तिलक जैसे नेता देश के स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व कर रहे थे। इस काल के साहित्यकारों ने न सिर्फ देश की दुर्दशा का चित्रण किया, बल्कि देशवासियों को आजादी की प्राप्ति केलिए प्रेरित भी किया। राजनीतिक चेतना के साथ-साथ इस काल में भारत की आर्थिक विचार भी विकसित हुई।

▶ 'द्विवेदी-युग' को 'जागरण-सुधारकाल' भी कहा जाता है

2.1.2 महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग

द्विवेदी युग मे पूर्व कविता के क्षेत्र में मुख्यतः श्रृंगार, भगवद्भक्ति एवं देशभक्ति की धाराएँ प्रवाहित थीं। समस्यापूर्तियों का भी खूब ज़ोर था। भारतेन्दु काल के कविता के क्षेत्र में ब्रज भाषा का एकच्छत्र साम्राज्य बना रहा। यद्यपि खड़ीबोली में भी रचना हुई, किन्तु उसे काव्योपयुक्त नहीं समझा गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत होते-होते, हवा बदलने लगी। परिवर्तित जनरुचि को भक्ति श्रृंगार का पिष्टपेषण बेस्वाद प्रतीत हुआ। समस्यापूर्तियों एवं नीरस तुकबंदियों से सहृदय ऊब गये। चिरव्यवहृत ब्रजभाषा का आकर्षण निःशेष हो गया। सुयोग से इसी समय जनता की रुचि आकांक्षाओं के पारखी तथा साहित्य के दिशा-निर्देशक आचार्य के रूप में पंडित महावीराप्रसाद द्विवेदी का प्रादुर्भाव हुआ। जून, 1900 की 'सरस्वती' में प्रकाशित 'हे कविते' शीर्षक अपने कविता में उन्होंने जनरुचि का प्रतिनिधित्व करते हुए ही सौरस्य एवं वैविध्य के अभाव एवं ब्रजभाषा के चिरप्रयोग पर क्षोभ प्रकट किया था। 1903 में आचार्य महावीराप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के संपादक बने। उन्होंने नायिका भेद को छोड़ कर विविध विषयों पर कविता लिखने, सभी प्रकार के छंदों का व्यवहार करने, सभी काव्यरूपों को अपनाने तथा गद्य और पद्य भाषा के एकीकरण का परामर्श दिया। उनकी अमोघ प्रेरणा एवं वात्सल्यमय प्रोत्साहन के परिणामस्वरूप अनेक कवि सामने आये, जो उन्हीं के आदर्शों को ले कर आगे बढ़े। इनमें मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। वे द्विवेदी की भाषा की शुद्धता तथा वर्तनी

की एकरूपता के प्रबल समर्थक थे। अतएव, इस युग की काव्यभाषा व्याकरण की दृष्टि से सामान्यतः शुद्ध है तथा वर्तनी की दृष्टि से उसमें भारतेंदु युग जैसी अस्थिरता नहीं है। हिन्दी के सभी छंदों का ही नहीं, संस्कृत-वृत्तों तथा उर्दू-वृत्तों का भी प्रयोग हुआ। आचार्य द्विवेदी ने समस्यापूर्ति को छोड़ने तथा स्वतंत्र विषयों पर कविता लिखने का भी परामर्श दिया था। फलतः इस युग में समस्यापूर्तियों का भी रिवाज कम हो गया।

▶ 1903 में आचार्य महावीराप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के संपादक बने

2.1.3 द्विवेदीकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ

द्विवेदीकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ निम्नांकित किया गया है।

2.1.3.1 राष्ट्रीयता

बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता द्विवेदी-युग की प्रधान भावधारा थी। इस युग के प्रायः सभी कवियों ने देशभक्तिपूर्ण कविताओं का प्रणयन किया। उन्होंने पराधीनता को सबसे बड़ा अभिशाप बताया तथा स्वतंत्रताप्राप्ति के लिए क्रांति एवं आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा दी।

मैथिलीशरण गुप्त की ओजस्वी हुंकार निम्नलिखित शब्दों में प्रकट हुई है:

धरती हिल कर नींद भगा दे
वज्रनाद से व्योम जगा दे
दैव, और कुछ लाग लगा दे।
(स्वदेश-संगीत)

▶ राष्ट्रीयता द्विवेदी-युग की प्रधान भावधारा थी

वस्तुतः द्विवेदीयुगीन कवियों ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से अतीत के गौरव का गान करते हुए देश की वर्तमान दशा पर क्षोभ प्रकट किया है। इस प्रकार की रचनाओं में गुप्त जी की 'भारत-भारती' सर्वश्रेष्ठ और सशक्त रचना है।

2.1.3.2 सामान्य मानवता

दीन-हीन कृषक तथा विधवा के दुःखों का भी बड़ा कारुणिक वर्णन आलोच्य काल के कवियों ने किया। गुप्त जी की 'किसान' (1917), सियारामशरण जी की 'अनाथ' (1917) तथा 'सनेही' जी की 'कृषक-क्रंदन' कृषक जीवन संबंधी प्रभावी रचनाएँ हैं। नाथूराम शर्मा 'शंकर'- कृत 'गर्भरंडा-रहस्य' में जन्म से पहले ही विधवा हो जाने वाली विधवाओं के कष्टमय जीवन का बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। शिक्षाविहीन नारियों की दुर्दशा की ओर भी इस युग के कवियों ने संकेत किये हैं। वस्तुतः मानव-सुलभ सहानुभूति ही इस प्रकार की कविताओं की प्रेरक भावना है। इसी भावना से प्रेरित होकर हरिऔध ने उच्चतर जातियों द्वारा निम्न जातियों के प्रति किये गये अन्याय और दुर्व्यवहार का उल्लेख किया है :

आप आँखें खोल कर के देखिए,
आज जितनी जातियाँ हैं सिर-धरी।
पेट में उनके पड़ी दिखलाएंगी,
जातियाँ कितनी सिसकती या मरी।।

▶ नाथूराम शर्मा 'शंकर' की रचना 'गर्भरंडा-रहस्य'

इस प्रकार द्विवेदीयुगीन काव्य में जनसाधारण को काव्य-विषय के रूप में पर्याप्त स्थान प्राप्त हुआ।

2.1.3.3 नीति और आदर्श

द्विवेदीयुगीन काव्य आदर्शवादी और नीतिपरक है। इतिहास-पुराण से गृहीत कथाप्रसंगों के आधार पर अथवा कल्पनाश्रित उज्ज्वल कथाएँ लेकर आदर्श चरित्रों पर अनेक प्रबंधकाव्य लिखे गये। उन सभी में असत् पर सत् की विजय दिखायी गयी है। स्वार्थ-त्याग, कर्तव्यपालन, आत्मगौरव आदि उच्चादर्शों की प्रेरणा दी गयी है। हरिऔध-कृत 'प्रियप्रवास', मैथिलीशरण के 'साकेत' (इसका अधिकांश भाग आलोच्यकाल में ही रचा गया था), 'रंग में भंग', 'जयद्रथ-वध', 'विकट भट', गोकुलचंद्र शर्मा का 'गांधी-गौरव', रामनरेश त्रिपाठी-कृत 'मिलन' आदि आदर्शवादी रचनाएँ ही हैं। इस प्रकार के पद्य लेखकों में महावीरप्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय आदि प्रमुख हैं।

▶ मैथिलीशरण-कृत 'साकेत'

आलोच्य काल के कवियों ने प्रेम के भी आदर्श स्वरूप को ग्रहण किया। 'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'मिलन' आदि में उसका उदाव स्वरूप देखा जा सकता है।

2.1.3.4 वर्ण्य विषय का क्षेत्रविस्तार

द्विवेदी-युग में वर्ण्य विषय का अद्‌भुत विस्तार हुआ। उसमें अपार वैविध्य और व्यापकत्त्व आया। नायिकाभेद को छोड़ कर सभी चिरपरिचित उपादानों को स्वीकारने के साथ ही अनेक नूतन विषयों को भी काव्य में स्थान मिला।

2.1.3.5 हास्य-व्यंग्य-काव्य

भारतेंदु युग जैसी जिंदादिली, चुहलबाज़ी और फक्कड़पन इस युग में नहीं रह गया था, अतः उस युग के समान हास्य-व्यंग्यपूर्ण कविता का प्राचुर्य द्विवेदी-युग में नहीं है। इस दिशा में जितना कुछ लिखा भी गया है, वह द्विवेदी जी के व्यक्तित्व के प्रभावस्वरूप अपेक्षाकृत संयत और मर्यादित है। हास्य और व्यंग्य के विषय राजनीतिक शोषण, सामाजिक कुरीतियाँ, धर्माडंबर, लकीर की फ़कीरी, विदेशीयता का अंधानुकरण, फ़ैशनपरस्ती, व्यभिचार आदि हैं। आचार्य द्विवेदी ने 'सरगौ नरक ठेकाना नाहि' में कल्लू अल्हैत के माध्यम से गांव को छोड़ कर शहर जाने वाले तथा विदेशी सभ्यता का अंधानुकरण करने वाले लोगों की हास्यास्पद स्थिति का चित्रण किया है।

▶ आचार्य महावीराप्रसाद द्विवेदी कृत- 'सरगौ नरक ठेकाना नाहि'

बालमुकंद गुप्त इस युग के बड़े सशक्त व्यंग्यकार हैं। इन्होंने तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्ज़न को अपने व्यंग्य और हास्य का प्रमुख आलंबन बनाया। द्विवेदी-युग में हास्य-व्यंग्य की रचना करने वाले कवियों में ईश्वरीप्रसाद शर्मा तथा जगन्नाथ-प्रसाद चतुर्वेदी के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

2.1.3.6 सभी काव्यरूपों का प्रयोग

प्रस्तुत काल में काव्यक्षेत्र में प्रचलित प्रबंध, मुक्तक, प्रगीत प्रभृति सभी काव्यरूपों में रचना हुई। कथाश्रित काव्यरचना कवियों को अधिक सुगम प्रतीत हुई। 'प्रियप्रवास', 'साकेत' (अधिकांश भाग) तथा 'रामचरितचिंतामणि' महाकाव्यों का प्रणयन इसी युग में हुआ। हिन्दी के अनेक श्रेष्ठ खंडकाव्य भी इसी काल में लिखे गये, जिनमें से मैथिलीशरण-कृत 'रंग में भंग, 'जयद्रथ-वध', 'किसान'; प्रसाद जी का 'प्रेमपथिक' (1913); सियारामशरण गुप्त का 'मौर्यविजय' (1914); रामनरेश त्रिपाठी का 'मिलन' (1917); तथा गोकुलचंद्र शर्मा का 'गांधीगौरव' विशेषतः उल्लेखनीय हैं। मुक्तक रचना की ओर इस युग के सभी कवि प्रवृत्त हुए

▶ रत्नाकर ने प्रबंधमुक्तक 'उद्धवशतक' की रचना की

हैं। शंकर तथा हरिऔध ने समस्यापूर्तियों के रूप में भी अनेक सुंदर मुक्तक लिखे। रत्नाकर ने प्रबंधमुक्तक 'उद्धवशतक' की रचना की। द्विवेदी-युग में प्रगीतों का भी प्रणयन हुआ। यद्यपि इस विधा का वास्तविक विकास तो द्विवेदी-युग के बाद ही हुआ, किंतु इस युग में इस क्षेत्र में मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय तथा माखनलाल चतुर्वेदी के नाम उल्लेखनीय हैं।

2.1.3.7 भाषा-परिवर्तन

▶ काव्य की मुख्य भाषा ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ीबोली बन गयी

द्विवेदी-युग में काव्य की मुख्य भाषा ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ीबोली बन गयी। आज खड़ीबोली के भाषा-सौंदर्य,मार्दव और अभिव्यंजन-क्षमता के दर्शन के पश्चात उसकी काव्योपयुक्तता विवादास्पद नहीं रह गयी है, किंतु द्विवेदी-काल से पूर्व ऐसी बात नहीं थी। जॉर्ज ग्रियर्सन जैसे भाषाविद्, भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र आदि कवि तथा बाद में रत्नाकर सरीखे कवि-मनीषी खड़ीबोली की काव्योपयुक्तता के विषय में संदेहशील थे। द्विवेदीयुगीन काव्य ने इस शंका को निर्मूल कर दिया। यद्यपि आरंभ में खड़ीबोली काव्य नीरस तुकबंदी के अतिरिक्त कुछ नहीं था। किंतु उसमें उत्तरोत्तर निखार आया। 'जयद्रथ-वध' की प्रसिद्धि ने ब्रजभाषा के मोह को दूर कर दिया। 'भारत-भारती' की लोकप्रियता खड़ीबोली की विजय-भारती सिद्ध हुई।

2.1.3.8 छंद-वैविध्य

▶ हरिगीतिका छंद का प्रयोग

द्विवेदी काल में वर्ण्य विषय के समान ही छंद के क्षेत्र में भी अद्‌भुत वैविध्य मिलता है। दोहा, कविता या सवैया के प्रयोग तक ही कवि सीमित नहीं रहे, वरन रोला, छप्पय, कुंडलियाँ, सार, सरसी, गीतिका, हरिगीतिका, ताटंक, लावणी, वीर आदि छंद भी कुशलतापूर्वक व्यवह्रत हुए। हिन्दी के ही नहीं, संस्कृत के वर्णिक छंदों और उर्दू-बहरों को भी अपनाया गया। मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध तथा शंकर ने छंद प्रयोग में अद्‌भुत कौशल का परिचय दिया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने छंद के विशेषीकरण का भी परामर्श दिया था। परिणामतः गुप्त जी ने हरिगीतिका, हरिऔध ने वर्णिक छंदों तथा उर्दू शैली के चौपदों, शंकर के कवित्तों, पूर्ण जी ने कुंडलियाँ, गोपालशरण सिंह ने कवित्त-सवैया तथा गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और भगवानदीन जी दीन ने उर्दू बहरों में अधिक वैशिष्ट्य प्रकट किया।

इन प्रवृत्तियों ने द्विवेदी काल को भारतीय साहित्य के एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली युग के रूप में स्थापित किया।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

'द्विवेदी युग' को 'जागरण सुधारकाल' भी कहा जाता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के ऐसे पहले लेखक थे, जिन्होंने अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन ही नहीं किया था, अपितु उसे आलोचकीय दृष्टि से भी देखा। उन्होंने वेदों से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के संस्कृत साहित्य की निरंतर प्रवाहमान धारा का अवगाहन किया एवं उपयोगिता तथा कलात्मक योगदान के प्रति एक वैज्ञानिक नज़रिया अपनाया। कविता की दृष्टि से द्विवेदी युग 'इतिवृत्तात्मक युग' था। इस समय आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम आदि कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण श्रृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि थे।

Assignment / प्रदब कार्य

1. जागरण सुधार काल पर टिप्पणी लिखिए।
2. भाषा सुधारक के रूप में महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान पर टिप्पणी लिखिए।
3. द्विवेदी युग के प्रबंध काव्य पर आलेख तैयार कीजिए।
4. द्विवेदी युग के काव्यधारा पर विचार प्रकट कजिए।
5. द्विवेदी युग के नामकरण पर टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
4. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
5. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
6. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय
7. हिन्दी काव्य का इतिहास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
8. हिन्दी कविता का प्रवृत्तिगत इतिहास - पूरणचंद टण्डन, विनीता कुमारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रामचंद्र शुक्ल
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 2

हिन्दी नवजागरण और सरस्वती, द्विवेदी युगीन पत्र-पत्रिकाएँ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी नवजागरण के बारे में समझता है
- 'सरस्वती' पत्रिका की जानकारी प्राप्त करता है
- द्विवेदी युगीन पत्र-पत्रिकाओं के बारे में समझता है

Background / पृष्ठभूमि

हिन्दी नवजागरण से तात्पर्य सन् 1857 के प्रथम संग्राम के बाद भारत के हिन्दी प्रदेशों में आए राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जागरण से है। हिन्दी नवजागरण की सबसे प्रमुख विशेषता हिन्दी प्रदेश की जनता में स्वातंत्र्य चेतना का जागृत होना है। इस नवजागरण का पहला चरण सन् 1857 का विद्रोह था, दूसरा चरण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से तथा तीसरा चरण महावीरप्रसाद द्विवेदी से शुरू हुआ। हिन्दी नवजागरण में द्विवेदी की महत्वपूर्ण भूमिका रही। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को गति व दिशा देने में भी उनका विशेष योगदान उल्लेखनीय है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

हिन्दी नवजागरण, 'सरस्वती पत्रिका', पत्र-पत्रिकाएँ

Discussion / चर्चा

सन् 1900 ईसवीं के जनवरी माह में इंडियन प्रेस, प्रयाग से 32 पृष्ठीय क्राउन आकार की पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन आरंभ हुआ। आचार्य महावीराप्रसाद द्विवेदी इस पत्रिका के सन् 1903 ई. में संपादक नियुक्त हुए। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के माध्यम से हिन्दी भाषा का परिमार्जन एवं परिष्कार कर उसे शुद्ध संस्कृतनिष्ठ स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने हिन्दी काव्य को ब्रजभाषा, अवधी और मैथिली की सीमाओं से बाहर निकाल कर खड़ी बोली के रूप में असीमित, विस्तृत पटल प्रदान किया।

2.2.1 हिन्दी नवजागरण और सरस्वती

'सरस्वती' पत्रिका हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध तथा प्रतिनिधि पत्रिका थी। इस पत्रिका के प्रकाशन वर्ष(1900) के तीन वर्ष बाद 1903 में 'महावीर प्रसाद द्विवेदी' इसके सम्पादक बने तथा वर्ष 1920 तक लगातार सत्रह वर्षों तक इसका सम्पादन करते रहे। यह पत्रिका द्विवेदी

▶ 'सरस्वती' पत्रिका 1900 से

युग की साहित्यक गुणवत्ता और श्रेष्ठता का प्रतिमान बन गयी। द्विवेदी जी ने इस पत्रिका में ऐसे लेखों को प्रकाशित किया, जिन्होंने नवजागरण की लहर को प्रसारित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

▶ खड़ीबोली कविता का भाषा बनी

आचार्य द्विवेदी से प्रेरणा लेकर तथा उनके आदर्शों को आगे बढ़ाने वाले अनेक कवि सामने आए, जिनमें मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और लोचनप्रसाद पाण्डेय प्रमुख हैं। द्विवेदी जी से प्रेरणा प्राप्त करके मैथिलीशरण 'गुप्त' जी ने 'साकेत' महाकाव्य की रचना की। साथ ही बहुत सारे कवि जो पहले ब्रजभाषा में कविता लिख रहे थे वे द्विवेदी जी तथा 'सरस्वती' पत्रिका से प्रेरित होकर नए विषयों पर खड़ी बोली में कविता करने लगे। इन कवियों में अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा 'शंकर' तथा राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' प्रमुख हैं। इन सभी कवियों की कविताएँ नवजागरण, राष्ट्रीयता, स्वदेशानुराग तथा स्वदेशी भावना से पूर्ण थी।

▶ द्विवेदी जी द्वारा 17 वर्षों तक सरस्वती का संपादन

आचार्य द्विवेदी ने स्वच्छंद कविता की वक़ालत की। सन 1903 से 1920 तक 17 वर्ष की अवधि तक उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन किया और अपने संपादन काल में खड़ी बोली के साथ-साथ हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास एवं प्रचार-प्रसार भी किया। उन्होंने अनेक नये लेखकों को प्रेरित किया, किंतु, साहित्यिक विधाओं के आदर्श को उन्होंने विचलित नहीं होने दिया। यही कारण है कि उन्होंने महाप्राण निराला जैसे कवि की स्वच्छंद कविता 'जूही की कली' को यह लिखकर वापस भेज दिया कि यह 'सरस्वती' में प्रकाशित होने योग्य नहीं है। बाद में महाप्राण निराला की यही कविता अन्य कई पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई, किंतु, द्विवेदी ने छंदरहित होने के कारण उसे सरस्वती में स्थान नहीं दिया।

द्विवेदी जी, शुद्ध साहित्यिक एवं त्रुटिरहित पत्रकारिता के समर्थक थे। वे 'पत्रकारिता जल्दी में लिखा गया साहित्य है' के प्रबल विरोधी थे। उनका मानना था कि भाषिक अनुशासन एवं व्याकरण को अनदेखा करना भाषा के स्वरूप को बिगाड़ना और उसे कमज़ोर बनाना है।

▶ कुल 81 ग्रंथ

आज का साहित्यिक वर्ग कठिनता से ही इस सत्य को अस्वीकार कर पाएगा कि आचार्य जी स्वयं अपने समय के सिद्ध कवि थे। उन्होंने अधिकांशतः गद्य रचनाओं का ही प्रणयन किया। उनके कुल 81 ग्रंथों में से काव्य मंजूषा, कविता कलाप,देवी स्तुति शतक ही उनकी मौलिक पद्य रचनाएँ हैं जबकि गंगा लहरी, ऋतु तरंगिणी तथा कुमारसंभव उनके द्वारा अनूदित पद्य ग्रंथ हैं।

▶ सर्वश्रेष्ठ संपादक द्विवेदी जी

वे हिन्दी आलोचना, निबंध एवं अनुवाद के शिखर थे। उन्होंने स्वयं भाषिक एवं व्याकरणिक अनुशासन का पालन करते हुए हिन्दी साहित्य के भंडार में श्रीवृद्धि की। इनके समय में ही हिन्दी में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ निकलने लगी थीं। इतना ही नहीं 'सरस्वती' एवं 'प्रताप' के अलावा मराठी से निकलने वाले 'केसरी' की लोकप्रियता उन दिनों शिखर पर थी। इसके बाद भी 'प्रताप' के संपादक गणेश शंकर विद्यार्थी जी एवं केसरी के संपादक लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी, आचार्य द्विवेदी जी को ही सर्वश्रेष्ठ संपादक मानते थे। यही कारण था कि जब कोई व्यक्ति पत्रकारिता सीखने के उद्देश्य से लोकमान्य अथवा विद्यार्थी जी के पास जाता था तो वे उसे आचार्य द्विवेदी जी के पास यह कहकर भेज देते थे कि पत्रकारिता की बारीकियाँ सीखनी हैं तो केवल आचार्य द्विवेदी जी ही सबसे उपयुक्त गुरु हो सकते हैं। अतः कितने ही पत्रकारों और संपादकों ने उन्हें अपना प्रेरणास्रोत माना तथा साहित्य एवं पत्रकारिता

के नए प्रतिमान स्थापित किए।

आचार्य द्विवेदीजी हिन्दी साहित्य एवं भाषा के युगप्रवर्तक साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र, आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं जयशंकर प्रसाद के बीच की कड़ी हैं। अर्थात् भारतेंदु जी ने जहाँ हिन्दी गद्य की भाषा खड़ी बोली को बनाया वहीं आचार्य द्विवेदी जी ने हिन्दी कविता को खड़ी बोली का वृहद् आकाश दिया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास की रचना कर हिन्दी को विश्व पटल पर स्थापित करने की भूमिका रची तथा जयशंकर प्रसाद जी ने हिन्दी भाषा को परिशुद्धता प्रदान कर नाटक एवं कहानी विधाओं को नई दिशा दी।

▶ हरिश्चंद्र, शुक्ल एवं प्रसाद के बीच की कड़ी

इस प्रकार हिन्दी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता के शिखर पुरुष थे, महामना आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी। वे 21 दिसंबर, सन् 1938 को मां भारती की गोद में चिरनिद्रा में सो गए। उनका अनूठा हिन्दी प्रेम और व्यक्तित्व आज भी हिन्दी साहित्य के साधकों के हृदय में जीवन्त है। वे युगों-युगों तक हिन्दी जगत से जुड़े साहित्यकारों, पत्रकारों आदि को प्रेरणा देते रहेंगे।

2.2.2 द्विवेदी युगीन पत्र-पत्रिकाएँ

हिन्दी-पत्रकारिता का आरंभ हिन्दी-प्रदेश से बाहर बंगाल के कलकत्ता महानगर में हुआ। समाचारपत्र सामाजिक चेतना के वाहक होते हैं। जिस नवीन सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना ने संपूर्ण आधुनिक हिन्दी-साहित्य को नयी दिशा दी है, उसका उदय सर्वप्रथम बंगाल में ही हुआ था। फलस्वरूप उन्नीसवीं शती के अंत तक हिन्दी-पत्रकारिता का केंद्र कलकत्ता ही रहा। बीसवीं शती के आरंभ से भारतीय राजनीति के क्षेत्र में बालगंगाधर तिलक का प्रभाव बढ़ने लगा था। उन्होंने 1908 ई. से अपने 'केसरी' पत्र का हिन्दी-संस्करण 'हिन्दी केसरी' नाम से प्रकाशित करना आरंभ किया। इसमें उनकी ओजस्वी और विद्वतापूर्ण संपादकीय टिप्पणियाँ प्रकाशित होती थीं। राजनीति में गणेशशंकर विद्यार्थी तिलक के समर्थक थे। हिन्दी-प्रदेश के तत्कालीन राजनीतिक हिन्दी-पत्रों को विद्यार्थी जी ने बहुत प्रभावित किया। यह प्रभाव प्रकारांतर से बालगंगाधर तिलक का ही था। कलकत्ता की पत्रकारिता को भी तिलक ने प्रभावित किया। वहाँ से निकलने वाले 'भारतमित्र', 'मारवाड़ी-बंधु' और 'नृसिंह' ये तीन पत्र तिलक की प्रखर राजनीति के समर्थक थे। बीसवीं शती के प्रथम चरण में हिन्दी प्रदेश में दो प्रकार की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं- (1) राजनीतिक, (2) साहित्यिक। 1900 से 1918 ई. तक प्रायः प्रत्येक वर्ष कोई-न-कोई पत्रिका अवश्य प्रकाशित हुई। इस अवधि में प्रकाशित होने वाली राजनीतिक पत्रिकाएँ निम्नलिखित हैं :

▶ पत्रकारिता के केंद्र कलकत्ता

1. हितवाणी, नृसिंह, 1907, साप्ताहिक, सं. अंबिकाप्रसाद वाजपेयी।
2. अभ्युदय, 1907, साप्ताहिक, प्रयाग, सं. मदनमोहन मालवीय।
3. कर्मयोगी, 1909, साप्ताहिक, प्रयाग, सं. सुंदरलाल।
4. मर्यादा, 1909, मासिक, प्रयाग, सं. कृष्णकांत मालवीय।
5. प्रताप, 1913, साप्ताहिक, कानपुर, सं. गणेशशंकर विद्यार्थी।
6. प्रभा, 1913, मासिक, खंडवा, सं. कालूराम जी।

इस अवधि में कलकत्ता से दो दैनिक समाचार पत्र 'कलकत्ता-समाचार' (1914) और 'विश्वमित्र' (1918) भी प्रकाशित हुए।

आलोच्य युग में प्रकाशित होने वाली प्रमुख साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिकाएँ निम्नलिखित हैं :

1. सरस्वती, 1900, मासिक, इलाहाबाद, प्रारंभ में इसका संपादन काशी से होता था। 1903 ई. से महावीरप्रसाद द्विवेदी इसके संपादक नियुक्त हुए।

2. सुदर्शन, 1900, मासिक, काशी, सं. देवकीनंदन खत्री, माधवप्रसाद मिश्र।

3. समालोचक, 1902, मासिक, जयपुर, सं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी।

4. देवनागर, 1907, मासिक, कलकत्ता, सं. उमापतिदत्त शर्मा और यशोदानंदन अखौरी।

5. इंदू, 1909, मासिक, काशी, सं. अंबिका प्रसाद गुप्त।

6. मनोरंजन, 1012, मासिक, शाहाबाद से इश्वरीप्रसाद शर्मा।

7. प्रथा, 1913, मासिक, खंडवा, मई, 1917 तक साहित्यिक पत्रिका राजनीतिक हो गयी।

8. पाटलिपुत्र, 1914, मासिक, पटना, सं. काशीप्रसाद जायसवाल।

इस युग के कुछ साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिकाओं में भी राजनीतिक प्रश्नों पर विचार व्यक्त किये जाते थे। 'सरस्वती' और 'देवनागर' ऐसी पत्रिकाएँ थीं जो सभी विषयों को प्रकाशित करती थीं। द्वितीय महायुद्ध के बाद भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का प्रभाव हिन्दी-पत्रकारिता पर भी पड़ा। बहुत-सी नयी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाश में आयीं, जिसमें उनके स्वर की उग्रता कुछ कम हुई। अहिंसक आंदोलन का समर्थन करने में इस युग की साहित्य-समृद्धि एवं भाषा-परिष्कार में पत्र-पत्रिकाओं का बहुत बड़ा योगदान है। भारतेंदु युग में तो पत्रकारिता और साहित्य दोनों प्रायः एक ही स्तर पर विकसित हो रहे थे। आलोच्य-युग में इस स्थिति में कुछ अंतर आया। कुछ गंभीर साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं, जो समाज-सुधार या राजनीतिक उथल-पुथल से प्रत्यक्ष संबंध नहीं रखतीं थीं। गद्य की विविध शैलियों एवं विधाओं के विकास में इस युग की पत्रिकाओं का स्थायी योगदान है। इस श्रेणी की पत्रिकाओं में 'सरस्वती' अन्यतम थी। इसमें संदेह नहीं कि 'सरस्वती' ने भाषा और साहित्य दोनों क्षेत्रों में नये युग का निर्माण किया। वह सचमुच आलोच्य युग की साहित्यिक उच्चता का निकष बन गयी थी।

▶ 'सरस्वती' ने भाषा और साहित्य दोनों क्षेत्रों में नये युग का निर्माण किया

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

द्विवेदी युगीन गद्य-साहित्य के विवेचनात्मक सर्वेक्षण के आधार पर कहा जा सकता है कि इस युग के साहित्य-सृजन का प्रेरक तत्व राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण ही था। भारतेंदु-युग में इस जागरण ने साहित्यधारा को नये पथ पर मोड़ दिया था और साहित्य तथा समाज के अंतराल को कम किया था। यह जागरण प्रत्येक साहित्यविधा का अंतर्वर्ती प्रवाह बन गया। निबंध हो या आलोचना, कहानी हो या उपन्यास, उसके कलात्मक परिधान को हटा देने पर भीतर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण की चेतना अवश्य लक्षित होती है। इस जागरण ने साहित्य के मूल्यों में परिवर्तन किया। शास्त्रीय रूढ़ियाँ टूटीं, साहित्य का उद्देश्य व्यापक जनसमुदाय को प्रभावित करना और उसे आदर्श जीवन की ओर मोड़ना माना गया। मुद्रण-व्यवस्था ने इस उद्देश्य की पूर्ति में योग दिया। साहित्य कुछ रसिकों की वस्तु न रह कर समस्त शिक्षित जनता की वस्तु बन गया। नयी जीवनदृष्टि ने नयी भाषा को माध्यम बनाया। खड़ीबोली पूर्णतः प्रतिष्ठित हुई। वह उसे पंडिताऊपन और ठेठ गंवारूपन से मुक्त होकर मांजा-संवारा गया। वस्तुतः हिन्दी-प्रदेश की जनता अपने सारे जीवन को नये ढंग से व्यवस्थित कर रही थी, अपने को नये युग के अनुकूल बना रही थी। इसलिए भाषा को भी युग की नयी चेतना की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम बनाने की चेष्टा की गयी। लेखकों का ध्यान हिन्दी के प्रचार-प्रसार और परिमार्जन के साथ ही उसके अभावों की ओर भी गया और अपने सीमित साधनों को संघटित करके उन्होंने योजनाबद्ध रूप में साहित्य के अभावों की पूर्ति का प्रयत्न किया।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. सरस्वती पत्रिका पर टिप्पणी लिखिए।
2. द्विवेदी युगीन पत्र-पत्रिकाएँ पर टिप्पणी लिखिए।
3. हिन्दी नवजागरण और सरस्वती पर टिप्पणी लिखिए।
4. हिन्दी पत्रकारिता में द्विवेदी का योगदान पर मूल्याकंन कीजिए।
5. सरस्वती पत्रिका एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी विषय पर आलेख लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
5. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
6. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय
7. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
8. हिन्दी काव्य का इतिहास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
9. हिन्दी कविता का प्रवृत्तिगत इतिहास - पूरणचंद टण्डन, विनीता कुमारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रामचंद्र शुक्ल
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

SGOU

इकाई : 3

राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि-माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- राष्ट्रीय काव्यधारा से अवगत होता है
- माखनलाल चतुर्वेदी के बारे में समझता है
- राष्ट्रीय काव्यधारा की प्रमुख रचनाओं की जानकारी प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

द्विवेदी युग का साहित्य अनेक अमूल्य रचनाओं का सागर है, इतना समृद्ध साहित्य किसी भी दूसरी भाषा का नहीं है और न ही किसी अन्य भाषा की परम्परा का साहित्य एवं रचनाएँ अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में इतने दीर्घ काल तक रह पाई है। कालक्रम की दृष्टि से द्विवेदी युग के कवि और उनकी रचनाएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। द्विवेदी युग के प्रमुख कवियों में नाथूराम शर्मा 'शंकर, श्रीधर पाठक, महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'हरिऔध, राय देवी प्रसाद 'पूर्ण, रामचरित उपाध्याय, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही, मैथिली शरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, बाल मुकुन्द गुप्त, लाला भगवान 'दीन, लोचन प्रसाद पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डेय, आदि प्रमुख हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

राष्ट्रीय काव्यधारा,माखनलाल चतुर्वेदी,बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान

Discussion / चर्चा

राष्ट्रीय काव्यधारा ऐसी काव्य प्रवृत्ति है, जिसमें राष्ट्र जन को तेजस्वी और पराक्रमी बनाने की सामर्थ्य निहित है। राष्ट्रीय धारा के कवियों ने जनमानस में देश के प्रति प्रेम, आत्मविश्वास व स्वतन्त्रता की चेतना को जागृत करने का कार्य किया। भारत में आन्तरिक विसंगतियाँ, पराधीनता आदि के उन्मूलन केलिए इस काव्यधारा प्रेरणादायक रही। अतः राष्ट्रीय काव्यधारा के समस्त कवियों ने अपने काव्य में देशप्रेम व स्वतन्त्रता की उत्कृष्ट भावना की अभिव्यक्ति की है। राष्ट्रीय काव्य धारा के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित हैं;

2.3.1 माखनलाल चतुर्वेदी

राष्ट्रीय काव्यधारा के प्रणेता के रूप में माखनलाल चतुर्वेदी का स्थान प्रमुख है। उनकी

रचनाओं में 'हिमकिरीटनी', 'हिमतरंगिनी', 'माता', 'युगचरण', 'समर्पण' आदि काव्य कृतियों के माध्यम से उनकी राष्ट्रीय भाव धारा से अवगत हो सकता है। उनकी कविताओं में राष्ट्रीय जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। माखनलाल चतुर्वेदी अपनी ओज प्रधान कविता 'जवानी' में भारतीय जनमानस को आन्तरिक शक्ति जागृत करने की प्रेरणा देते है। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता 'पुष्प की अभिलाषा' में पुष्प को अपना बलिदान उनके लिए देने को कहा है जो पथ बलिदान के लिए जा रहे वीरों का है।

▶ उनकी कविताओं में राष्ट्रीय जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है

2.3.2 बाबू मैथिलीशरण गुप्त

'सरस्वती' का संपादन द्विवेदीजी के हाथ में आने के प्रायः तीन वर्ष पीछे (सं. 1963 से) बाबू मैथिलीशरण गुप्त की खड़ी बोली की कविताएँ उक्त पत्रिका में निकलने लगीं और उनके संपादनकाल तक बराबर निकलती रहीं। संवत् 1966 में उनका 'रंग में भंग' नामक एक छोटा सा प्रबंधकाव्य प्रकाशित हुआ जिसकी रचना चित्तौड़ और बूँदी के राज घरानों से संबंध रखनेवाली राजपूती आन की एक कथा को लेकर हुई थी। तब से गुप्त जी का ध्यान प्रबंधकाव्यों की ओर बराबर रहा और वे बीच-बीच में छोटे या बड़े प्रबंधकाव्य लिखते रहे। गुप्तजी की ओर पहले पहल हिन्दी प्रेमियों का सबसे अधिक ध्यान खींचनेवाली उनकी 'भारत भारती' निकली। इसमें 'मुसद्दस हाली' के ढंग पर भारतीयों की या हिंदुओं की भूत और वर्तमान दशाओं की विषमता दिखाई गई है; भविष्यनिरूपण का प्रयत्न नहीं है। यद्यपि काव्य की विशिष्ट पदावली, रसात्मक चित्रण, वाग्वैचित्र्य इत्यादि का विधान इसमें न था, पर बीच में मार्मिक तथ्यों का समावेश बहुत साफ और सीधी सादी भाषा में होने से यह रचना स्वदेश की ममता से पूर्ण नवयुवकों को बहुत प्रिय हुई। प्रस्तुत विषय को काव्य का पूर्ण स्वरूप न दे सकने पर भी इसने हिन्दी कविता के लिये खड़ी बोली की उपयुक्तता अच्छी तरह सिद्ध कर दी। इसी ढंग पर बहुत दिनों पीछे इन्होंने 'हिंदू' लिखा। 'केशों की कथा', 'स्वर्गसहोदर' इत्यादि बहुत सी फुटकल रचनाएँ इनकी 'सरस्वती' में निकली हैं, जो 'मंगल घट' में संग्रहीत हैं।

▶ 1966 में 'रंग में भंग' प्रकाशित

2.3.3 अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का नाम खड़ी बोली को काव्य भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले कवियों में बहुत आदर से लिया जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में 1890 ई. के आस-पास अयोध्यासिंह उपाध्याय ने साहित्य सेवा के क्षेत्र में पदार्पण किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय का जन्म जिला आजमगढ़ के निजामाबाद नामक स्थान में सन् 1865 ई. में हुआ था। हरिऔध के पिता का नाम भोलासिंह और माता का नाम रुक्मणी देवी था। अस्वस्थता के कारण हरिऔध जी का विद्यालय में पठन-पाठन न हो सका, अतः इन्होंने घर पर ही उर्दू, संस्कृत, फारसी, बांग्ला एवं अंग्रेजी का अध्ययन किया। 1883 में ये निजामाबाद के मिडिल स्कूल के हेडमास्टर हो गए। 1890 में कनूनगो की परीक्षा पास करने के बाद आप कानूनगो बन गए। सन् 1923 में पद से अवकाश लेने पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक बने।

▶ जन्म आजमगढ़ जिला

हरिऔध को कवि रूप में सर्वाधिक प्रसिद्धि उनके प्रबन्ध काव्य 'प्रियप्रवास' के कारण मिली। 'प्रियप्रवास' की रचना संस्कृत की कोमल कान्त पदावली में हुई है और उसमें तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। इनके काव्यग्रंथों में 'प्रियप्रवास' (1914), 'पद्यप्रसून' (1925), 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे' (1932), 'बोलचाल', 'रसकलस' तथा 'वैदेही-वनवास' (1940) प्रसिद्ध

हैं। इनमें से 'प्रियप्रवास' खड़ीबोली में लिखा गया प्रथम महाकाव्य है। इसमें राधा और कृष्ण को सामान्य नायक-नायिका के स्तर से ऊपर उठा कर विश्वप्रेमी के रूप में चित्रित करने में 'हरिऔध' ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। महाकाव्यत्व की दृष्टि से भी यह एक सफल ग्रंथ है। इनकी दूसरी उल्लेख्य रचना है 'रसकलस'। 'हरिऔध' जी ने ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में रचनाएँ की हैं। ब्रजभाषा में 'रसकलस'की रचना हुई है, तो 'प्रियप्रवास' तथा 'वैदेही-वनवास' खड़ीबोली में। इनकी अपूर्व साहित्य-सेवा के कारण ही हिन्दी-संसार इन्हें 'कवि सम्राट' के रूप में स्मरण करता है। दो बार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सभापति बना कर हिन्दी जगत ने इनका यथोचित सम्मान किया। नागरीप्रचारिणी सभा ने अभिनंदनग्रंथ प्रदान कर इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की थी। 'प्रियप्रवास' पर इन्हें हिन्दी का सर्वोत्तम पुरस्कार 'मंगलाप्रसाद परितोषिक' प्रदान किया गया था। इनकी काव्यशैली बड़ी मार्मिक और भावपूर्ण है।

▶ हरिऔध का सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य 'प्रियप्रवास'

2.3.4 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कविता में राष्ट्रीयता, श्रृंगारिकता एवं रहस्यात्मकता तीनों प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। 'नवीन' जी भी भारत की यथार्थ स्थिति का चित्रण करते हुए भारतवासियों को जागृत होने के लिए प्रेरित करते हैं। नवीन जी की निम्नलिखित पंक्तियों में क्रान्ति व विध्वंस का स्वर मुखरित होता है:

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए।।"

▶ भारत की यथार्थ स्थिति का चित्रण

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने अपनी अधिकांश रचनाएँ जेल में लिखीं। वे फकीर बादशाह थे।

2.3.5 रामनरेश त्रिपाठी

राष्ट्रीय भावना के प्रमुख कवियों में रामनरेश त्रिपाठी का विशिष्ट स्थान है। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं में 'मानसी', 'पथिक', 'मिलन' तथा 'स्वप्न' आदि हैं। 'पथिक और 'मिलन' खण्डकाव्य है, जिसमें काल्पनिक कथाओं के माध्यम से देश के उद्धार के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना को व्यक्त किया गया है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से भारत देश के अतीत गौरव को सरल शब्दो में व्यक्त किया है।

▶ प्रमुख रचनाएँ - 'मानसी', 'पथिक', 'मिलन' तथा 'स्वप्न'

2.3.6 सियाराम शरण गुप्त

सियाराम शरण गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई थे। गाँधीवाद में इनकी अटूट आस्था थी। इनकी सभी रचनाओं पर अहिंसा, सत्य, करुणा, विश्वबन्धुत्व, शान्ति आदि गांधीवादी मूल्यों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। मौर्यविजय', 'अनाथ', 'पूर्वादल' 'विषाद', 'आर्द्रा', 'पाथेय', 'मृण्मयी', 'बाबू', 'दैनिकी' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। वे आशावादी कवि हैं।

▶ सियाराम शरण गुप्त मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई थे

'यह क्या हुआ। दीख पड़ती थी तू तो काली-काली कहाँ छिपाएँ थी उस तम में यह अपूर्व उजियाली।'

2.3.7 सोहनलाल द्विवेदी

सोहनलाल द्विवेदी ने राष्ट्रप्रेम की भावनाओं से अभिभूत कई काव्य संग्रह लिखे हैं जिनमें 'भैरवी', 'पूजागीत', 'वासवदत्ता', विषपान आदि प्रमुख हैं। द्विवेदी जी पर गांधीवादी

▶ गांधीवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है

विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

2.3.8 सुभद्राकुमारी चौहान

राष्ट्रीय काव्यधारा को विकसित करने में सुभद्राकुमारी चौहान का महत्वपूर्ण योगदान है। 'त्रिधारा', 'मुकुल', 'झाँसी की रानी' 'वीरों का कैसा हो वसन्त' आदि कविताओं में तीखे भावों की पूर्ण भावना मुखरित है। उन्होंने असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। आन्दोलन के दौरान उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। उनकी 'झाँसी की रानी' कविता बहुत प्रसिद्ध है। 'जलियाँवाला बाग में वसन्त' कविता में इस नृशंस हत्याकाण्ड पर कवयित्री के करुण क्रन्दन से उसकी मूक वेदना मूर्तिमान हो उठी है-

▶ झाँसी की रानी' प्रसिद्ध कविता

'आओ प्रिय ऋतुराज, किन्तु धीरे से आना यह है शोक स्थान, यहाँ मत शोर मचाना कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा-खा कर कलियाँ उनके लिए चढ़ाना थोड़ी सी लाकर।'

2.3.9 रामधारी सिंह 'दिनकर'

दिनकर ने अपनी काव्य कृतियों 'हुँकार रेणुका', 'विपदा' आदि में साम्राज्यवादी सभ्यता और ब्रिटिश सरकार के प्रति अपनी प्रखर ध्वंसात्मक दृष्टि का परिचय देते हुए क्रान्ति का आह्वान किया है। पराधीनता के प्रति प्रबल विद्रोह के साथ इसमें पौरुष अपनी भीषणता और भयंकरता के साथ अभिव्यक्त है।

▶ क्रान्ति का आह्वान

2.3.10 श्यामनारायण पाण्डेय

श्यामनारायण पाण्डेय जी ने 'हल्दीघाटी' तथा 'जौहर' जैसे प्रबन्ध काव्यों की रचना की। हल्दीघाटी महाराणा प्रताप के जीवन पर तथा 'जौहर' रानी पद्मिनी की जौहर कथा पर आधारित काव्य है। इन काव्यों में अद्भुत प्रवाह, ओज और सादगी है। इनकी राष्ट्रीयता अपने समय की सामायिक भारतीय राष्ट्रीयता न होकर हिन्दू राष्ट्रीयता है।

▶ 'हल्दीघाटी' तथा 'जौहर' जैसे प्रबन्ध काव्यों को रचना की

2.3.11 नाथूराम शर्मा शंकर

नाथूराम शर्मा शंकर का जन्म अलीगढ़ जिले के हरदुआगंज नामक स्थान पर सन् 1859 ई. में हुआ। ये हिन्दी, उर्दू तथा अंग्रेज़ी भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे तथा बचपन से ही कविता लिखा करते थे। आरम्भ में इनकी रचनाएँ भारतेन्दु युग की 'ब्रह्मण पत्रिका' में छपती थीं, फिर 'सरस्वती पत्रिका' में छपने लगी। आरम्भ में ये ब्रजभाषा के कवि थे, लेकिन बाद में खड़ी बोली में लिखने लगे। उन्होंने देशप्रेम, स्वदेशी प्रयोग, समाज सुधार, हिन्दी अनुराग, विधवाओं तथा अछूतों को अपने काव्य का विषय बनाया।

▶ नाथूराम शर्मा शंकर की रचनाएँ भारतेन्दु युग की 'ब्राह्मण पत्रिका' में छपती थीं

'अनुरागरत्न', 'शंकर-सरोज' 'गर्भरण्डा रहस्य' तथा 'शंकर सर्वस्व' इनके प्रमुख काव्यग्रंथ हैं। वे 'भारतेन्दु प्रज्ञेन्दु', 'साहित्य सुधाकर' आदि उपाधियों से विभूषित थे।

2.3.12 राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का जन्म जबलपुर में सन् 1868 में हुआ। उन्होंने बी.ए. तक की शिक्षा जबलपुर से प्राप्त की। कुछ समय वकालत की, इसके अतिरिक्त वे सार्वजनिक कार्यों में उत्साह से भाग लेते थे। वे संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे तथा वेदान्त में उनकी विशेष रुचि थी। वे साहित्य के अध्ययन में दत्तचित्त रहे।

उनकी कविताएँ बड़ी सरस एवं भावपूर्ण हैं। ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों पर उनका समान अधिकार था। उन्होंने श्रृंगार आदि परम्परागत विषयों पर ब्रजभाषा में तथा देशभक्ति आदि नवीन विषयों पर खड़ीबोली का प्रयोग किया है। उन्होंने प्रकृति सौन्दर्य का वर्णन भी किया है। उनके प्रकृति चित्रण सरल और स्वाभाविक हैं। कालिदास के 'मेघदूत' का अनुवाद उन्होंने 'धारा धरधावन' (1902 ई.) शीर्षक से किया है।

▶ कालिदास के 'मेघदूत' का ब्रजभाषा पद्य में अनुवाद 'धारा धरधावन शीर्षक से किया

उनकी अन्य उल्लेखनीय काव्य कृतियाँ है 'स्वदेशी कुण्डल' (1910 ई) 'मृत्युजय' (1904 ई.), 'रामरावण विरोध' (1906 ई.) तथा 'वसन्त-वियोग (1912 ई.) आदि।

2.3.13 रामचरित उपाध्याय

रामचरित उपाध्याय गाजीपुर के रहने वाले थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा संस्कृत में हुई बाद में उन्होंने ब्रजभाषा और खड़ी बोली पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया। उन्होंने प्राचीन विषयों पर ही कविताएँ लिखी, लेकिन आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क आने पर खड़ी बोली तथा नवीन विषयों पर कविताएँ लिखना आरम्भ की। उनकी प्रमुख कृतियों में 'राष्ट्र भारती', 'देवदूत', 'देवसभा' तथा 'विचित्र विवाद' आदि है। इनके अतिरिक्त उपाध्याय जी ने 'रामचरित चिन्तामणि' नामक प्रबन्धकाव्य की रचना भी की।

▶ 'रामचरित चिन्तामणि' नामक प्रबन्धकाव्य की रचना की

2.3.14 गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' का जन्म उन्नाव जिले के हड़हा ग्राम में सन् 1883 में हुआ। उर्दू के विद्वान थे। अतः हिन्दी के साथ-साथ उर्दू में भी अच्छी कविता लिखा करते हिन्दी में उन्होंने प्राचीन और नवीन शैलियों की कविता लिखी है। श्रृंगार आदि परम्परागत विषयों पर वे 'सनेही' उपनाम से तथा राष्ट्रीय भावनाओं की कविता को 'त्रिशूल' उपनाम से लिखते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए उन्होंने अनेक प्रणयगीत तथा बलिदान गीत लिखे। उन्होंने पराधीन भारत की दुर्दशा, आर्थिक विषमता, अस्पृश्यता आदि विषयों पर बड़ी मार्मिक एवं प्रभावी कविताओं का सृजन किया। उनकी मुख्य काव्य कृतियाँ हैं- 'कृषक-क्रंदन', 'प्रेम-पचीसी', 'राष्ट्रीय वीणा', 'त्रिशूल तरंग', 'करुणा-कादम्बिनी' आदि। इस युग के अन्य कवियों में बालमुकुन्द गुप्त, भगवानदीन, सैयद अमीर अली 'मीर' कामताप्रसाद गुरु, गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', रूपनारायण पाण्डेय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, गोपालशरण सिंह तथा मुकुटधर पाण्डेय सम्मिलित हैं।

▶ 'त्रिशूल' उपनाम से लिखते थे

राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के कवियों की रचनाएँ भारतीय सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना को समृद्ध और प्रबल बनाती हैं।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

द्विवेदी युग के प्रसिद्ध कवियों में जिन्हें गिना जाता है, उनके नाम इस प्रकार हैं- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामचरित उपाध्याय, जगन्नाथदास 'रत्नाकर, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, लोचन प्रसाद पाण्डेय, सियारामशरण गुप्त।

द्विवेदी युगीन साहित्य अपने योगदान के लिए प्रसिद्ध है। यह एक नए विचारों और बौद्धिक विकास का काल था, जिसने उस समय की सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि को बदल दिया। द्विवेदी युग के कवियों में राष्ट्रवादी काव्य आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अपनी रचनाओं में देशभक्ति, आत्मविश्वास, और स्वतंत्रता संघर्षों की जागरूकता को समाहित किया, जो भारतीय जनता पर गहरी छाप छोड़ी। इन कवियों ने भारतीय समाज के विभिन्न मुद्दों और समस्याओं पर विचार करके उन्हें साहित्यिक रूपों में प्रस्तुत किया, जिससे हिन्दी साहित्य को समृद्धि और गहराई मिली।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. द्विवेदी युग के कवियों पर टिप्पणी लिखिए।
2. माखनलाल चतुर्वेदी पर टिप्पणी लिखिए।
3. अयोध्यासिंह उपाध्याय पर आलोचना लिखिए।
4. द्विवेदी युग के प्रबंध काव्य परंपरा पर चर्चा कीजिए।
5. द्विवेदी युग के प्रमुख कवि मैथिलिशरण गुप्त पर टिप्पणी तैयार कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
5. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
6. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय
7. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
8. हिन्दी काव्य का इतिहास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
9. हिन्दी कविता का प्रवृत्तिगत इतिहास - पूरणचंद टण्डन, विनीता कुमारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रामचंद्र शुक्ल
4. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 4

द्विवेदी युगीन गद्य साहित्य के अन्य विधाएँ, स्वच्छंदतावाद और उसके प्रमुख कवि

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- द्विवेदीयुगीन गद्य साहित्य की प्रमुख विधाओं से परिचय प्राप्त करता है
- स्वच्छंदतावाद से परिचय प्राप्त करता है
- स्वच्छंदतावाद के प्रमुख कवि एवं उनकी रचनाओं से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

गद्य के क्षेत्र में नयी गति महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयासों से आई। वे सन् 1903 में 'सरस्वती' के सम्पादक नियुक्त हुए तथा इस पत्रिका के माध्यम से ही उन्होंने अपने युग के हिन्दी साहित्यकारों का नेतृत्व करते हुए उनका ध्यान हिन्दी गद्य और पद्य की विभिन्न न्यूनताओं एवं त्रुटियों की ओर आकर्षित किया। जहाँ पद्य के क्षेत्र में उन्होंने खड़ी-बोली की प्रतिष्ठा के आन्दोलन को दृढ़ किया वहाँ गद्य के क्षेत्र में भाषा की शुद्धता, शब्दों-रूपों की एकरूपता, व्याकरण के दोष-परिष्कार आदि की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया।

Keywords / मुख्य बिन्दु

नाट्यसाहित्य, उपन्यास, कहानी, यात्रावृत्तांत, संस्मरण, जीवनी

Discussion / चर्चा

द्विवेदी-युग में रचित गद्य-साहित्य के मूल में कार्य करने वाली सांस्कृतिक चेतना का महत्व कई दृष्टियों से मान्य है। इस समय विदेशी शासन के प्रति जनता में असंतोष व्यापक हुआ, तथा राष्ट्रीय चेतना विकसित हुई। साथ ही जनता में स्वतंत्रता प्राप्ति का मोह भी शक्तिशाली था। जिसकी अभिव्यक्ति इस युग के साहित्य में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में हुई।

- राष्ट्रीय जागरण एवं सुधार की भावना

यह निर्विवाद है कि धार्मिक-सामाजिक क्षेत्र में क्रमशः उदारता और सहिष्णुता की भावनाएँ फैलती जा रही थीं। यह राजनीतिक जागरूकता, आर्थिक समझदारी, सामाजिक-धार्मिक उदारता तथा राष्ट्रप्रेम मुख्यतः शिक्षित मध्यवर्ग की जनता के जागरण का परिणाम था। साहित्य-रचना भी इसी शिक्षित मध्यवर्गीय समाज द्वारा की जा रही थी। यह वर्ग सर्वाधिक संवेदनशील था। साहित्यकारों के मन पर राष्ट्र की प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना का प्रभाव पड़ता था और वह उनकी रचनाओं में प्रतिबिंबित होता था। यही कारण है कि आलोच्य काल के गद्य-साहित्य की प्रत्येक विधा में अंतर्निहित चेतना एक ही है और वह व्यापक राष्ट्रीय जागरण

एवं सुधार की भावना से संबद्ध है।

द्विवेदी युग विशेष रूप से गद्य साहित्य के विकास के लिए जाना जाता है, और इस काल के प्रमुख लेखकों ने गद्य साहित्य की नई दिशाओं की खोज की।

2.4.1 द्विवेदी युगीन गद्य साहित्य

2.4.1.1 नाट्यसाहित्य

आलोच्य काल नाट्यसाहित्य की दृष्टि से सबसे कम समृद्ध है। जहाँ भारतेंदु ने सुरुचिपूर्ण साहित्यिक नाटकों को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया था और उनके सहयोगी साहित्यकार नाटक-रचना को साहित्यिक प्रतिभा की कसौटी मानते थे, वहाँ भारतेन्दु के बाद आलोच्य काल में लिखे गये नाटक कम नहीं है, किंतु महत्व की दृष्टि से वे नगण्य है। (क) पौराणिक नाटक, (ख) ऐतिहासिक नाटक, (ग) सामयिक उपादानों पर रचित नाटक, (घ) रोमांचकारी नाटक, (ङ) प्रहसन और (च) अनूदित नाटक।

▶ भारतेंदु ने नाटकों को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया

द्विवेदी-युग में पौराणिक नाटकों में राधाचरण गोस्वामिकृत-श्रीदामा(1904), शिवनंदन सहाय-कृत 'सुदामा' नारायण मिश्र-कृत 'कंसवध' (1910) गंगाप्रसाद कृत 'रामाभिषेक' (1910), रामनारायण मिश्र-कृत जनक बडा 1918), नारायणसहाय-कृत 'रामलीला' (1911) और रामगुलामलाल कृत धनुयज्ञ लीला(1912), महावीर सिंह का 'नल-दमयंती' (1905), गौरचरण गोस्वामी का 'अभिमन्यु-वध' (1906), लक्ष्मीप्रसाद का 'उर्वशी' (1910), हनुमंतसिंह का 'सती-चरित्र' (1910), शिवनंदन मिश्र का 'शकुंतला' (1911), जयशंकर प्रसाद कृत 'करुणालय', हरिदास माणिक कृत 'पाण्डव-प्रताप' (1917) तथा माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन-युद्ध' (1918) उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त नाटकों में पौराणिक आख्यानों एवं चरित्रों के माध्यम से जनता को उपदेश देने की प्रवृत्ति ही प्रधान है।

▶ माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन-युद्ध' एक पौराणिक नाटक है

ऐतिहासिक नाटकों में गंगाप्रसाद गुप्त का 'वीर जयमल' (1903), वृंदावनलाल वर्मा का 'सेनापति ऊदल' (1909), बद्रीनाथ भट्ट का 'चंद्रगुप्त' (1915), कृष्णप्रकाश सिंह का 'पन्ना' (1915), हरिदास माणिक का 'संयोगिताहरण' (1915), जयशंकर प्रसाद का 'राज्यश्री' (1915) और परमेश्वर दास जैन का 'वीर चूड़ावत सरदार' (1918) उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण नहीं हो सका है। 'राज्यश्री' में प्रसाद ने इतिहासतत्व की रक्षा अवश्य की है। वस्तुतः हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक नाटकों का सूत्रपात प्रसाद से ही हुआ है।

▶ 'राज्यश्री' में प्रसाद ने इतिहासतत्व की रक्षा की

सामयिक उपादानों पर आधृत नाटकों में प्रतापनारायण मिश्र-कृत 'भारत-दुर्दशा' (1902), भगवतीप्रसाद-कृत 'वृद्ध-विवाह' (1905), जीवानंद शर्मा-कृत 'भारतविजय' (1906), कृष्णानंद जोशी-कृत 'उन्नति कहाँ से होगी' (1915) और मिश्रबंधु-कृत 'नेत्रोन्मीलन' (1915) उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में सामयिक सामाजिक-राजनीतिक जीवन की विकृतियों को उभारने की चेष्टा की गयी है, किंतु इनका लक्ष्य समाजसुधार ही था। नाट्यकला की दृष्टि से इनका विशेष महत्व नहीं है।

▶ भगवतीप्रसाद-कृत 'वृद्ध-विवाह'

रोमांचकारी नाटक मुख्यतः रोमांचकारी एवं अलौकिक घटनाओं को केंद्र में रख कर पारसी रंगमंच की दृष्टि से लिखे गये। इन्हें इतिहासकारों ने मंचीय नाटक भी कहा है। नाटक की कथावस्तु की रचना फांटसी प्रेमाख्यानों और पौराणिक आख्यानों को लेकर की गई है। ये

नाटक व्यवसायी नाटक मंडलियों के लिए लिखे गये हैं, इसलिए इनके आधार पर तत्कालीन जनसामान्य की रुचि का अनुमान लगाया जा सकता है। रोमांचकारी रंगमंचीय नाटककारों में मोहम्मद मियाँ 'रौनक, विनायकप्रसाद 'तालिब', सैयद मेहंदी हसन 'अहसान', नारायणप्रसाद 'बेताब', आगा मौहम्मद 'हश्र' और राधेश्याम उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों का प्रारंभ 'कोरस' से होता था। इनमें प्रायः प्रमुख कथा के समानांतर एक 'प्रहसन' भी चलता था, जो दर्शकों को हंसाने या मूल नाटक की भावधारा में परिवर्तन लाने के लिए प्रयुक्त होता था। आगे चल कर नाटककारों ने प्रमुख कथा के अंतर्गत ही हास्य तत्व का समावेश करना उचित समझा। रोमांचक रंगमंचीय नाटकों की भाषा में उर्दू-फारसी की शब्दावली का प्राधान्य था। क्रमशः इसमें परिवर्तन हुआ और साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया जाने लगा। वस्तुतः व्यवसायी पारसी-कंपनियों का उद्देश्य सामान्य जनता का मनोरंज करके धनोपार्जन करना था। इनकी प्रतिक्रिया में कुछ अव्यवसायी नाटक-मंडलियाँ भी सामने आयीं। इनमें श्रीरामलीला नाटक-मंडली (प्रयाग), काशी नागरी नाटक-मंडली, भारतेंदु नाटक-मंडली, हिन्दी नाट्यपरिषद (कलकत्ता) आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटक-मंडलियों ने अपेक्षाकृत साहित्यिक और सुरुचिपूर्ण नाटकों का मंचन किया।

▶ रोमांचकारी एवं अलौकिक घटनाओं को केंद्र में रख कर

आलोच्य युग में नाटकों के अंतर्गत प्रमुख कथाधारा के समानांतर चलने वाले प्रहसनों के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से भी कुछ प्रहसनों की रचना की गयी। बद्रीनाथ भट्ट का 'चुंगी की उम्मीदवारी' (1912) एक अच्छा प्रहसन है। इसके विपरीत गंगाप्रसाद श्रीवास्तव कृत 'उलटफेर' (1918) और 'नोंक-झोंक' (1918) में छिछले हास्य की सृष्टि की गयी है। द्विवेदी-युग में संस्कृत, अंग्रेज़ी और बंगला भाषा से कुछ नाटकों के अनुवाद भी हुए।

2.4.1.2 उपन्यास

आलोच्य काल कथा-साहित्य की दृष्टि से अपेक्षाकृत समृद्ध है, किंतु इस क्षेत्र में लेखकों और पाठकों की प्रवृत्ति कुतूहल, रहस्य और रोमांच के माध्यम से मनोरंजन करने में अधिक रही है। सामाजिक जीवन की यथार्थ समस्याओं को ले कर गंभीर उपन्यासों की रचना इस युग में कम हुई। रहस्यमयी अद्भुत घटनाओं को श्रृंखलाबद्ध करके एक अपरिचित संसार में पाठकों को भटकाते रहना लेखकों का प्रधान लक्ष्य प्रतीत होता है। प्रवृत्ति-भेद के आधार पर द्विवेदीयुगीन उपन्यासों को पांच वर्गों में रखा जा सकता है-

▶ द्विवेदीयुगीन उपन्यासों को पांच वर्गों में रखा जा सकता है

तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास, जासूसी उपन्यास, अद्भुत घटनाप्रधान उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास और सामाजिक उपन्यास।

तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों की परंपरा देवकीनंदन खत्री (1861 - 1913) द्वारा भारतेंदु-युग में आरंभ की गयी। आलोच्य युग में यह परंपरा जीवित रही। खत्री जी के 'काजर की कोठरी'(1902), 'अनूठी बेगम' (1905), 'गुप्त गोदना' (1906), 'भूतनाथ' प्रथम छह भाग(1906) आदि उपन्यास इसी युग में प्रकाशित हुए।

▶ देवकीनंदन खत्री के 'काजर की कोठरी'

खत्री जी की परंपरा का निर्वाह हरेकृष्ण जौहर ने 'मयंकमोहिनी या मायामहल' (1901), 'कमलकुमारी' (1902), 'निराला नक़ाबपोश' (1902), 'भयानक खून' (1903) आदि तिलस्मी उपन्यासों की रचना द्वारा किया। किशोरीलाल गोस्वामी-कृत 'तिलस्मी शीशमहल' (1905) और रामलाल वर्मा-कृत 'पुतली महल' (1908) भी इसी वर्ग की रचनाएँ हैं। आगे चलकर देवकीनंदन खत्री के सुपुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने 'भूतनाथ' के शेष भागों को लिख कर

▶ दुर्गाप्रसाद खत्री ने 'भूतनाथ' के शेष भागों को लिखा

इस परंपरा को आगे बढ़ाया।

जासूसी उपन्यासों का प्रवर्तन गोपालराम गहमरी (1866-1946) ने किया था। गहमरी जो अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध जासूसी उपन्यासकार आर्थर कानन डायल से प्रभावित थे, उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'ए स्टडी इन स्कारलेट' (1887) को उन्होंने 'गोविंदराम' (1905) शीर्षक से हिन्दी में रूपांतरित भी किया। गहमरी जी के जासूसी उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय हुए। 'सरकटी लाश' (1900), 'चक्करदार चोरी' (1901), 'जासूस की भूल' (1901), 'जासूस पर जासूसी' (1904), 'जासूस चक्कर में' (1906), 'इंद्रजालिक जासूस' (1910), 'गुप्त भेद' (1913), 'जासूस की ऐयारी' (1914) आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। गहमरी जी के अतिरिक्त रामलाल वर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी और जयरामदास गुप्त ने भी इस क्षेत्र में कुछ प्रयोग किये, किंतु सर्वाधिक ख्याति गहमरी जी को ही प्राप्त हुई।

▶ गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय हुए

अद्‌भुत घटनाप्रधान उपन्यासों की रचना तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों से भिन्न तकनीक पर की जाती थी। इनमें इसी लोक के किसी रहस्यमय कोने का उद्‌घाटन किया जाता था। इनकी प्रेरणा रेनाल्ड्स-कृत 'मिस्टीज ऑफ़ द कोर्ट ऑफ लंदन' के अनुवाद 'लंदन-रहस्य' से प्राप्त हई थी।

विट्ठलदास नागर का 'क़िस्मत का खेल' (1905), बांकेलाल चतुर्वेदी का 'खौफनाक खून (1912), निहालचंद वर्मा का 'प्रेम का फल या मिस जौहरा' (1913), प्रेमविलास वर्मा का प्रेममाधुरी या अनंगकांता' (1915) और दुर्गाप्रसाद खत्री का 'अद्‌भुत भूत' (1916) इस शैली के मुख्य उपन्यास हैं।

▶ दुर्गाप्रसाद खत्री का 'अद्‌भुत भूत' प्रमुख्य उपन्यास है

प्रस्तुत युग के ऐतिहासिक उपन्यास प्रायः मुस्लिमकाल के इतिहास से सामग्री लेकर लिखे गए मुख्य उपन्यास हैं।

प्रस्तुत युग के ऐतिहासिक उपन्यासों, इतिहास-तत्व की कमी है। लेखकों ने इतिहास की ऐसी घटनाओं का चयन किया है, जो पाठकों के कुतूहल एवं रहस्य-रोमांच-वृत्ति को पुष्ट कर सकें। किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त और मथुराप्रसाद शर्मा इस काल के उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। किशोरीलाल गोस्वामी-कृत 'तारा वा क्षात्रकुलकमलिनी' (1902), और 'लखनऊ की क़ब्र व शाही महलसरा' (1917) 'सुल्ताना रज़िया बेगम रंगमहल में हलाहल' (1904), 'मल्लिका देवी या बंग-सरोजिनी' ऐतिहासिक रसिक उपन्यास हैं। गंगाप्रसाद गुप्त के ऐतिहासिक उपन्यासों में 'नूरजहां' (1902), 'कुमारसिंह सेनापति' (1903) और 'हम्मीर' (1903) उल्लेखनीय हैं। इनमें भी इतिहास कम और रहस्य-सृष्टि करने वाली कल्पना अधिक है। मथुराप्रसाद शर्मा-कृत 'नूरजहाँ बेगम व जहांगीर' (1905) में इतिहास को सुरक्षित रखने की चेष्टा की गयी है। वस्तुतः आलोच्य युग में श्रेष्ठ कलात्मक ऐतिहासिक उपन्यासों की सृष्टि संभव ही नहीं थी। उस समय हिन्दीभाषी जनता का मानसिक उन्नयन एवं परिष्कार नहीं हुआ था। इस युग के सबसे सशक्त उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी (1865-1932) हैं। उपन्यास-रचना में इनका उद्देश्य प्रेम का विज्ञान प्रस्तुत करना था। इसलिए इनके द्वारा रचित ऐतिहासिक उपन्यासों के कथानक भी प्रेम की विविधता एवं रहस्यमयता के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास-सम्मत सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का चित्रण नहीं हुआ है तथा अनेक स्थलों पर कालदोष भी आ गया है।

▶ इस युग के सबसे सशक्त उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी हैं

द्विवेदी-युग के सामाजिक उपन्यासकारों में लज्जाराम शर्मा (1863-1931), किशोरीलाल गोस्वामी (1865-1932), अयोध्या सिंह उपाध्याय (1865-1941), ब्रजनंदन सहाय, राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह और मन्नन द्विवेदी (1884-1921) उल्लेखनीय हैं। लज्जाराम शर्मा के 'आदर्श दंपत्ति' (1904), 'बिगड़े का सुधार अथवा सती सुखदेवी' (1907), और 'आदर्श हिंदू' (1914), उपन्यासों का विशेष महत्व है। किशोरीलाल गोस्वामी के 'लीलावती वा आदर्श सती' (1901), 'चपला वा नव्य समाज' (1903-1904), 'पुनर्जन्म वा सौतिया डाह' (1907), 'माधवी माधव वा मदन मोहिनी' (1903-1910) और 'अंगूठी का नगीना' (1918) उपन्यासों को विशेष ख्याति प्राप्त हुई थी। अयोध्यासिंह उपाध्याय में उपन्यास-लेखन की प्रतिभा नहीं थी। इनके 'अधखिला फूल' (1907) में धार्मिक अंधविश्वासों का कुपरिणाम दिखाया गया है। 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' (1899) इनकी अपेक्षाकृत प्रसिद्ध रचना है, किंतु इसमें कथाविन्यास की अपेक्षा भाषा के विशिष्ट प्रयोग पर ही लेखक की अधिक दृष्टि रही है। ब्रजनंदन सहाय के 'सौंदर्योपासक' (1911) और 'राधाकांत' (1912)- ये दो उपन्यास अधिक प्रसिद्ध हुए।

▶ अयोध्यासिंह उपाध्याय की रचना 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' है

आलोच्ययुगीन उपन्यासों की महत्वपूर्ण परंपरा, जिसने आगे चल कर प्रेमचंद की उपन्यास रचना के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत की, सामाजिक उपन्यासों की ही है।

2.4.1.3 कहानी

हिन्दी-साहित्य में कहानियों का आरंभ कुछ बाद में हुआ। भारतेंदु-युग में कहानियाँ नहीं लिखीं गयीं। कुछ कथात्मक शैली के निबंध अवश्य लिखे गये थे, जो पढ़ने में अत्यंत रोचक हैं। कहानियों का विकास आलोच्य युग में हुआ। 'सरस्वती' (1900) पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही कहानी का जन्म माना जाता है। आरंभ में लिखी गयी कहानियों में कुछ शेक्सपियर के नाटकों के आधार पर कुछ संस्कृत-नाटकों के आधार पर, कुछ बंगला-कहानियों को रूपांतरित करके कुछ लोककथाओं से प्रेरणा ले कर और कुछ जीवन की वास्तविक घटनाओं को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत की गयीं। आरंभिक कथा लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी, माधवप्रसाद मिश्र, बंगमहिला, रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, वृंदावनलाल वर्मा आदि उल्लेखनीय हैं।

▶ कहानियों का विकास 'सरस्वती'(1900) पत्रिका के साथ हुआ

किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' कहानी 'सरस्वती' में 1900 ई. में प्रकाशित हुई। यह शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' के आधार पर लिखी गयी है। इसी वर्ष 'सुदर्शन' में माधवप्रसाद मिश्र की 'मन की लता' कहानी प्रकाशित हुई। 1902 ई. में 'सरस्वती' में भगवानदास, 'बी.ए' की 'प्लेग की चुडैल' कहानी प्रकाशित हुई। यह वास्तविक परिस्थिति का चित्र प्रस्तुत करने वाली रचना है। रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903) और बंगमहिमा की 'दुलाईवाली' (1907) शीर्षक कहानियाँ प्रकाशित हुईं। हिन्दी के आरंभिक मौलिक कहानीकारों में इन्हीं लेखकों के नाम आते हैं। आगे चल कर ये लेखक साहित्य की अन्य विधाओं की सृष्टि में पहल हुए फलतः कहानी को विकसित एवं प्रतिष्ठित करने का श्रेय अन्य कलाकारों को मिला। वृंदावनलाल वर्मा ने 'राखीबंद भाई' लिख कर ऐतिहासिक कहानियों की परंपरा को जन्म दिया। 1909 ई. में काशी से 'इंदु' का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसमें जयशंकर प्रसाद की भावात्मक कहानियाँ प्रकाशित हुईं। इन कहानियों का संग्रह 'छाया' (1912) नाम से प्रकाशित हुआ। राधिकारमणप्रसाद सिंह की भावपूर्ण कहानी 'कानों में कंगना' 'इंदु' में ही 1913 ई. में प्रकाशित हुई थी। इस समय तक प्रेमचंद की कुछ कहानियाँ 'ज़माना' में प्रकाशित हो चुकी थीं। 'सरस्वती' में प्रकाशित उनकी कुछ कहानियों के शीर्षक हैं 'सौत' (1915), 'पंच-परमेश्वर' (1916), 'सज्जनता का दंड' (1916), 'ईश्वरीय न्याय' (1917), 'दुर्गा का मंदिर'

▶ किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती'

(1917) 1 चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' (1883-1920) की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' 1915 ई. में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। 1915-1917 ई. के बीच 'सरस्वती' में ज्वालादत्त शर्मा की 'मिलन', विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' (1891-1945) की 'रक्षाबंधन', पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी को 'झलमला' आदि बहुचर्चित कहानियाँ प्रकाशित हुईं।

▶ चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था'

सन् 1900 के लगभग हिन्दी कहानी का जन्म हुआ और 1912 से 1918 ई. के बीच वह पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गयी। साहित्य में उसकी स्वतंत्र सत्ता तभी मान्य हुई और उसका मौलिक रूप निखरा।

2.4.2 गद्य-साहित्य की अन्य विधाएँ

द्विवेदी-युग में नाटक, उपन्यास, कहानी आदि मुख्य गद्य-विधाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य गद्य-रूपों- जीवनी, यात्रावृत्त, संस्मरण और पत्र-साहित्य-के विकास-परिष्कार की ओर भी ध्यान दिया गया। इनमें से अंतिम तीन का तो प्रवर्तन ही इस युग में हुआ। वैसे पत्रकारिता की बहुमुखी उन्नति के फलस्वरूप इन सभी साहित्यरूपों के विकास की गति भारतेंदु-युग की तुलना में कहीं अधिक व्यवस्थित और तेज रही।

2.4.2.1 निबंध

▶ व्यक्तित्वव्यंजक निबंधों की परंपरा का ह्रास

भारतेंदु-युग में पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से निबंध-साहित्य की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी। उसकी तुलना में द्विवेदी-युग में व्यक्तित्वव्यंजक निबंधों की परंपरा का ह्रास लक्षित होता है। लेखकों का ध्यान ज्ञान के विविध क्षेत्रों से सामग्री-संचय की ओर अधिक गया, आत्मव्यंजना की ओर कम।

इस युग के निबंध-लेखकों में महावीरप्रसाद द्विवेदी, गोविंदनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, मिश्रबंधु, सरदार पूर्णसिंह,चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, श्यामसुंदरदास, पद्मसिंह शर्मा, रामचंद्र शुक्ल, कृष्णबिहारी मिश्र आदि उल्लेखनीय हैं।

▶ 'म्युनिसिपैलिटी के कारनामे' व्यंग्य शैली का निबंध

महावीरप्रसाद द्विवेदी के बहुसंख्यक निबंध परिचयात्मक या आलोचनात्मक टिप्पणियों के रूप में हैं। 'म्युनिसिपैलिटी के कारनामे' निबंध में उनकी व्यंग्य शैली का रूप देखा जा सकता है। 'आत्मनिवेदन', 'प्रभात', 'सुतापराधे जनकस्य दंड' आदि निबंधों में व्यक्तित्वव्यंजना के तत्व भी मिलते हैं। गोविंदनारायण मिश्र के निबंध 'सारसुधानिधि' में प्रकाशित हुए। बालमुकुंद गुप्त हिन्दी-साहित्य में 'शिवशंभु का चिट्ठा' के लिए प्रसिद्ध है। ये चिट्ठे 'भारतमित्र' में 1904-1905 ई. में प्रकाशित हुए थे।

▶ माधवप्रसाद मिश्र के निबंध 'सुदर्शन' में प्रकाशित हुए

माधवप्रसाद मिश्र के निबंध 'सुदर्शन' में प्रकाशित हुए थे। इनके निबंधों का संग्रह 'माधव मिश्र निबंधमाला' नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें सभी प्रकार के निबंध हैं। इनके द्वारा लिखित पर्वों, त्योहारों तथा भ्रमणवृत्तांतों से संबंधित निबंध अधिक सजीव, रोचक और आत्मव्यंजक हैं। बंधुओं ने आलोचक रूप में ही प्रतिष्ठा प्राप्त की, किंतु कभी-कभी उन्होंने समाज संबंधी विषयों पर भी लेखनी चलायी है। उनका महत्व खोजपूर्ण एवं सूचना पर आधारित निबंधों के कारण ही मान्य है। ये निबंध 'पुष्पांजलि' (1916) में संकलित हैं। सरदार पुर्ण सिंह विलोच्य युग के श्रेष्ठ निबंधकार हैं। इन्होंने कुल छह निबंध - सच्ची वीरता, कन्यादान, पवित्रता, आचरण की सभ्यता, मज़ुरी और प्रेम, अमरिका का मस्तता योगी वाल्ट व्हिट मैन लिख कर आलोचकों का ध्यान आकृष्ट कर लिया है। इनके निबंध नैतिक और सामाजिक विषयों से संबद्ध हैं।

चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की साहित्य-क्षमता भी अप्रतिम थी। वे पुरातत्व के मान्य विद्वान थे, किंतु कहानी और निबंध के क्षेत्र में भी उनका स्थान अन्यतम है। उनके निबंधों में मार्मिक व्यंग्य, पांडित्य की छाप और व्यक्तित्व का आकर्षण है। अनेक पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक संदर्भ इस प्रकार प्रस्तुत किये गये हैं, जैसे वे घरेलू बातचीत के सामान्य विषय हों। गुलेरी जी की भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और विषयानुकूल है। 'कछुवा धर्म' और 'मारेसि मोहिं कुठांव' इनके बहुचर्चित निबंध हैं। जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के निबंध 'गद्यमाला' (1909) और 'निबंध-निचय' में प्रकाशित हैं। चतुर्वेदी जी अपनी हास्य-विनोदपूर्ण शैली के लिए विख्यात हैं। 'ब की बहार', 'पिक्चर-पूजा', 'अनुप्रास का अन्वेषण' आदि उनके आकर्षक निबंध हैं। पद्मसिंह शर्मा के प्रमुख निबंध हैं मुझे मेरे मित्र से बचाओ, हिन्दी के प्राचीन साहित्य का उद्धार आदि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के प्रारंभिक निबंधों में भाषा-संबंधी प्रश्नों और कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों के संबंध में विचार व्यक्त किये गये हैं। आरंभ में उन्होंने अंग्रेज़ी के कुछ विचारपूर्ण निबंधों का अनुवाद भी किया था। उनके श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक निबंध 1912 ई. से 1919 ई. तक नागरीप्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित हुए थे। शुक्ल जी निश्चय ही हिन्दी-निबंध-साहित्य के क्षेत्र में नवीन युग के प्रवर्तक हैं। 'भय', 'क्रोध', 'ईर्ष्या', घृणा', 'उत्साह', 'श्रद्धा-भक्ति', करुणा', 'लज्जा और ग्लानि' तथा 'लोभ और प्रीति' निबंध आलोच्य युग में ही प्रकाशित हुए थे, जो मनोविकारों के आधार पर रचे गये मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के प्रौढ निबंध है।

▶ चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और विषयानुकूल है

उपर्युक्त निबंध-लेखकों के अतिरिक्त द्विवेदी-युग में गणेश शंकर विद्यार्थी, मन्नन द्विवेदी, यशोदानंदन अखौरी, केशवप्रसाद सिंह आदि कुछ अन्य निबंधकारों ने भी अपनी शैली और प्रतिभा से आलोचकों का ध्यान आकृष्ट किया था।

2.4.2.2 जीवनी-साहित्य

▶ भारतेन्दु ने मार्गदर्शन किया

जिस प्रकार भारतेंदु युग में स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जीवनी-लेखन के क्षेत्र में अपने समकालीन लेखकों का मार्गदर्शन किया था, उसी भांति आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी इस गद्यविधा में यथासंभव प्रयास किया।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने गद्यविधा में महत्वपूर्ण योगदान किया और उनकी जीवनियों में 'प्राचीन पंडित और कवि' (1918), 'सुकवि-संकीर्तन' (1924), 'चरित-चर्चा' (1929) शामिल हैं। इस काल में जीवनी साहित्य की मुख्यतः पांच श्रेणियाँ थीं: (1) आर्यसमाज और महापुरुषों की जीवनियाँ, (2) राष्ट्रीय महापुरुषों की जीवनियाँ, (3) ऐतिहासिक महापुरुषों की जीवनियाँ, (4) विदेशी महापुरुषों की जीवनियाँ, और (5) महिलाओं की जीवनियाँ।

▶ राष्ट्रीय एवं ऐतिहासिक महापुरुषों पर

महर्षि दयानंद पर अधिक जीवनियाँ लिखी गईं, जैसे 'आर्य धर्मेंदु जीवन महर्षि' (1901) और 'दयानंद चरितामृत' (1904)। राष्ट्रीय महापुरुषों पर भी कई ग्रंथ लिखे गए, जिनमें 'लाजपत महिमा' (1907) और 'कर्मवीर गांधी' (1913) प्रमुख हैं। ऐतिहासिक महापुरुषों पर भी लेखन हुआ, जैसे 'छत्रपति शिवाजी का जीवनचरित्र' (1901) और 'महाराणा प्रतापसिंह' (1903)

विदेशी महापुरुषों की जीवनियाँ, जैसे 'नेपोलियन बोनापार्ट की जीवनी' (1905) और 'प्रिंस बिस्मार्क' (1915), भी लिखी गईं। महिलाओं पर भी रचनाएँ की गईं, जैसे 'रानी भवानी' (1904) और 'रानी लक्ष्मीबाई' (1918)। इस प्रकार, द्विवेदीयुगीन जीवनी-साहित्य

विविधतापूर्ण और समृद्ध था।

2.4.2.3 यात्रावृत्त

यात्रावृत्त के विकास की दृष्टि से भी आलोच्य युग की अलग भूमिका रही है। तत्कालीन पत्रिकाओं में अनेक यात्रावृत्तांत प्रकाशित हुए। उदाहरणस्वरूप, स्वामी मंगलानंद, श्रीधर पाठक, उमा नेहरू और लोचनप्रसाद पांडेय के द्वारा क्रमशः लिखी गयीं 'मॉरीशस यात्रा' (मर्यादा, जुलाई, 1912), 'देहरादून-शिमला यात्रा' (मर्यादा, जून-सितंबर, 1913), 'युद्ध-क्षेत्र की सैर' (गृहलक्ष्मी, 1914) और 'हमारी यात्रा' (इंदु, सितंबर, 1915) का उल्लेख किया जा सकता है। देवीप्रसाद खत्री, गोपालराम गहमरी, गदाधर सिंह, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक आदि के द्वारा लिखी गयी रचनाएँ विशेषरूपेण महत्वपूर्ण हैं। देवीप्रसाद खत्री की उल्लेखनीय कृति 'बद्रिकाश्रम-यात्रा' (1902) है, गोपालराम गहमरी का लंका यात्रा का विवरण, गदाधर सिंह का चीन में तेरह मास आदि भी विशेष उल्लेखनीय हैं। सत्यदेव परिव्राजक इस युग में काफ़ी चर्चित रहे। उनकी तीन कृतियाँ उपलब्ध होती हैं - 'अमेरिका दिग्दर्शन', 'मेरी कैलाश यात्रा' तथा 'अमेरिका भ्रमण'। 'अमेरिका दिग्दर्शन' तथा अमेरिका भ्रमण में लेखक ने अमेरिका की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थिति तथा वहाँ के दर्शनीय स्थानों का औपन्यासिक शैली में वर्णन किया हैं। 'मेरी कैलाश-यात्रा' में लेखक ने काठगोदाम से तिब्बत तक की यात्रा के विवरण प्रस्तुत किये हैं।

▶ देवीप्रसाद खत्री की उल्लेखनीय कृति 'बद्रिकाश्रम-यात्रा' है

2.4.2.4 संस्मरण

प्रायः प्रत्येक नयी विधा अपने आगमन की घोषणा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही करती है। संस्मरण-साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। 'सरस्वती' इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पत्रिका थी और संस्मरण-साहित्य ने इसके माध्यम से ही अपने अस्तित्व की सूचना दी। इसके विभिन्न अंकों में समय-समय पर अनेक रोचक संस्मरण प्रकाशित होते रहे। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'अनुमोदन का अंत' (फरवरी, 1905), 'सभा की सभ्यता' (अप्रैल, 1907), 'विज्ञानाचार्य बसु का विज्ञान-मंदिर' (जनवरी, 1918) आदि की रचना करके संस्मरण-साहित्य की श्रीवृद्धि की। 'सरस्वती' के विभिन्न अंकों में महावीरप्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त रामकुमार खेमका, जगविहारी सेठ, पांडुरंग खानखोजे, प्यारेलाल मिश्र, काशीप्रसाद जायसवाल, जगन्नाथ खन्ना, भोलादत्त पांडेय आदि द्वारा क्रमशः लिखी गयीं 'इधर-उधर की बातें' (मई, 1918), 'मेरी बड़ी छुट्टियों का प्रथम सप्ताह' (जून, 1913), 'वाशिंगटन महाविद्यालय का संस्थापन दिनोत्सव' (अक्तूबर, 1913), 'लंदन का फाग या कुहरा' (फरवरी, 1908), 'इंग्लैंड के देहात में महाराज बनारस का कुआं' (जुलाई, 1907), 'अमेरिका आने वाले विद्यार्थियों को सूचना' (दिसंबर, 1911) और 'मेरी नयी दुनिया संबंधिनी रामकहानी' (दिसंबर, 1909) शीर्षक रचनाएँ प्रकाशित हुई। आलोच्य युग में प्रकाशित उपर्युक्त अधिकांश संस्मरण प्रवासी भारतीयों द्वारा लिखे गये और प्रायः सभी का अभीष्ट भारतीय पाठकों को पश्चिम की रीति-नीतियों, दर्शनीय स्थलों आदि से परिचित कराना था। यही कारण है कि इनकी शैली अनेक स्थलों पर निबंधात्मक हो गयी है।

▶ अधिकांश संस्मरण प्रवासी भारतीयों द्वारा लिखे गये

इसप्रकार द्विवेदी युग के गद्य साहित्य ने हिन्दी गद्य साहित्य की नींव को मजबूत किया। इस काल के लेखकों ने समाज के विभिन्न पहलुओं को गहराई से विश्लेषित किया और गद्य साहित्य को एक नई दिशा दी।

2.4.3 स्वच्छन्दतावाद

▶ रोमाण्टिसिज़्म अथवा स्वच्छन्दतावाद

पश्चिमी साहित्य चिन्तन में रूसो की प्रेरणा तथा विलियम वड्र्सवर्थ और सैमुअल टेलर कॉलरिज के नेतृत्व में एक साहित्यिक आन्दोलन का सूत्रपात 18वीं सदी के अन्त में हुआ, जिसे अंग्रेजी समीक्षा में 'रोमाण्टिसिज़्म' कहा जाता है। आचार्य शुक्ल ने इस शब्द का अनुवाद 'स्वच्छन्दतावाद' किया। उनके अनुसार, 'द्विवेदीयुगीन साहित्य में श्रीधर पाठक के नेतृत्व में एक विशेष धारा दिखाई देती है जिसे प्रवृत्तियों के आधार पर 'स्वच्छन्दतावाद' कहा जा सकता है।'

▶ साहित्य को शास्त्रीय परम्पराओं और नियमों की जकड़ से मुक्त किया

स्वच्छन्दतावाद में छन्दबद्ध कविता के स्थान पर लय और गति पर आधारित काव्य रचना को महत्व मिला। अतः साहित्य को शास्त्रीय परम्पराओं और नियमों की जकड़ से मुक्त करके उसे कल्पना और सौन्दर्य, भावना और आनन्द के आलोक में प्रतिष्ठित करने का श्रेय स्वच्छन्दतावाद को ही दिया जा सकता है।

▶ जगत की सच्चाई और वैयक्तिकता जैसे मूल्यों की स्थापना

स्वच्छन्दतावाद और छायावाद के सम्बन्धों की आरम्भिक व्याख्या आचार्य शुक्ल ने की। उनका मत है कि द्विवेदी युग में श्रीधर पाठक के नेतृत्व में स्वच्छन्दतावाद की जिस धारा का आरम्भ हुआ, वह हिन्दी साहित्य के विकास में एक नया तथा सार्थक दृष्टिकोण लेकर आई थी। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने पहली बार जगत की सच्चाई और वैयक्तिकता जैसे मूल्यों की स्थापना की। उदाहरण के लिए, श्रीधर पाठक की निम्नलिखित पंक्तियाँ इसी दृष्टिकोण का प्रतिपादन करती है 'जगत है सच्चा, तनिक न कच्चा, समझो बच्चा, इसका भेद।' 'लिखो, न लेखनी करो बन्द, श्रीधर सम सब कवि स्वच्छन्द।'

2.4.4 स्वच्छन्दतावाद के प्रमुख कवि

इस काव्यधारा के प्रमुख कवि 'श्रीधर पाठक', 'हरिवंशराय बच्चन', 'रामेश्वर शुक्ल अंचल' तथा 'नरेन्द्र शर्मा' है।

2.4.4.1 श्रीधर पाठक (1860 - 1928)

▶ मौलिक उद्भावनाओं के कवि

श्रीधर पाठक मौलिक उद्भावनाओं के कवि है। विषय और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से आधुनिक हिन्दी काव्य को एक नया मोड़ देने के कारण उन्हें स्वछन्द भाव धारा का सच्चा प्रवर्तक कहा जाता है। उन्होंने काव्य को अपेक्षाकृत अधिक स्वछन्द वैयक्तिक और यथार्थ दृष्टि से देखने का सफल प्रयास किया। इससे छायावादी भावभूमि को बल मिला और परम्परागत रूढ़ काव्य ढाँचा टूट गया। उनकी 'देहरादून' कविता प्रकृति चित्रण की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

▶ छायावाद के प्रवर्तक श्रीधर पाठक

उनकी कविताओं में प्रकृति चित्रण के अतिरिक्त वैयक्तिक भावनाओं की अभिव्यक्ति, समाज सुधार, देशप्रेम की भावनाओं की अभिव्यक्ति, नये-नये छन्दों का प्रयोग आदि सभी गुण देखने को मिलते हैं। आगे चलकर ये सभी गुण छायावादी काव्य में विकसित हुए इसलिए 'श्रीधर पाठक' छायावाद के प्रवर्तक के रूप में भी जाने जाते हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ- 'कश्मीर सुषमा', 'भारतगीत', 'सांध्य अटन', 'एकान्तवासी योगी' आदि।

2.4.4.2 हरिवंशराय बच्चन (1907-2003 ई.)

हरिवंशराय बच्चन को उमर बय्याम का जीवन दर्शन बहुत पसन्द आया। बय्याम की रूबाइयों से प्रेरित होकर उन्होंने 'मधुशाला', 'मधुबाला' और 'मधुकलश' की रचना की तथा

हिन्दी में एक नवीनवाद का प्रचार किया जो 'हालावाद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन रचनाओं की लोकप्रियता का कारण 'बच्चन' की सहज सरल भाषा, रूढ़ियों व अन्धविश्वासों पर करारा प्रहार, प्रेम और मस्ती की अनुभूति है। अन्य रचनाओं में 'निशा निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत, 'आकुल अन्तर', 'विकल-विश्व', 'सतरंगिणी', 'दो चट्टानें', 'मिलन', यामिनी', 'आरती और अंगारे', 'धार के इधर-उधर' तथा 'बंगाल का काल' आदि प्रमुख हैं।

▶ हालावाद का प्रचार

2.4.4.3 रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' (1915-1995 ई.)

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' भावुक, कल्पनाशील तथा स्वच्छन्दतावादी कवि हैं। उन्होंने अपनी तीव्र रूमानी संवेदना को लेकर अपने अन्तर तथा समाज की यात्रा की है। इसलिए इनके सामाजिक यथार्थ वाले काव्यों में रूमानी संवेदना की ही प्रधानता दिखाई देती है। उन्होंने कृषकों की दीनहीन दशा, शोषक वर्ग तथा क्रान्ति का आह्वान अपनी रचनाओं में किया है। उनकी प्रमुख रचनाएँ- 'मधुकर', 'मधुलिका', 'अपराजिता', 'किरणबेला और करील', 'लालचूनर', 'इन आवाज़ों को ठहरा लो', 'वर्षान्त के बादल', 'विराम चिह्न' आदि हैं।

▶ कल्पनाशील तथा स्वच्छंदतावादी कवि

2.4.4.4 नरेन्द्र शर्मा (1913-1989 ई.)

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, लेखक एवं सम्पादक नरेन्द्र शर्मा का जन्म 28 फरवरी, 1913 में उत्तर प्रदेश के (जहाँगीरपुर) नामक स्थान पर हुआ था। प्रारम्भ से ही साहित्यिक रचनाएँ करते हुए नरेन्द्र शर्मा ने मदन मोहन मालवीय द्वारा प्रयाग में स्थापित साप्ताहिक अभ्युदय से अपनी सम्पादकीय यात्रा आरम्भ की। प्रारम्भिक जीवन में ही उनका झुकाव तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं की ओर हो गया था। 1931. ई. में नरेन्द्र शर्मा की पहली कविता 'चाँद' पत्रिका में छपी। नरेन्द्र शर्मा ने शीघ्र ही उदीयमान नए कवियों में अपना प्रमुख स्थान बना लिया। इनकी लोकप्रियता की प्रतिस्पर्धा हरिवंशराय बच्चन से की जा सकती है। 1933 ई. में इनकी पहली कहानी प्रयाग के 'दैनिक भारत' में प्रकाशित हुई। 1934 ई. में इन्होंने मैथिलीशरण गुप्त की काव्यकृति 'यशोधरा' की समीक्षा भी लिखी। वे सुमित्रानन्दन पन्त और कुँवर सुरेश सिंह के साथ 'रूपाभ' नामक पत्रिका के सम्पादन में भी शामिल रहे। उनके प्रिय ग्रंथ 'रामायण' और 'महाभारत' थे। नरेन्द्र शर्मा ने गीत विधा में सुख-दुःख, प्रेम और करुणा को खूबसूरती से व्यक्त किया। उनके प्रमुख काव्य संग्रहों में 'शूल-फूल' (1934), 'कर्ण-फूल' (1936), 'प्रभात फेरी' (1938), और 'प्यासा निर्झर' (1964) शामिल हैं।

▶ पहली कविता चाँद पत्रिका में

स्वच्छंदतावाद का यह युग भावनाओं की प्रबल अभिव्यक्ति और व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की ओर झुका था, जिसने हिन्दी कविता में नयापन और रचनाकौशल को बढ़ावा दिया। इन कवियों ने स्वच्छंदता के माध्यम से जीवन और प्रकृति के विभिन्न पहलुओं को गहराई से महसूस किया और अपनी कविताओं में चित्रित किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा कि इस (स्वच्छन्दतावादी) स्वस्थ व सकारात्मक काव्यधारा का विकास दो कारणों से रुक गया। पहला कारण था कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी शास्त्रीय प्रतिमान लेकर आलोचना के क्षेत्र में उतरे व उन्होंने स्वच्छन्दतावादी काव्य को शास्त्रीय प्रतिमानों के अनुकूल न पाकर उसे प्रशंसा की निगाह से नहीं देखा। दूसरा कारण यह था कि रवीन्द्रनाथ टैगोर के प्रभाव से हिन्दी काव्य में एक रहस्यवादी शैली का विकास हुआ जिसे छायावाद कहा गया। रहस्यवाद मूल प्रकृति में ही स्वच्छन्दतावाद की विरोधी दृष्टि है। अतः छायावाद के विकास ने स्वच्छन्दतावाद के विकास को अवरुद्ध कर दिया।

इस प्रकार, छायावाद व स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्धों का विवाद मूलतः आचार्य शुक्ल की व्याख्या पर आधारित है जिसके अन्तर्गत वे छायावाद को स्वच्छन्दतावाद का विरोधी मानते हैं। बाद के विद्वानों ने इस सम्बन्ध का पुनर्विश्लेषण किया है। समकालीन समीक्षा प्रायः स्वीकार करती है कि छायावाद स्वच्छन्दतावाद का विरोधी नहीं, बल्कि विकसित रूप है। स्वच्छन्दतावाद व छायावाद का सम्बन्ध वस्तुतः बीज और वृक्ष का सम्बन्ध है जिनमें बाहरी स्तर पर कई अन्तर हैं, किन्तु वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद के ही तत्व विकसित होकर छायावाद पल्लवित और पुष्पित हुआ।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

सन् 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का भार संभाला। उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ। इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बालमुकंद गुप्त और अध्यापक पूर्णसिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं। किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है। हिन्दी कहानी का वास्तविक विकास 'द्विवेदी युग' से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' कहानी को कुछ विद्वान हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की 'दुलाई वाली', रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' आदि महत्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा भी कुछ नाटक लिखे गए।

पश्चिमी साहित्य चिन्तन में रूसो की प्रेरणा तथा विलियम वड्सर्वथ और सैमुअल टेलर कॉलरिज के नेतृत्व में एक साहित्यिक आन्दोलन का सूत्रपात 18वीं सदी के अन्त में हुआ, जिसे अंग्रेजी समीक्षा में 'रोमाण्टिसिज्म' कहा जाता है। आचार्य शुक्ल ने इस शब्द का अनुवाद 'स्वच्छन्दतावाद' किया।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. द्विवेदी-युग के नाट्यसाहित्य पर परिचय दीजिए।
2. द्विवेदी-युग के कथा-साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।
3. द्विवेदी-युग के योगदान पर टिप्पणी लिखिए।
4. स्वच्छंदतावाद के अर्थ एंव स्वरूप पर टिप्पणी लिखिए।
5. स्वच्छंदतावाद के प्रमुख कवि एवं प्रवृत्तियों का मूल्यांकन कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
5. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
6. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय
7. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
8. हिन्दी काव्य का इतिहास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
9. हिन्दी कविता का प्रवृत्तिगत इतिहास - पूरणचंद टण्डन, विनीता कुमारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रामचंद्र शुक्ल
4. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

BLOCK-03

छायावाद तथा उत्तरछायावादी काव्य प्रवृत्तियाँ

Block Content

Unit 1: छायावाद का अर्थ और परिभाषा, छायावादी काव्य की विशेषताएँ, छायावाद के आधार स्तंभ

Unit 2: उत्तर छायावाद, व्यक्तिवादी गीति कविता-हरिवंशराय बच्चन, नरेंद्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, भगवतीचरण वर्मा, गोपालसिंह नेपाली, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता-मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारीसिंह दिनकर, सियारामशरण गुप्त, उदयशंकर भट्ट, सोहनलाल द्विवेदी

Unit 3: प्रगतिवाद-प्रगतिवाद और चेतना, प्रगतिवाद और मार्क्सवाद का संबंध, प्रगतिवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ, प्रगतिवाद काव्य और उसके प्रमुख कवि

Unit 4: प्रयोगवाद-अर्थ एवं परिभाषा, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद में अंतर, प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, नई कविता-आरंभ तथा अर्थ, प्रयोगवाद और नई कविता, नई कविता की काल सीमा, नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, शिल्प पक्ष, अकविता या साठोत्तरी कविता

इकाई : 1

छायावाद का अर्थ और परिभाषा, छायावादी काव्य की विशेषताएँ, छायावाद के आधार स्तंभ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- छायावाद के बारे में समझता है
- छायावाद की परिभाषाओं से अवगत हो जाता है
- छायावाद के आधार स्तंभ कवियों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- छायावाद की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

छायावाद 'द्विवेदीयुग' की जड़ श्रृंखलाओं को तोड़, व्यक्ति और कला को स्वतंत्रता का समर्थन करने वाली वह मानववादी काव्य-धारा है जिसने युग की स्थूल वस्तुवत्ता में झलकनेवाली सूक्ष्म मर्म छाया को व्यक्ति के माध्यम से ग्रहण कर, ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौदर्यमय प्रतीक विधान और उपचारवक्रता के सहारे उसे मूर्तिमान बनाया है। वह वाद की दृष्टि से जितना ही उलझा है, जीवन की दृष्टि से उतना ही सुलझा। मनोविश्लेषण के पक्ष से जितना ही पलायनशील और वायवी है, सांस्कृतिक दृष्टि से उतना ही साधना-शील और जीवनमय। साहित्य में 'व्यक्तित्व' की प्रतिष्ठा उसका प्रसार है तो 'व्यक्तिवादिता' उसकी सीमा है; वस्तु का अंतः सौंदर्य यदि उसका वरदान है तो अतिकाल्पनिकता उसका अभिशाप।

Keywords / मुख्य बिन्दु

छायावाद, छायावाद का अर्थ और परिभाषा, आधार स्तंभ, छायावाद की विशेषताएँ

Discussion / चर्चा

3.1.1 छायावाद का अर्थ और परिभाषा

3.1.1.1 छायावाद (सन् 1920-1935)

1918-19 के आस-पास से हिन्दी कविता में एक नई प्रवृत्ति का उन्मेष दिखाई पड़ता है जो सन् 1920 तक स्पष्ट रूप से मुख्य काव्य प्रवृत्ति के रूप में उभर कर आ जाती है। काव्य की इस नई धारा को छायावाद तथा स्वच्छन्दतावाद नाम दिये गये हैं। यद्यपि छायावाद नामकरण व्यंग्य में ही रखा गया था किन्तु धीरे-धीरे वह अधिक मान्य और प्रचलित हो गया। परन्तु कुछ समीक्षक छायावाद को तत्कालीन काव्य की सम्पूर्ण विशेषताओं की व्यंजना में असमर्थ समझकर उसके स्थान पर स्वच्छन्दतावाद शब्द का प्रयोग अधिक सार्थक मानते हैं।

▶ छायावाद नामकरण व्यंग्य में रखा गया था

डॉ. प्रेमशंकर ने लिखा है- 'मेरा विचार है कि स्वयं स्वच्छन्दतावाद छायावादी काव्य के लिये अधिक उपयुक्त शब्द है क्योंकि उसमें इस काव्य की विविध भूमियाँ समाहित हो सकती हैं।

▶ स्वच्छन्दतावाद अपनी अर्थ व्याप्ति में छायावाद को समाविष्ट कर लेता है

हिन्दी साहित्य में यह युग छायावाद नाम से रूढ़ हो गया है। पर यह शब्द न तो अपने आप अपेक्षित अर्थ दे पाता है और न अन्य भारतीय साहित्य की धाराओं से जुड़ता है। अपने संकुचित अर्थ में यह तत्कालीन काव्य का विशेषण बन कर रह जाता है। स्वच्छन्दतावाद अपनी अर्थ व्याप्ति में छायावाद को समाविष्ट कर लेता है। यह एक ओर भारतीय साहित्य से जुड़ जाता है तब दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय काव्यधारा रोमान्टिसिजम से भी। ऐसी स्थिति में इस युग का नामकरण स्वच्छतावाद अधिक संगत है।

▶ स्वच्छन्दतावाद शब्द अंग्रेजी के रोमान्टिसिजम के पर्यायवाची शब्द

स्वच्छन्दतावाद शब्द अंग्रेजी के रोमान्टिसिजम के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होता है। यद्यपि दोनों काव्य आन्दोलनों में कुछ समान तत्व विद्यमान हैं, दोनों मनुष्य को सर्वोपरि मानते हैं, दोनों में कल्पना और सौन्दर्यानुभूति का प्रबल आग्रह है फिर भी दोनों देशों की तथाकथित सामान्य काव्य प्रवृत्ति में पर्यात अन्तर भी है। पश्चिम में रोमान्टिसिजम किसी आन्दोलन विशेष काव्य तक सीमित नहीं रहा पर हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद का पूर्ण उत्कर्ष ही हुआ। यही नहीं रोमान्टिक शब्द का अर्थ परिवर्तन भी होता रहा है। रोमान्टिक शब्द रोमन या रोमांस से बना है जिसका अर्थ है- अनुवाद। रोमन से रोमांस शब्द बना है और पहले यह शब्द लेटिन से फ्रेंच भाषा में एक कहानी के अनुवाद केलिए प्रयुक्त हुआ है। 17 वीं शताब्दी में इस शब्द का प्रयोग कल्पना के लिये होने लगा और 18 वीं 19 वीं शताब्दी में रोमान्टिक का तात्पर्य हो गया प्रेम प्रसंग युक्त अनुभूतियों को रूप देना। यही नहीं यूरोप के ही विभिन्न देशों में स्वच्छन्दतावाद का विकास एक ही रूप में नहीं हुआ है, जर्मन, फ्रान्स और इंग्लैण्ड में विकसित स्वच्छन्दतावाद के लक्षणों में काफी फर्क भी पाया जाता है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद का प्रयोग तीन भिन्न-भिन्न समय के कवियों के लिये होने लगा है। रीतिकाल की मुख्य काव्य धारा को स्वच्छन्दतावादी कहा जाता है जिसके अन्तर्गत घनानन्द, 'ठाकुर, आलम, बोधा आदि आते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कतिपय द्विवेदी युगीन कवियों खास करके श्रीधर पाठक में अभिव्यंजना के नये ढंग और प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण आदि में स्वच्छन्दतावाद देखकर द्वितीय उत्थान के कुछ कवियों को स्वच्छन्दतावादी घोषित किया है। शुक्ल जी के शब्दों में- 'सब बातों का विचार करने पर पं श्रीधर पाठक ही सच्चे स्वच्छन्दतावाद (रोमान्टिजम) के प्रवर्तक ठहरते हैं। शुक्ल जी ने इसी परम्परा में मैथिली शरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, सियाराम शरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, 'ठाकुर गुरुभक्त सिंह आदि कवियों को भी गिना है जो विस्तृत अर्थ भूमि पर स्वाभाविक स्वच्छन्दता का मर्म पथ ग्रहण करके चल रहे हैं। इसके अतिरिक्त 1928 और 1936 के बीच के काव्यान्दोलन को भी कुछ विद्वानों द्वारा स्वच्छन्दतावाद नाम दिये जाने का आग्रह किया।

▶ 1928 और 1936 के बीच के काव्यान्दोलन को भी कुछ विद्वानों द्वारा स्वच्छन्दतावाद नाम दिये

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि इस शब्द से यह भ्रम बढ़ सकता है कि रीतियुगीन, द्विवेदी युगीन और उसके बाद की काव्यधारा में से तीनों को स्वच्छन्दतावादी कहा जाय अथवा किसी एक को ही। वह भी किसे और क्यों? ऐसी स्थिति में इस काव्य प्रवृत्ति को छायावाद नाम से अभिहित करना ही अधिक समीचीन है। डॉ. नगेन्द्र ने भी स्वीकार किया है कि 'छायावाद निश्चय ही एक स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति है परन्तु उसकी अपनी विशेषता भी अत्यन्त स्पष्ट है। उसका व्यक्तित्व अपेक्षाकृत कहीं अधिक अन्तर्मुखी है। उसमें छायातत्व अर्थात अतीन्द्रियता

अपेक्षाकृत कहीं अधिक है। हिन्दी में इस प्रवृत्ति (स्वच्छन्दतावाद) के अनेक तत्वों का हिन्दी के अपने देश काल के अनुरूप प्रस्फुटन तो हुआ है किन्तु उनका हिन्दी की अपनी भूमि और जलवायु के प्रभाव से रूप परिवर्तन हो गया है। यह परिवर्तित रूप ही छायावाद है। जो इस युग विशेष की मुख्य प्रवृत्ति है। अतः समग्र रूप से प्रस्तुत काव्य खण्ड का नाम छायावाद युग ही अपेक्षाकृत अधिक मान्य है।

▶ परिवर्तित रूप ही छायावाद है

3.1.1.2 सीमा

शुक्ल ने सन् 1916 से आधुनिक कविता के तृतीय उत्थान का आरम्भ माना है। किन्तु इस तिथि को स्वीकार करने का कोई स्पष्ट कारण नही बतलाया है। कुछ लोग सन् 1911 में 'इन्दु' में प्रकाशित प्रसाद जी की कविताओं से छायावाद का आरम्भ मानते हैं और कुछ लोग मुकुटधर पाण्डेय को प्रथम छायावादी कवि कहते हैं और तीसरे मत से प्रसाद के 'झरना' और पन्त के 'पल्लव' में प्रकाशित रचनाओं से छायावाद का प्रारम्भ मानते हैं। 'झरना' का प्रथम संस्करण 1918 में प्रकाशित हुआ था। पन्त के 'पल्लव' की कुछ कविताएँ सन् 1923 में सरस्वती में प्रकाशित हुई थीं। इसके पूर्व उनके 'वीणा' नामक संकलन और 'ग्रन्थि' की कुछ कविताएँ प्रकाश में आ चुकी थीं। वस्तुतः सन् 1920 के आस-पास से सरस्वती में पन्त जी की कविताएँ प्रकाशित होने लगी थीं और उसके कुछ समय बाद ही निराला की कविताएँ 'मतवाला' और 'समन्वय' में छपने लगी थीं। परिमल की अनेक कविताएँ सन् 1920 के आस-पास ही लिखी गई थीं। इस प्रकार छायावाद युग का प्रारम्भ सन् 1920 से माना जा सकता है। तत्पश्चात यह काव्य प्रवृत्ति 15-16 वर्षों तक प्रमुख रूप से विद्यमान रही। इसके पश्चात इसका जोर कम पड़ने लगता है। सन् 1935 में कामायनी प्रकाशित हो चुकी थी। उसी वर्ष भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की लन्दन में स्थापना हुई थी। जिसका प्रथम अधिवेशन सन् 1936 में लखनऊ में प्रेमचन्द्र की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था। सन् 1936 में प्रकाशित पन्त के 'युगान्तर' और सन् 1938 में प्रकाशित निराला की 'अनामिका' का स्वर काफी बदला हुआ था। 'वनबेला', 'नये पत्ते' आदि कविताएँ सामाजिक व्यंग्य प्रधान थीं। इस प्रकार सन् 1936 को छायावाद की अन्तिम सीमा माना जा सकता है। इसी समय प्रगतिवादी आन्दोलन जोर पकड़ने लगता है।

▶ छायावाद युग का प्रारम्भ सन् 1920 से माना जा सकता है

3.1.1.3 छायावाद की परिभाषा

अधावधि छायावाद का कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं की जा सकी है क्योंकि छायावादी काव्य मुख्यतः व्यक्ति व्यंजक काव्य रहा है और प्रत्येक कवि की निजी विशेषताएँ उसमें रही हैं। इसके अतिरिक्त नूतन शैली और नवीन भावभांगिमा के कारण प्रारम्भ में इसे काफी विरोध का सामना करना पड़ा। इसकी अस्पष्टता, दुरूहता के कारण सरस्वती पत्रिका में इसके विरूद्ध कई कार्टून छपे और व्यंग्य में ही छायावाद नाम दिया गया। उस समय के शीर्षस्थ समालोचक महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य शुक्ल एक प्रकार से इसके विरोधी ही थे। द्विवेदी जी ने बड़े आक्रोश में इसके विरूद्ध लिखा था। शुक्ल जी ने द्विवेदी जी के समान कठोर भाषा का प्रयोग तो नहीं किया किन्तु उन्होंने भी छायावाद पर सहानुभूतिपूर्वक विचार नहीं किया। वह श्रीधर पाठक तथा अन्य समकालीन कवियों द्वारा प्रवर्तित स्वच्छन्दतावादी कविताओं की सराहना करते हैं और उसे स्वाभाविक स्वच्छन्दता नाम देते हैं। किन्तु छायावाद को बँगला भाषा के माध्यम से विदेश से आयातित नयी काव्य प्रवृत्ति मानते हैं। उनके मत से श्री रवीन्द्रनाथ टागोर की उन कविताओं की धूम हुई जो अधिकतर पाश्चात्य ढाँचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद

लेकर चली थी। पुराने ईसाई संतों के छायावाद (फैन्टा समाटा) तथा यूरोपीय काव्य क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (सिम्बोलिजम) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगला में ऐसी कविताएँ छायावाद कही जाने लगी थीं। इससे एक बने बनाए रास्ते का दरवाजा ही खुल पड़ा और हिन्दी के कुछ नये कवि उधर एक बागी झुक पड़े। इस उद्धरण से स्पष्ट है कि शुक्लजी इस नई काव्य प्रकृति को ठीक ही समझते थे। उन्हें द्विवेदी युगीन स्वाभाविक स्वच्छन्दता का मार्ग बन्द हो जाने का दुख भी था। उन्होंने रहस्यवाद और प्रतीकवाद से छायावाद को जोड़ते हुए उसे इस प्रकार परिभाषित किया है-

▶ व्यंग्य में ही छायावाद नाम दिया गया

'छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। 'छायावाद' शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में है।' इस प्रकार छायावाद का सामान्य अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उनकी व्यंजना करने केलिए अप्रस्तुत का कथन। वस्तुतः शुक्ल का उक्त दृष्टिकोण किसी प्रकट प्रभाओं पर आधारित नहीं है। बंगला भाषा में छायावाद जैसी काव्य प्रवृत्ति कभी नहीं रही। संभवतः शुक्ल जी की धारणा सन् 1921 की सरस्वती में सुशील कुमार के 'हिन्दी के छायावाद' शीर्षक निबन्ध पर आधारित प्रतीत होती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी शुक्ल जी की उक्त धारणा का खण्डन किया है।

▶ छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए

इस प्रकार इस नई काव्य प्रवृत्ति को उद्भव काल में ही वयोवृद्ध आचार्यों की कटु आलोचना का सामना करना पड़ा। किन्तु प्रारम्भ से ही छायावाद पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने वाले समीक्षक भी सामने आये। इस दृष्टि से मुकुटधर पाण्डेय का नाम उल्लेखनीय है। संभवतः उन्होंने ही सर्वप्रथम जबलपुर से प्रकाशित 'श्री शारदा' नामक पत्रिका के सन् 1920 के चार अंकों में 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक चार लेख लिखकर छायावाद का विस्तृत और गहराई से विवेचन किया है। उन्होंने छायावादी कविता की वैयक्तिकता, कल्पना शक्ति, भावात्मकता, मुक्ति का आग्रह, रहस्यवादिता, शैलीगत वैशिष्ट्य आदि पर विस्तार से विचार किया है। इसके बाद छायावाद के पक्ष-विपक्ष में काफी लिखा गया। यहाँ तक कि छायावादी कवियों को भी अपनी सफाई में बहुत कुछ कहना पड़ा। प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी ने मुख्य रूप से अपनी कविताओं तथा सामान्य रूप से छायावाद पर अपने-अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। छायावाद के समर्थन में प्रमुख रूप से शुक्ल जी के शिष्य आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी सामने आये। उन्होंने प्रयाग से प्रकाशित 'भारत' नामक पत्र में छायावाद के समर्थन केलिए कई लेख लिखे। इसके अतिरिक्त 'जयशंकर प्रसाद', 'हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी' आदि रचनाओं में भी उन्होंने इस सम्बन्ध में गहराई से चिन्तन किया है। उनका कहना है कि- छायावाद को हम पं रामचन्द्र शुक्ल के कथनानुसार केवल अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली विशेष नहीं मान सकेंगे। इसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और एक स्वतन्त्र दर्शन की नियोजना भी। उन्होंने छायावाद को परिभाषाबद्ध करते हुए कहा-

▶ 'भारत' नामक पत्र में छायावाद के समर्थन

"मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य से आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार में छायावाद का एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।" इस प्रकार वाजपेयी जी ने छायावाद को एक विशिष्ट सौन्दर्य दृष्टि के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने छायावाद के सांस्कृतिक परिवेश का भी विश्लेषण किया और उसे भारतीय नवजागरण से जोड़ते हुए मूलतः अपने

देश की प्रवृत्ति माना है। उन्होंने छायावाद में निहित आध्यात्मिकता को भी मध्यकालीन भक्ति काव्य से भिन्न ठहराया है। वाजपेयी जी ने छायावादी काव्य में निहित मानवीय तत्व का भी उल्लेख किया है। उन्होंने प्रसाद और निराला पर विस्तार से लिखकर छायावाद को पूर्ण रूप से विवेचित किया है। वाजपेयी जी के ही समान आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी छायावाद में निहित मानवतावादी तत्व का विश्लेषण किया। उनके शब्दों में- 'छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम था जिसमें कवियों की भीतरी आकुलता ने ही नवीन भाषा शैली में अपने को अभिव्यक्त किया।'

▶ छायावादी काव्य में निहित मानवीय तत्व का उल्लेख

डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद को एक ओर 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' माना है तो दूसरी ओर वे स्वीकार करते हैं- 'छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव-पद्धति है; जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।'

डॉ. रामकुमार वर्मा ने भी शुक्ल जी की भाँति छायावाद को रहस्यवाद का अभिन्न रूप स्वीकार करते हुए लिखा है- 'परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में, यही छायावाद है।'

▶ स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह

श्री गंगाप्रसाद पांडेय ने भाव-लोक की प्रगति के तीन चरण माने हैं, प्रथम वस्तुवाद, द्वितीय छायावाद और तृतीय रहस्यवाद, अतः उनके शब्दों में 'यह (छायावाद) वस्तुवाद व रहस्यवाद के बीच की कड़ी है।'

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है कि छायावाद को आरम्भ में ही विरोध का सामना करना पड़ा था। इसलिये इसके कवियों को भी अपनी सफाई केलिए सामने आना पड़ा। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा आदि सभी छायावादी कवियों ने छायावाद के सम्बन्ध में अपने-अपने विचारों को व्यक्त किया है। प्रसाद जी ने 'यथार्थवाद और छायावाद' शीर्षक निबन्ध में यह बताया है कि वर्तमान समय में मुख्य रूप से दो काव्य प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं- यथार्थवाद और छायावाद। यथार्थवाद भारतेन्दु कालीन प्रवृत्ति है और उसके बाद छायावाद का उल्लेख हुआ है। प्रसाद जी छायावाद को बाहर से आयातित नई वस्तु नहीं मानते। वह उसे प्राचीन भारतीय साहित्य से जोड़ते हैं। उनकी दृष्टि में 'ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रकृति विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ है। वस्तुतः उन्होंने अपनी कविताओं को ही ध्यान में रखकर छायावाद और रहस्यवाद का विश्लेषण किया है।

▶ विरोधों का सामना

छायावादी कवियों में निराला का व्यक्तित्व सबसे अधिक विद्रोही और अक्खड़ था। उन्होंने शुक्ल जी की मान्यताओं का ओज पूर्ण शैली में खण्डन किया और छायावाद के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को उद्घाटित किया। उनके विचार से छायावाद नवजागरण का संदेशवाहक है। उन्होंने कविता के लिये छन्द को बन्धन स्वरूप मानकर मुक्त छन्द का प्रयोग किया। उनका कहना था- "मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छदों के शासन से अलग हो जाना है।"

▶ निराला का व्यक्तित्व सबसे विद्रोही और अक्खड़

सुमित्रानन्दन पन्त ने वैसे तो लगभग अपनी सभी रचनाओं की भूमिका में छायावाद और उससे संबद्ध प्रश्नों पर विचार किया है किन्तु 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन' नामक ग्रन्थ में इसके उद्भव, विकास और अन्य विशेषताओं पर गहराई से चिन्तन किया है। पन्त छायावाद को बहुमुखी काव्य सृष्टि मानते हैं और उसमें वैयक्तिक अनुभव और संवेदनाओं की स्थिति स्वीकार

करते हैं। महादेवी वर्मा के अनुसार 'जब मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिये व्याकुल हो उठा तभी स्वच्छन्द छन्द में इसकी छाया अंकित हुई। इस प्रकार छायावाद शब्द की सार्थकता सिद्ध करते हुए वह कहती हैं- 'बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का यापन किया, हृदय की भावभूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौन्दर्य सत्ता की रहस्यमय अनुभूति प्राप्त की और दोनों के साथ स्वानुभूति राखों-दुखों को मिलाकर एक ऐसी काव्यसृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, आध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामों का सार संभाल ली। इस प्रकार महादेवी ने छायावाद को मध्यकालीन अध्यात्म से भिन्न दर्शन और सूक्ष्म भाव सौन्दर्य पर प्रतिष्ठित किया है।

▶ हृदय की भावभूमि पर प्रकृति सौन्दर्य की अनुभूति

पिछले वर्षों में प्रगतिवादी और अन्य समीक्षकों ने भी छायावाद पर विचार किया है। जिनमें डॉ. रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, डॉ. नामवर सिंह, शान्तिप्रिय द्विवेदी, डॉ. देवराज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रायः सभी प्रगतिवादी समीक्षकों ने प्रगतिवाद को छायावाद का स्वाभाविक विकास माना है और छायावाद को राष्ट्रीय सांस्कृतिक संदर्भ से जोड़ा है। डॉ. नामवर सिंह के विचार से छायावाद व्यक्तिवाद की कविता है जिसका प्रारम्भ व्यक्ति के महत्व को स्वीकारने और करवाने से हुआ।

▶ प्रगतिवाद को छायावाद का स्वाभाविक विकास

शान्तिप्रिय द्विवेदी छायावाद के प्रभावशाली समीक्षक रहे हैं। उन्होंने छायावाद और रहस्यवाद के अन्तर को स्पष्ट किया और उसके लौकिक पक्ष की प्रतिष्ठा की। द्विवेदी जी ने छायावाद को सूक्ष्म चेतना का काव्य मानते हुए उसे गाँधीवादी आन्दोलन से जोड़ा है। डॉ. देवराज छायावाद काव्य के कट्टर आलोचक रहे हैं। 'छायावाद का पतन' शीर्षक ग्रन्थ में उन्होंने छायावाद की कमियों का निरूपण किया है। उनके विचार से 'छायावादी कवि सुन्दर शब्द संचय द्वारा अपनी रचना में आकर्षण सजावट एवं संगीत उत्पन्न करना चाहता है। अनुभूति को व्यक्त करना मुख्य ध्येय नहीं है।'

▶ अनुभूति को व्यक्त करना मुख्य ध्येय नहीं

इन प्रमुख समीक्षकों के अतिरिक्त छायावाद पर और भी लोगों ने लिखा है। यहाँ सभी का उल्लेख करना संभव नहीं है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर छायावाद के निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं।

3.1.2 छायावादी काव्य की विशेषताएँ

छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित है

आत्माभिव्यक्ति

छायावादी रचनाएँ अनुभूति प्रधान कही जाती है। 'छायावाद' के प्रस्थापक कवि श्री 'प्रसाद' ने 'छायावाद' की विशेषताओं मे 'स्वानुभूति की विवृत्ति' माना है। वे काव्य की 'अनुभूति' को 'मननशील आत्मा की असाधरण अवस्था' मानते हैं। उनका कथन है कि 'कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग को किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के बाह्यवर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूति की अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी में उसे 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया गया। 'स्वानुभूति' में कवि का तात्पर्य 'निजी अनुभूति' या 'व्यक्तिगत अनुभूति' से है, जो 'जन-सामान्य अनुभूति' या लोकभूमि पर लायी गयी अनुभूति के साथ विभेद का वाचक है। छायावादी कवि एक 'स्थायी भाव के भीतर जितनी भी भावनाओं का अनुभव करेगा, वह उन्हें पूर्ण रूप से अभिव्यक्त कर देगा।

▶ 'छायावाद' के प्रस्थापक कवि श्री 'प्रसाद'

वेदना की अभिव्यक्ति

छायावादी काव्य में वेदना अथवा दुख की भी अभिव्यक्ति मिली है। इस वेदना में मुक्ति की आकुलता भी दिखाई पड़ती है। प्रसाद की आँसू शीर्षक खण्डकाव्य में यह स्वर स्पष्ट रूप से देखा जा सका है। पन्त 'गान' (कविता) की उत्पत्ति को 'आह' से मानते हैं। महादेवी का अधिकांश काव्य अश्रुओं से सिक्त है। प्रसाद जी की घनीभूत पीड़ा आँसू बनकर बरसती है और निराला के लिये तो दुख ही जीवन की कथा रही है। वस्तुतः निजी प्रेम की आवृत्ति से जो वेदना हुई वही आकुलता, निराशा, पीड़ा, विषाद आदि अनेक मानसिक विचारों के रूप में व्यक्त हुई है। यह दुःखवादी स्वर प्रारम्भिक कविताओं में अधिक पाया जाता है। किन्तु क्रमशः क्षीण होता गया है। प्रसाद की चिन्ता की परिणति आनन्दवाद में होती है। गुंजन तक पहुँचते-पहुँचते पन्त भी सुख-दुख में सामन्जस्य स्थापित करना चाहते हैं और महादेवी की यामा में आँसुओं का प्रवाह मन्द हो जाता है।

▶ वेदना अथवा दुख की अभिव्यक्ति हुई है

छायावादी कवियों ने वेदना को वरदान स्वरूप ग्रहण किया है। महादेवी जी का कथन है कि 'दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सके, किन्तु हमारा एक बूंद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर अधिक उर्वर बनाये बिना नही गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दु.ख को सब को बाँटकर - विश्व जीवन मे अपने जीवन को, विश्व-वेदना मे अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जल-बिंदु समुद्र में मिल जाता है- कवि का मोक्ष है।' जीवन को विरह का जलजात बना देने वाली महादेवी जी की निम्न पंक्तियाँ उनकी भावना की प्रतीक है-

'विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना मे जन्म करुणा मे मिला आवास।।
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात।'

('नीरजा')

▶ छायावादी कवियों ने वेदना को वरदान स्वरूप ग्रहण किया है

सौन्दर्य बोध

छायावादी कवियों की दृष्टि सौन्दर्यवादी रही है। उनमें सौन्दर्य बोध के विविध स्वर पाये जाते हैं। वह जीवन के साथ-साथ विश्व सौन्दर्य दर्शन के अभिलाषी रहे हैं। कथ्य और शिल्प दोनों क्षेत्रों में यह सौन्दर्य दृष्टि पाई जाती है। इन कवियों ने सौन्दर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान माना है और उसके विविध स्वरों का उद्घाटन किया है। उन्होंने मानव सौन्दर्य में स्थूल पक्ष की अपेक्षा उसके भावात्मक पक्ष पर विशेष जोर दिया।

▶ सौन्दर्य बोध के विविध स्वर पाये जाते हैं

नारी सौन्दर्य के विविध चित्र खीचे, नारी की लज्जा का सूक्ष्म अंकन किया। पन्त ने कहा-

सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर - मानव तुम सबसे सुन्दरतम्

संयोग-पक्ष की शुद्ध श्रेणी में आने वाला अंश 'छायावादी' काव्य मे अपेक्षाकृत कम है। रूप एवं सौदर्य चित्रण सम्बन्धी उक्तियाँ भी या तो विरह काल में स्मृति के रूप में उपस्थित हुई है अथवा 'पुर्वानुराग' के रूप में। शुद्ध-संयोगपक्ष का रूप कामायनी में सुन्दर ढंग से उपस्थित हुआ है। 'झरना' की अधिकांश कविताएँ प्रेम मूलक है। प्रसाद जी-प्रेम के प्रसार एवं उसकी शक्ति

के कायल थे। इसी से उनका प्रेम न तो वायवीय ही है और न मात्र शारीरिक। प्रसाद जी के प्रेम-वृक्ष का मूल जीवन के ठोस धरातल में फैला हुआ है और उसकी चोली आध्यात्मिकता के दिव्य आकार मे लहरा उठी है। कवि की कल्पना सदैव रूप-सौंदर्य के व्यापक चित्र उपस्थित करने में समर्थ होती है और उनके अंकन का चित्रपट विशाल होता है। लज्जानत किन्तु गर्वीले सौंदर्य का चित्र कितना उदात्त, रसमय, साथ ही आनन्दपूर्ण और सटीक है। इसमे रूप की सीमा नहीं, उसकी असीमता का आनंद है। प्रसाद, प्रेम, यौवन और सौन्दर्य के कवि हैं।

▶ 'झरना' की अधिकांश कविताएँ प्रेम मूलक है

"तुम कनक किरण के अंतराल मे,
लुक छिपकर चलते हो क्यों?
नत-मस्तक गर्व वहन करते,
यौवन के घन रस-कन ढरते,
हे लाज-भरे सौन्दर्य बता दो
मौन बने रहते हो क्यों?"

(चन्द्रगुप्त नाटक)

निराला जी की श्रृंगार-क्षेत्र की तटस्थता अपूर्व है। 'सरोज के स्मृति' कविता इसका प्रमाण है। पंत का प्रेमी अपनी कल्पना मे ही संतुष्ट हो जाता है, पर निराला का प्रेमी उसे जीवन की भूमि पर सचेत बनाता है। कामायनी के पूर्व प्रसाद का प्रेमी अपने अतीत विलास की स्मृति मे व्यथित है, और निराला का प्रेम-भाव सदैव सामाजिक मर्यादा की भूमि पर भास्वर हुआ है। प्रसाद, पंत, निराला आदि छायावादी कवियो के सौदर्य में ऐन्द्रियता का वर्णन भी इतनी निस्संग कल्पना से किया गया है कि वह अतीन्द्रिय हो उठा है।

▶ छायावादी कवियों के सौंदर्य वर्णन अतीन्द्रिय हो उठा है

छायावादी कविता में मानवीय प्रेम का विरह-पक्ष जितना उदात्त, व्यापक एवं मानवता के त्याग एवं बलिदान की भावनाओ से उज्ज्वल हो उठा है, उतना अन्य किसी भी युग मे नही। भक्तिकाल का प्रेम अलौकिक है और रीतिकाल का देहिक। छायावादी विरह कायिक नहीं मानसिक है।

▶ छायावादी विरह कायिक नहीं मानसिक है

'प्रसाद' का विरह आवेगमय, 'पंत' का कलामय, किंतु महादेवी का विरह साधनामय है। छायावादी कवियो का विरह एक प्रकार की मस्ति में भरा है। 'प्रसाद' को मस्ती में एक आवेगमय विस्मरण है, तो पंत की मस्ती में सुषमा की प्यास है और महादेवी के मतवालेपन में संयम की दीप्ति। 'निराला' की मस्ती में एक निर्द्वन्दता एवं दार्शनिक तटस्थता है।

▶ 'प्रसाद' का विरह आवेग-मय, 'पंत' का कलामय, किंतु महादेवी का विरह साधनामय है

प्रकृति वर्णन

कवियों का यह सौन्दर्य बोध मानव तक ही सीमित नहीं रहा अपितु प्रकृति सौन्दर्य पर भी उनकी दृष्टि गई। हिन्दी में अब तक जो प्रकृति वर्णन हुआ था वह प्रायः उद्दीपन रूप अथवा अलंकार रूप तक ही सीमित रहा। छायावादी कवियों ने प्रकृति को एक स्वतन्त्र सत्ता और चेतन इकाई के रूप में देखा है। अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने 'प्रकृति की ओर लौटो' (वैक टू नेचर) का नारा दिया था। छायावादी कवियों ने भी प्रकृति के विविध रूपों का गहराई से अध्ययन किया। पन्त प्रकृति के सुकुमार कवि हैं। उन्होंने कहा कि-

▶ प्रकृति के विविध रूपों का गहराई से अध्ययन

छोड़ दुमों की मृदु छाया

तोड़ प्रकृति से भी माया
वाले तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन

छायावाद एवं प्रकृति के इसी घनिष्ट सम्बन्ध के आधार पर कई विद्वानों ने छायावाद को ही एक प्रकृतिपरक दर्शन मान लिया है। प्रकृति के निजी सौंदर्य के स्थान पर कवियों ने उनके प्रति अपने व्यक्तिगत प्रभाव एंव निजी अनुभूतियों को ही प्रधानता दी है। कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण किया है और उन पर निराकार भावना का आरोप कर उनसे मानवोचित व्यापार कराये है। प्रकृति के ऐसे सुन्दर भावमय चित्र सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में विरले है।

▶ कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण किया है

पंत की लहरों में किसी के 'मौननिमंत्रण' सुनने से लेकर नक्षत्रों एवं प्रकृति के दैवीकरण तथा अज्ञात के प्रति जिज्ञासा तक के विविध रूप विविध स्थलों पर प्राप्त होते हैं। 'निराला' में अद्वैतवादी स्वामी रामतीर्थ एवं विवेकानन्द की विचारें का प्रभाव, आत्मा-परमात्मा के बीच चलनेवाली प्रणय-क्रीड़ा के मधुर भाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते है। प्रसाद जी ने सृष्टि के विस्तार की मूल की ओर रहस्यात्मक संकेत किया है।

नारी भावना

नारी के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण छायावादी कवियों की एक विशेषता है। वीरगाथा काल में नारी, अधिकार प्राप्त करने की एक साधन से अधिक कुछ भी न थी। भक्ति-युग और उस के पूर्व काल में वह माया का प्रतीक रही। उत्तर काल में कृष्ण भक्ति शाखा में राधा एवं गोपियों पूज्य अवश्य बनी, पर वह भी नारी का अबला रूप ही है, जो विरह में केवल आँसु ही बहाती रहती है। राम भक्ति-शाखा में सीता, कौशिल्या आदि के रूप में यदि उसका उदात्त रूप व्यक्त हुआ है तो कैकेई एवं मंथरा के रूप से उसका दुष्ट पक्ष भी। यद्यपि यह भी ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता कि काव्य भक्ति में आए ये रूप तत्कालीन समाज के प्रतिनिधि के रूप है। रीतिकालीन काव्य में व्यक्त नारी का रूप तो वासना-पुत्तली से अधिक कुछ भी नही। यही नही, राधिका का उज्ज्वल भक्तिकालीन रूप भी राज सभाओं की विलास-भूमि में आकर साधारण नायिका के स्तर पर गिर गया। द्विवेदी युग ने अवश्य ही उसके शक्ति एवं मातृरूपों के साथ आदर्श पत्नी रूप को भी प्रतिष्ठित किया है पर वहाँ भी वह तथाकथित उच्चादर्श एवं जड़ नैतिकता की लक्ष्मण-रेखा से घिरी रही, उसका सहज मानवी रूप प्रतिष्ठा न पा सका। छायावादी युग में आकर स्त्री के जिस रूप का चित्रण हुआ, वह घर की सीमा में बन्द, देवी का रूप नहीं वरन सच्चे अर्थ में मानवी का रूप है।

▶ मानवी का रूप

छायावादी कवियों ने नारी को समस्त बन्धनों से मुक्त करने की आवाज उठाई। उसे देवि, माँ, सहचरि, दया ममता, और त्याग आदि महिमामय गुणों से संपन्न बना दिया। उसे समाज में सम्मानजनक स्थान देने का प्रस्ताव रखा। वह निर्जीव सम्पत्ति मात्र नहीं रही। अपितु उसकी भी इच्छा तथा आकांक्षाओं, सुख-दुखों की अभिव्यक्ति हुई। प्राचीन जर्जर मान्यताओं को समाप्त कर नवीन समतावादी धरातल पर उसकी प्रतिष्ठा की गई। उसके अधिकारों की ही चर्चा नहीं हुई अपितु उसकी प्रणयलीला तक का खुलकर वर्णन हुआ।

▶ छायावादी कवियों ने नारी को समस्त बन्धनों से मुक्त करने की आवाज उठाई

मानववाद

छायावादी काव्य में 'मानववाद' की प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती है। मानव अपने मानव

रूप में ही महान है वह देवत्व और किसी मानवोत्तर पद के द्वार का भिखारी नहीं। महापुरुषों, देवताओं और महाराजाओं के स्थान पर जहाँ आधुनिक युग ने जनसाधारण एंव मानवता को अपनाया वहाँ धीरे-धीरे मानव महिमा का स्वर भी ऊँचा हुआ। मनुष्य अपनी सहज सशक्तता एवं दुर्बलता के रहते हुए भी उसी में महान है। मानवता का जय- गान करते हुए कामायनी का नारीपात्र श्रद्धा कहती है -

'शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे है हो निस्प्राय।
समन्वय उमका करे समस्त
विजयनी मानवता हो जाय।।'

▶ छायावादी काव्य में 'मानववाद' की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है

राष्ट्रीय भावना

छायावादी काव्य मूलतः व्यक्तिनिष्ठ काव्य रहा है वस्तु निष्ठ नहीं। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि कवि देश और समाज की समस्याओं से अनभिज्ञ थे अथवा उनकी उपेक्षा कर रहे थे। वस्तुतः उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय भावना का स्वर भी काफी प्रखर है। यह ऐसा समय था जब देश गाँधी जी के नेतृत्व में स्वाधीनता संग्राम में संलग्न था। असहयोग आन्दोलन अपने पूरे वेग पर था। इसलिये कोई भी प्रबुद्ध व्यक्ति उस पुनीत यज्ञ से विरत हो ही नहीं सकता था। छायावादी कवियों ने अपनी लेखनी द्वारा इस आन्दोलन को सक्रिय सहयोग प्रदान किया। प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त का गीत एक प्रकार से नवयुवकों के लिये प्रवचन गीत बन गया था। वह राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हैं- चन्द्रगुप्त में अलका के मार्चिग सोंग को देखिए-

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्वला, स्वतन्त्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त मुक्त पन्थ है बढ़े चलो बढ़े चलो।

▶ चन्द्रगुप्त का गीत राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है

'लहर' संग्रह की 'शेरसिंह' का 'शस्त्र समर्पण' नामक कविता में राष्ट्रीय भावना की ही प्रतिध्वनि है। इसी प्रकार निराला की 'भारत जय विजय करे' तथा 'जागो फिर एक बार' नामक कविताएँ एक प्रकार से राष्ट्रगीत ही हैं। निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' के माध्यम से देशोद्धार की व्यंजना की है। उनके अतिरिक्त उस समय के केदारनाथ भिक्षु, बुद्धिनाथ झा, सियारामशरण गुप्त, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द आदि की कविताओं में देशभक्ति की भावना मिलती है।

इन कवियों की राष्ट्र भावना संकुचित नहीं थी अपितु वे उसके माध्यम से लोक मंगल और मानवतावाद का भी संदेश दे रहे थे। इस दृष्टि से निराला सबसे आगे हैं। प्रसाद का कामायनी में भी मानव मात्र के मंगल की बात उठाई गई है-

निराला के लिये तो
मानव मानव से नहीं भिन्न
निश्चय ही श्वेत कृष्ण अपना
वह नहीं क्लिन्त
भेद कर एक
निकला कमल जो मानव का वह निष्कलंक।

▶ इन कवियों की राष्ट्र भावना संकुचित नहीं थी

कल्पना

▶ कल्पना मन की शक्ति

काव्य-गत अनुभूति, कल्पना के सहारे भाषा में अभिव्यक्त होकर ही सामने आती है, अतएव अनुमति एवं कल्पना का विभाजन बड़ा कठिन होता है। कल्पना मन की शक्ति है। कल्पना के सहारे ही कवि अथवा कलाकार जीवन-जगत में दृष्ट अथवा अनुभूत वस्तुओं को अपने अर्न्तजगत् में पुनः प्रस्तुत करता है। कल्पना के द्वारा 'बिम्ब-ग्रहण' के पश्चात् ही कविता की सृष्टि संभव है।

▶ पंत का वच्चों का सा भोलापन एवं शिशु की सी अज्ञानता का आकर्षण उनकी कल्पना प्रियता का ही रूप है

कविवर पंत की कविता का कल्पना-विकास हिन्दी के आधुनिक साहित्य अपना विशेष स्थान रखता है। यदि 'नक्षत्र' जैसी कवितायें अपवाद स्वरूप मानी जाएँ, जहाँ कल्पना ने उसे 'निद्रा के रहस्य कानन', 'सूर-सिंधु तुलसी के मानस', एवं 'स्वप्नों के नीरव चुम्बन' मे अध्यवसित कर दिया है, तो यह मानना पडेगा कि सुमित्रानंदनपंत के भाव एव रूपाभिव्यक्ति मे भी कल्पना का बड़ा कुशल प्रयोग हुआ है। प्रसाद की कल्पना भाव नीति है, निराला की दर्शन बोझिल, एवं महादेवी जी की चिंतन- दीप्त। पंत कल्पना की गुदगुदी से नाच उठते हैं। प्रसाद के भाव अपनी अभिव्यक्ति के लिए कल्पना से मैत्री करते है, और महादेवी कल्पना की शीतल ज्योत्सना में अपनी अनुभूतियों का स्वरूप संवारती है। पंत का वच्चों का सा भोलापन एवं शिशु की सी अज्ञानता का आकर्षण उनकी कल्पना प्रियता का ही रूप है।

प्रतीक योजना

▶ प्रतीक विधान की शैली भी छायावाद की विशेषताओं में से है

प्रतीक विधान की शैली भी छायावाद की विशेषताओ मे से है। छायावादी काव्य में ऐसे अप्रस्तुतों का प्रयोग किया गया है जिसमे पूर्ण रूप से युग साम्य न रहने पर भी प्रतीकता पाई जाती है। वस्तुतः ऐसे स्थलों पर धर्म के लिए धर्मो का प्रयोग किया जाता है। फूल, शुल ऊषा, तम, तारे, तार, वीणा आदि ऐसे ही प्रतीक हैं। प्रसाद के छायावादी महाकाव्य के सर्गों का नामकरण प्रतीकात्मक हैं। उसके चार पात्र प्रतीकात्मक हैं।

दार्शनिकता, रहस्यवाद, भाषा और शैली का नूतन प्रयोग, लाक्षणिकता आदि भी छायावादी काव्य की विशेषताएँ हैं। ये विशेषताएँ छायावादी काव्य को अन्य काव्यधाराओं से अलग बनाती हैं और इसे हिन्दी साहित्य में एक विशेष स्थान दिलाती हैं।

छायावादी काव्य की विशेषताएँ

आत्माभिव्यक्तिः छायावादी कवि अपनी व्यक्तिगत और आत्मिक अनुभूति को पूरी तरह से व्यक्त करते हैं, जो उन्हें जन-सामान्य अनुभूति से अलग करती है।

वेदना की अभिव्यक्ति : छायावादी काव्य में वेदना और दुख को जीवन की अनुभूति और मुक्ति की खोज के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महादेवी जी के अनुसार, दुख जीवन को अर्थपूर्ण बनाता है और इसे विश्वव्यापी स्तर पर जोड़ता है।

सौन्दर्य बोधः छायावादी कवियों की दृष्टि सौन्दर्यवादी रही है। उनमें सौन्दर्य बोध के विविध आयाम पाये जाते हैं।

प्रकृति वर्णनः छायावादी कवियों ने प्रकृति को केवल सौंदर्य के बजाय एक चेतन सत्ता के रूप में देखा और इसे मानव भावनाओं से जोड़ा। पन्त और निराला जैसे कवि प्रकृति के गहरे अध्ययन और मानवीकरण के माध्यम से उसकी अद्वितीयता को व्यक्त करते हैं, जबकि प्रसाद ने सृष्टि के रहस्यों की ओर संकेत किया।

नारी भावना: छायावादी कवियों ने नारी को समस्त बंधनों से मुक्त करने और समाज में सम्मानजनक स्थान देने की आवाज उठाई। उन्होंने नारी की इच्छाओं और आकांक्षाओं को प्रकट किया और प्राचीन मान्यताओं को चुनौती देकर उसकी समतावादी प्रतिष्ठा को बढ़ावा दिया।

मानववाद: छायावादी काव्य में 'मानववाद' की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

राष्ट्रीय भावना: छायावादी काव्य मूलतः व्यक्तिनिष्ठ काव्य रहा है वस्तु निष्ठ नहीं तथापि उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय भावना का स्वर भी काफी प्रखर है।

कल्पना: छायावादी कवियों ने कल्पना का कुशल प्रयोग करते हुए अपने काव्य में जीवन-जगत की अनुभूतियों और वस्तुओं को पुनः प्रस्तुत किया।

प्रतीक विधान: छायावादी काव्य में प्रतीक विधान की शैली का उपयोग कर युग साम्य के बावजूद प्रतीकता को उभारा है।

3.1.3 छायावादी काव्यधारा के स्तंभ

छायावादी काव्यधारा के प्रमुख स्तंभ वे कवि और लेखक वे हैं जिन्होंने इस साहित्यिक आंदोलन को आकार दिया और उसे विस्तारित किया। इन स्तंभों ने अपने अद्वितीय योगदान और दृष्टिकोण के माध्यम से छायावाद को समृद्ध किया। छायावादी काव्यधारा के प्रमुख स्तंभों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित हैं

3.1.3.1 जयशंकर प्रसाद

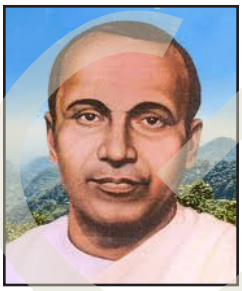

कविवर जयशंकर प्रसाद (1890-1937) का जन्म काशी के एक संपन्न घराने में हुआ था, जो 'सुंघनी साहु' नाम से प्रसिद्ध था। इन्होंने आठवीं कक्षा तक शिक्षा पाने के बाद घर पर ही संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी सीखी। प्रारंभ में इन्होंने ब्रजभाषा में कविताएँ लिखीं, किंतु बाद में खड़ीबोली में कविता करने लगे। इनकी काव्य-कृतियों में भाषा, छंद, भाव आदि की दृष्टि से अनेकरूपता दिखायी देती है।

इनकी काव्य-रचनाएँ हैं

'उर्वशी' (1909), 'वनमिलन' (1909), 'प्रेमराज्य' (1909), 'अयोध्या का उद्धार' (1910), 'शोकोच्छ्वास' (1910), 'कानन-कुसुम' (1913), 'प्रेम पथिक' (1914), 'करुणालय' (1913), 'महाराणा का महत्व' (1914), 'झरना' (1918), 'आँसू' (1925), 'लहर' (1935) और 'कामायनी' (1936)।

'प्रेम-पथिक' की रचना पहले ब्रजभाषा में की गयी थी, किंतु बाद में उसे परिवर्तित करके खड़ीबोली में प्रकाशित किया। यह भी उल्लेखनीय है कि 'कानन कुसुम' और 'झरना' के परवर्ती संस्करणों में कवि ने कुछ नई कविताओं का समावेश किया तथा 'आँसू' में चौसठ छंद और जोड़ दिये। स्पष्ट है कि 'झरना' के पूर्व की सभी रचनाएँ द्विवेदी-युग के अंतर्गत लिखी गयी थीं। प्रसाद जी की आरंभिक शैली बहुत कुछ अयोध्यासिंह उपाध्याय की संस्कृतगर्भित शैली से मिलती-जुलती है, जो स्थूल और बहिर्मुखी है।

▶ पहले ब्रजभाषा में काव्य लेखन

छायावादी प्रवृत्तियों के दर्शन सबसे पहले 'झरना' में होते हैं। अनेक कविताओं में कवि ने अंतर्मुखी कल्पना द्वारा सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयास किया है। बाह्य सौंदर्य का चित्रण करते हुए भी उन्होंने उसके सूक्ष्म और आन्तरिक पक्ष को व्यक्त करने की ओर ध्यान दिया है। जिस प्रकार राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के कवियों में स्वार्थ का निषेध कर समाज (भारतीय समाज) के कल्याण के भाव की प्रतिष्ठा दिखायी देती है, उसी प्रकार छायावादी कवि भी व्यक्तिगत वेदना से ऊपर उठ कर करुणा या विश्व-कल्याण की भावना की अभिव्यक्ति करने लगते हैं। 'आँसू' काव्य की आत्मिक और अंतिम मनोभूमि में इतना व्यवधान दिखायी देता है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे मेधावी आलोचक ने उस पर आक्षेप करते हुए कहा है: 'कहने का तात्पर्य यह है कि वेदना की कोई एक निर्दिष्ट भूमि न होने से सारी पुस्तक का कोई एक समन्वित प्रभाव नहीं निष्पन्न होता।' किंतु ध्यान देने की बात यह है कि 'आँसू' एक स्मृति-काव्य है)कुछ समीक्षक आँसू को खडीबोली का प्रथम विलाप काव्य (Elegy) मानते हैं। कवि ने अतीत जीवन की अनुभूतियों को स्मृति के माध्यम से दर्द-भरी अभिव्यक्ति दी है। यही कारण है कि 'आँसू' की भावभूमि स्थायी नहीं, विकासशील है। उसमें कवि का अतीत (जो स्मृति-पथ पर आता है) ही नहीं, उसका वर्तमान भी संयुक्त है। इसलिए अंत तक आते-आते कवि अपने व्यक्ति जीवन के नैराश्य और अवसाद से ऊपर उठ कर अपनी वेदना को करुणा के रूप में, विश्व-प्रेम के रूप में रूपांतरित कर देता है। इसका कारण स्पष्ट है- छायावादी काव्य निराशावादी काव्य नहीं है, वह मानव-समाज के लिए कल्याण की कामना से अलंकृत है। इसलिए छायावादी कवियों की व्यक्तिगत निराशा ही करुणा और विश्व-प्रेम का रूप ग्रहण कर लेती है, जहाँ पहुँच कर कवि सारे संसार की वेदना को खुद स्वीकार करके विश्व-जीवन को सुखमय बनाना चाहता है। इस दृष्टि से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि 'आँसू' में प्रसाद की अनुभूति व्यक्तिगत निराशा के गर्त से निकल कर विश्ववेदना के साथ तादात्म्य स्थापित करती हुई मानव जीवन को सुखी बनाने केलिए आकुल हो उठती है। 'लहर' में प्रसाद की गीतकला का उत्कृष्ट रूप दिखायी देता है। इन गीतों में कहीं तो प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन है और कहीं प्रणय की तीव्र अनुभूति का, कहीं करुणा की अभिव्यक्ति है तो कहीं रहस्यवादी संकेत दिखायी देते हैं। 'शेरसिंह का शस्त्रसमर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'प्रलय की छाया' में कवि ने मुक्त छंद में ऐतिहासिक प्रसंगों की शक्तिशाली और मार्मिक अवतरण की है। कल्पना की मनोरमता, भावुकता और भाषा-शैली में प्रौढ़ता को इनकी रचनाओं में सर्वत्र देखा जा सकता है।

▶ छायावादी काव्य निराशावादी काव्य नहीं है

'कामायनी' प्रसाद की अंतिम प्रौढ कृति है। इसके कथानक का आधार वह प्राचीन आख्यान है, जिसके अनुसार मनु के अतिरिक्त संपूर्ण-देव जाति प्रलय का शिकार हो जाती है और मनु तथा श्रद्धा या कामायनी के संयोग से मानव सभ्यता का विकास होता है। इसकी कथानक बहुत संक्षिप्त है, लेकिन कवि ने इसमें जीवन के अनेक पक्षों का समावेश करके मानव जीवन के लिए एक व्यापक आदर्श व्यवस्था की स्थापना का प्रयास किया है। 'कामायनी' के एक संदर्भ का संबंध मनु और श्रद्धा के व्यक्तिगत जीवन और प्रणय के साथ है। इसमें इतिहास, पुराण, दर्शन मनोविज्ञान आदि कई आयामों का चित्रण है। चित्रवृत्तियों का कथानक के पात्र रूप में अवतरण हिन्दी काव्य का अनुपम प्रयास है। समन्वय से जीवन में समरसता और आनंद की प्रतिष्ठा काव्य का लक्ष्य रहा है।

▶ 'कामायनी' प्रसाद की अंतिम प्रौढ कृति

3.1.3.2 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

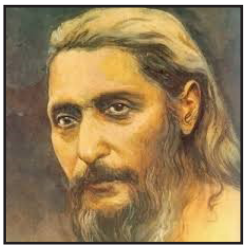

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' : महाप्राण नाम से विख्यात निराला छायावादी दौर के चार स्तंभों में एक हैं। निराला जी (1897-1962) का जीवन अनेक अभावों एवं विपत्तियों से पीड़ित रहा, किंतु इन्होंने किसी विपत्ति के सामने झुकना नहीं सीखा। अभावों की तीव्र व्यथा को झेलते हुए ये भी साधना में तल्लीन रहे। मगर कब तक कोई इस तरह जी सकता है? निराला का मन और बुद्धि तो संघर्षों की उपेक्षा करते हुए अविचलित रहे, किंतु उनकी चेतना के भीतर जैसे कुछ टूट रहा था, घुल रहा था। उनके जीवन के अंतिम वर्ष जहाँ उनकी चेतना के अधक अविचल संघर्ष की कहान्ी कहते हैं, वहीं उनके जीवन की विपत्तियों और व्यथाओं की दुर्निवार शक्ति को भी व्यंजित करते हैं। सन् 1916 से 1958 तक निराला निरंतर काव्य-साधना में तल्लीन रहे। कुछ अर्से तक निराला ने 'मतवाला' और 'समन्वय' का संपादन भी किया। निराला का व्यक्तित्व सिद्धान्तवादी और साहसी था। वे निरंतर संघर्ष-पथ के पथिक थे। हिन्दी साहित्य संसार में उनके आक्रोश और विद्रोह, उनकी करुणा और प्रतिबद्धता के कई कहानियाँ प्रचलित है।

▶ महाप्राण नाम से विख्यात

छायावादयुगीन रचनाएँ हैं

'अनामिका' (1923), 'परिमल' (1930), 'गीतिका' (1936), 'तुलसीदास' (1938)।

निराला को केवल व्यक्ति के रूप में ही परिस्थितियों का तीव्र विरोध नहीं सहना पड़ा, वरन कवि के रूप में भी उनका प्रबल विरोध हुआ। इसका प्रधान कारण तो उनकी मौलिकता है, जो कवि के दीप्त अहंकार की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। सन् 1916 में 'जूही की कली' का प्रकाशन उस युग के साहित्यकारों के लिए एक चुनौती बन कर सामने आया। उसमें व्यक्त प्रणय-केलि के चित्र और मुक्त छंद का शक्तिशाली शिल्प दोनों ही तत्कालीन मान्यताओं से मेल नहीं खाते थे। किंतु निराला अपनी धुन के पक्के और फक्कड़ स्वभाव के व्यक्ति थे। इसलिए उन्होंने सबकी उपेक्षा की। उनके काव्य में आरंभ से ही विविधता के दर्शन होते हैं। यह विविधता भाषागत भी है और भावगत भी, विचारगत भी है और शिल्पगत भी। उदाहरणार्थ, 'परिमल' में गीत भी हैं और मुक्त छंद भी, मधुर भावों से अनुप्राणित प्रणयगीत भी हैं और ओजपूर्ण रचनाएँ भी। उसमें 'अधिवास' और 'पंचवटी प्रसंग' जैसी दर्शनप्रधान रचनाएँ भी हैं और 'भिक्षुक' तथा 'विधवा' जैसी कविताएँ भी, जिनमें यथार्थ का तीव्र दंश दिखायी देता है। निराला की एक ही समय की रचनाओं में दिखायी देने वाली यह अनेकरूपता संभवतः उनके अध्ययन के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण संकेत है। अन्य कवियों की, जैसे पंत की, अनेकरूपता काल में विस्तृत साधना की विशेषता है। जैसे-जैसे युग बदलता है, कवि यथार्थ के नये स्तरों और आयामों के प्रति सजग होता चलता है। किंतु निराला अद्वैतदर्शन से भिखारी के जीवन तक फैले युग सत्य के विविध स्तरों और आयामों को मानो एक साथ ही अपनी साधना में समेट लेना चाहते हैं। यह सूक्ष्म गवेषणा का विषय है कि उनके जीवन में जो बिखराव आया, उसे चेतना और शिल्प के उनके आरंभिक बिखराव (या विस्तार) से कहाँ तक संबद्ध किया जा सकता है? निराला की रचनाओं पर दर्शन का प्रत्यक्ष और गंभीर

प्रभाव है। 'अधिवास', 'पंचवटी- प्रसंग', 'तुम और मैं' आदि रचनाओं में कवि ने दार्शनिक सत्य को रूपायित करने का प्रयास किया है। 'परिमल' और 'गीतिका' में प्रार्थना और वंदना के गीत भी मिलते हैं, जो मध्यकालीन भक्ति- परंपरा से जोड़े जा सकते हैं। आध्यात्मिकता के प्रति निष्ठा होने के कारण कवि में कहीं-कहीं रहस्यवादी भावना के भी दर्शन होते हैं। यह आध्यात्मिकता सहज ही कवि की सांस्कृतिक चेतना से समन्वित हो जाती है। निराला में भी पुनर्जागरण के प्रभाव के फलस्वरूप प्राचीन भारतीय परंपरा के प्रति निष्ठा का भाव है और वे भी भारतीय संस्कृति के उन मूल्यों के संधान का प्रयास करते हैं, जो वर्तमान जीवन की प्रेरणा दे सकें। 'तुलसीदास' में कवि ने गोस्वामी तुलसीदास के माध्यम से भारतीय परंपरा के गौरवशाली मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया है।

▶ विविधता से भरा काव्य लेखन

निराला युगीन यथार्थ के प्रति भी अत्यंत सजग थे। कुछ तो उनके निजी जीवन की पीड़ा ने और कुछ उनकी प्रखर मुक्त प्रतिभा ने उन्हें यथार्थ के विषम एवं निम्नतर पक्षों की ओर भी आकृष्ट किया। यह आकर्षण कहीं तो करुणा के रूप में व्यक्त हुआ है और कहीं व्यंग्य और उपहास के रूप में। 'राम की शक्तिपूजा' निराला की ही नहीं, संपूर्ण छायावादी काव्य की एक उत्कृष्ट उपलब्धि है। इसमें कवि ने एक ऐतिहासिक प्रसंग के द्वारा धर्म और अधर्म के शाश्वत संघर्ष का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

▶ युगीन यथार्थ के प्रति सजग

निराला की अधिकांश रचनाओं की भाषा संस्कृतगर्भित है और उसमें समास की अधिकता है। पदों के प्रयोग में कवि ने गेयता का विशेष ध्यान रखा है, कहीं तो गेयता का गुण ही इतना प्रधान हो गया है कि अर्थ की संगति ही नहीं बैठ पाती। लेकिन प्रायः कवि ने समस्त पदावली के प्रयोग द्वारा उपयुक्त लय और अर्थ-गांभीर्य की अभिव्यक्ति की है। कवि की भाषा-शैली का दूसरा रूप अत्यंत सरल और छोटे पदों के कुशल व्यवहार के रूप में दिखायी देता है। 'अनामिका' में संगृहीत रचना 'सच है' की ये पंक्तियाँ देखिए :

▶ संस्कृतगर्भित भाषा

यह सच है।
बार-बार हार-हार में गया, खोजा जो हार क्षार में नया,
उड़ी धूल, तन सारा भर गया, नहीं फूल,
जीवन अविकच है- यह सच है!

'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'गरिमा', 'बेला', 'नए पत्ते', 'अर्चना आराधना', 'सान्ध्य काकली', 'अपरा' अन्य प्रमुख काव्य कृतियाँ है।

3.1.3.3 सुमित्रानंदन पंत

प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत (1900-1970) का जन्म उत्तरांचल के जिला अल्मोड़ा के कौसानी ग्राम में हुआ था। जन्म के कुछ घंटे बाद ही मातृस्नेह से वे वंचित हो गये अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा ने इन्हें बचपन से ही अपनी ओर आकृष्ट किया और प्रकृति के उस मनोरम वातावरण का इनके व्यक्तित्व पर गंभीर प्रभाव पड़ा। इनके मन में प्रकृति के प्रति इतना मोह पैदा हो गया था कि ये जीवन की नैसर्गिक व्यापकता और अनेकरूपता में पूर्ण रूप से आसक्त न हो सके।

▶ प्रकृति के सुकुमार कवि

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन?
छोड़ अभी से इस जग को।

इन पंक्तियों में सामान्य रूप से तो यह प्रतीत होता है कि कवि रमणी के सौंदर्य की अपेक्षा प्रकृति के सौंदर्य को अधिक महत्वपूर्ण मानता है, लेकिन रमणी के सौंदर्य की यह उपेक्षा क्या जीवन की उपेक्षा के भाव को व्यंजित नहीं करती? यह तो सच है कि बाद की रचनाओं में कवि ने प्रणय के महत्व को स्वीकार किया है, किंतु उपर्युक्त पंक्तियों में रमणी सौंदर्य के निषेध को प्रतीकात्मक अर्थ में जीवन-सौंदर्य की उपेक्षा के अर्थ में भी ग्रहण किया जा सकता है। पंत जी की पहली कविता 'गिरजे का घंटा' सन् 1916 की रचना है। तब से वे निरंतर काव्य साधना में तल्लीन हैं।

▶ प्रकृति के सौंदर्य को अधिक महत्वपूर्ण माना

आरंभिक काव्य-ग्रंथ हैं-

'उच्छ्वास' (1920), 'ग्रंथि' (1920), 'वीणा' (1927), 'पल्लव' (1928), 'गुंजन' (1932)।

'वीणा' की रचनाएँ सन् 1918- 1919 की लिखी हुई हैं। 'गुंजन' को उनका अंतिम छायावादी काव्य-संग्रह कहा जा सकता है। इसके बाद के कविता-संकलन पहले प्रगतिवाद चेतना से और फिर अरविंद दर्शन से प्रभावित हैं। पंत काव्य में प्रकृति के मनोरम रूपों का मधुर और सरस चित्रण मिलता है।

▶ 'गुंजन' को उनका अंतिम छायावादी काव्य-संग्रह कहा जा सकता है

'आँसू की बालिका', 'पर्वत-प्रदेश में पावस' आदि कविताओं में प्रकृति के मनोहर चित्र विद्यमान हैं, जिनमें कवि की जन्मभूमि के प्राकृतिक सौंदर्य का वैभव दिखायी देता है। किंतु 'बादल' और 'छाया' जैसी कविताओं में केवल एक अद्भुत या विलक्षण कल्पना के ही दर्शन होते हैं, जिससे चमत्कार की अनुभूति तो होती है, लेकिन किसी गंभीर भाव की नहीं, छाया को दमयंती के समान या 'रतिश्रांता ब्रजवनिता' के समान चित्रित करने में कवि किसी गंभीर अनुभूति से प्रेरित नहीं प्रतीत होता। दूसरी ओर कवि पंत आदर्श प्रेमी रहे हैं। उनकी अनेक कविताओं में प्रकृति-प्रेम और आदर्शवादिता संबद्ध रूप में मुखरित हैं। 'वीणा' से कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

▶ जन्मभूमि के प्राकृतिक सौंदर्य के वैभव का चित्रण

कुमुद कला बन कलहासिनी।
अमृत प्रकाशिनि, नभ-वासिनि, तेरी आभा को पा कर मौ।
जग का तिमिर-त्रास हर दूँ- नीरव रजनी में निर्भय।

यहाँ कवि ने प्रकृति से चांदनी की आभा को पा कर जग के 'तिमिर-त्रास' को दूर करने की आकांक्षा व्यक्त की है। कवि की यह आदर्शवादी भावना निरंतर प्रबल होती गयी है। यह आदर्शवादी भावना ही 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में 'सर्ववाद' का रूप ग्रहण करती हुई अंत में अरविंद-दर्शन की ओर उन्मुख हो जाती है। 'परिवर्तन', 'एक 'तारा', 'नौका विहार' आदि

कविताओं में जिस दार्शनिक सत्य को वाणी दी गयी है उसका आधार और साधन भी प्रकृति ही है। 'परिवर्तन' कविता में कवि की दार्शनिक चेतना उद्दीप्त दिखायी देती है, जो 'एक तारा' जैसी कविताओं में अधिक संयम और निखार के साथ व्यक्त हुई है। लेकिन कवि का यह दर्शन-प्रेम उसे अनुभूति से विमुख नहीं करता। वास्तव में बुद्धि और हृदय के विरोध की समस्या छायावाद-युग में कहीं इतनी गहराई से जुड़ी हुई थी कि उस युग के सभी कवियों ने उसके समन्वय की बात की है पंत ने छायावादी कविताओं में तो इस आदर्श का निर्वाह विशेष सफलता के साथ किया है, लेकिन परवर्ती रचनाओं में कवि सत्य को सजीव रूप में चित्रित करने में असमर्थ रहा है। वह सत्य को केवल चित्रोपम रूप में प्रस्तुत कर सका है, वहाँ सत्य हृदय के रस से भीगा हुआ नहीं है। 'गुंजन' तक की रचनाओं में पंत ने विचार को सजीव सरस रूप में ही प्रस्तुत किया है। उनमें रस की अभिव्यक्ति दो स्तरों पर हुई है-एक तो भाव-जगत के क्षेत्र में प्रायः प्रणय के स्तर पर, जैसे 'मधु स्मिति' या 'भावी पत्नी के प्रति' कविताओं में और दूसरे, विचार या दर्शन के स्तर पर। 'परिवर्तन', 'एक तारा', 'नौका विहार' आदि कविताओं में कवि ने सत्य को ही सरस रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वैसे यह उल्लेखनीय है कि पंत की सौंदर्य-भावना और कल्पना का प्रसार प्रकृति और जीवन के सुकुमार रूपों की ओर ही अधिक रहा है। 'परिवर्तन' में प्रकृति के कठोर रूप का चित्रण हुआ अवश्य है, किंतु कविता के अंत तक आते-आते कवि उस भयानकता को भी मूलभूत आनंदमय सत्य के साथ संबद्ध करके देखने लगता है और इस प्रकार फिर अपनी परिचित भूमि पर सौंदर्य, आनंद और माधुर्य की भूमि पर लौट जाता है (प्रकृति के व्यक्त रूप में आसक्ति होने के कारण पंत-काव्य में रहस्यवादी भावनावाद के रूप में मुखर नहीं हो पायी 'मौन निमंत्रण' जैसी कविता अपवाद-स्वरूप ही है, और यहाँ भी अरूप-अज्ञात सत्ता के प्रति विस्मय और जिज्ञासा का भाव मिलता है, आसक्ति या प्रणय का नहीं।

▶ अरविंद-दर्शन की ओर उन्मुख हुआ

'पल्लव' की भूमिका में पंत ने भाषा, अलंकार, छंद, शब्द और भाव के सामंजस्य पर विचार व्यक्त किये हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कवि भाषा के प्रयोग के संबंध में कितना जागरूक है। पंत की शैली की प्रमुख विशेषताएँ है- लाक्षणिक वैचित्र्य, विशेष-विपर्यय, विरोध- चमत्कार, मानवीकरण, प्रतीक-विधान, अन्योक्ति-विधान आदि) सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल, तड़प बन जाते हैं गुंजार' (मौन निमंत्रण) का सौंदर्य लाक्षणिक वैचित्र्य के कारण है। 'उषा का था उर में आवास' (आँसू की बालिका) में 'उषा' का प्रयोग प्रतीक के रूप में हुआ है। 'गिरा हो जाती है सनयन, नयन करते नीरव भाषण' (स्नेह) में विरोध-चमत्कार का सौंदर्य है। इसी प्रकार अन्य असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। 'वीणा' में भावों और विचारों की सरलता एवं स्पष्टता के अनुरूप ही शैली भी प्रायः प्रसाद गुण से युक्त है, किंतु 'ग्रंथि' में कवि भाषा के प्रति अधिक सजग हो उठा है। यह सजगता भाषा के मंथर गंभीर प्रभाव और अलंकार-विधान के रूप में दिखायी देती है। 'पल्लव' तक आते-आते कवि की भाषा शब्द और अर्थ के अपूर्व एवं सूक्ष्म सामंजस्य के रूप में व्यक्त हुई है। 'गुंजन' की कविताओं में ये सभी विशेषताएँ हैं, किंतु वहाँ कवि अधिक संयत है। 'पल्लव' की रचनाओं में भाषा के एक नये रूप की बाढ़-सी दिखायी देती है। अनुभूति में जैसा प्रवाह और आवेग है, वैसा ही प्रवाह और आवेग भाषा में है। किंतु 'गुंजन' में कवि का व्यक्तित्व भी अधिक प्रौढ़ हो उठा है और संरचना भी।

▶ भाषा, अलंकार, छंद, शब्द और भाव के सामंजस्य पर विचार

'गुंजन' के बाद भी पंत जी की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। उनकी मुक्तक कविताएँ

'युगांत', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'उत्तरा', 'रजतशिखर', 'वाणी', 'पतझर' आदि में संगृहीत हैं। मुक्तक रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने 'लोकायतन' महाकाव्य की रचना भी की है उनके छायावादोत्तर काव्यों में 'युगांत', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की कविताएँ आती हैं। उनकी भाषा-शैली और भावबोध प्रगतिवादी चेतना से प्रभावित हैं। इन रचनाओं में कवि की भाषावक्रता, सांकेतिकता आदि को छोड़ कर सरलता और सपाटबयानी की ओर अग्रसर रही है। वैसे इन रचनाओं में अनुभूति के स्थान पर विचार को अधिक महत्व मिला है :

▶ प्रगतिवादी चेतना से प्रभावित भाषा-शैली और भावबोध

"तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार, वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार !"

'ग्राम्या' की इन पंक्तियों में कवि अलंकरण की प्रवृत्ति का त्याग नहीं करता, वरन कविता में 'विचार' के संप्रेषण के महत्व को प्रतिष्ठित करते हुए उसे जनजीवन से संबद्ध करना चाहता है। यह उल्लेखनीय है कि इस संदर्भ में पंत जी ने अध्यात्म का विरोध नहीं किया। आध्यात्मिक सत्य पर कवि की आस्था बनी हुई है, किंतु वह भौतिक समृद्धि की अनिवार्यता को भी स्वीकार करता है:

▶ अध्यात्म का विरोध नहीं

'भूतवाद उस धरा-स्वर्ग के लिए मात्र सोपान, जहाँ आत्मदर्शन अनादि से समासीन अम्लान।'

ये पंक्तियाँ पंत की प्रगतिशील चेतना के मूल स्वर को बड़े स्पष्ट रूप में व्यक्त करती हैं। किंतु प्रश्न यह उठता है कि भूतवाद और आत्मदर्शन के इस समन्वय का सैद्धांतिक रूप क्या हो? कवि को इस प्रश्न का उत्तर मिलता है अरविंद दर्शन में, जिसकी अभिव्यक्ति 'ग्राम्या' के बाद के स्वर्णकाव्य में हुई है। यहाँ उनकी शैली में फिर परिवर्तन आया है। इस नयी शैली में छायावादी कविता की सांकेतिकता और उपचारवक्रता के साथ ही 'युगवाणी' की बौद्धिकता भी समाविष्ट है। अपने स्वर्णकाल में पंत ने अनेक संदर्भ और स्थितियों के अंतर्गत अरविंद दर्शन को अभिव्यक्त किया है। कवि वर्तमान मानव जीवन के विषम संकट को व्यक्त करते हुए एक नये आदर्श भविष्य का चित्रण करता है। यह प्रयास युगीन यथार्थ के अनेक पक्षों का स्पर्श करते हुए भी अध्यात्म पर आश्रित है और अध्यात्म द्वारा ही नियंत्रित है। इन रचनाओं की शक्ति और सीमा इसी तथ्य पर आधारित है।

▶ अरविंद दर्शन से प्रभावित

3.1.3.4 महादेवी वर्मा(1907-1987)

महादेवी वर्मा छायावादी काव्यधारा की प्रमुख कवि हैं। उनकी कविताओं में रहस्यवाद और वेदना का प्रमुख स्थान है। उस अज्ञात प्रियतम के लिये वेदना ही इनके हृदय का भावकेंद्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनाएँ, छूट छूट कर झलक मारती रहती हैं। वेदना से इन्होंने अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है, उसी के साथ वे रहना चाहती हैं। उसके आगे मिलनसुख को भी वे कुछ नहीं गिनतीं। वे कहती हैं कि - 'मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ,। इस वेदना को लेकर इन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता। एक पक्ष में अनंत सुषमा, दूसरे पक्ष में अपार वेदना, विश्व के छोर हैं जिनके बीच उसकी अभिव्यक्ति होती है-

▶ छायावादी काव्यधारा की प्रमुख कवि

यह दोनों दो ओरें थीं संसृति की चित्रपटी की;
उस बिन मेरा दुख सूना,
मुझ बिन वह सुषमा फीकी।
पीड़ा का चसका इतना है कि-
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा। तुमको ढूँढ़ेगी पीड़ा

इनकी रचनाएँ समय-समय पर संग्रहों में निकली हैं- 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सांध्यगीत'। अब इन सबका एक बड़ा संग्रह 'यामा' के नाम से बड़े आकर्षक रूप में निकला है। गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवीजी को हुई वैसी और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजलप्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भावभंगी। जगह जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।

▶ आधुनिक युग की मीरा

छायावादी दौर के चार स्तंभों में एक। आधुनिक युग की मीरा नाम से जाने जाते हैं। प्रणय एवं वेदानुभूति, जड-चेतन का एकात्म भाव, रहस्यात्मकता, सौंदर्यानुभूति आदि उनकी प्रमुख काव्य वस्तु है। प्रधानतः गीति कवयित्री हैं। काव्यों में प्रतीकात्मकता संकेत भाषा का प्रयोग किया है। ज्ञानापीठ सम्मान से पुरस्कृत।

महादेवी वर्मा की प्रमुख रचनाएँ हैं:

- नीहार
- रश्मि
- नीरजा
- सांध्यगीत

▶ छायावाद के अन्य कवि

ऊपर 'छायावाद' के कुछ प्रमुख कवियों का उल्लेख हो चुका है। इनके साथ ही इस वर्ग के अन्य उल्लेखनीय कवि हैं- सर्वश्री मोहनलाल महतो 'वियोगी', भगवतीचरण वर्मा, नरेंद्रशर्मा और रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'। श्री वियोगी की कविताएँ 'निर्माल्य', 'एकतारा', और 'कल्पना' में संगृहीत हैं। श्री भगवतीचरण की कविताओं के तीन संग्रह हैं- 'मधुकण', 'प्रेम संगीत' और 'मानव'। श्री रामकुमार वर्मा ने पहले 'वीर हमीर' और 'चित्तौड़ की चिता' की रचना की थी तो जो छायावाद के भीतर नहीं आती। उनकी इस प्रकार की कविताएँ 'अंजलि', 'रूपराशि', 'चित्ररेखा' और 'चंद्रकिरण' नाम के संग्रहों के रूप में प्रकाशित हुई हैं। श्री आरसीप्रसाद की रचनाओं का संग्रह 'कलापी' में हुआ है। श्री नरेंद्र की कविताएँ 'कर्णफूल', 'शूलफूल', 'प्रभातफेरी' और 'प्रवासी के गीत' नामक संग्रहों में संकलित हुए हैं और श्री अंचल की कविताएँ 'मधूलिका' और 'अपराजिता' में संग्रह की गई हैं।

▶ छायावाद को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका

ये कवि छायावादी काव्यधारा के प्रमुख हैं और उनके कार्य ने छायावाद को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने अपने अद्वितीय दृष्टिकोण और काव्यशैली के माध्यम से इस साहित्यिक आंदोलन को प्रगतिशीलता और गहराई प्रदान की।

छायावाद के अन्य प्रमुख कवि और उनके संग्रहः

1. मोहनलाल महतो 'वियोगी':
   प्रमुख संग्रहः 'निर्माल्य', 'एकतारा', 'कल्पना'
2. भगवतीचरण वर्माः
   प्रमुख संग्रहः 'मधुकण', 'प्रेम संगीत', 'मानव'
3. नरेंद्र शर्माः
   प्रमुख संग्रहः 'कर्ण-फूल', 'शूल-फूल', 'प्रभात फेरी', 'प्रवासी के गीत'
4. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल':
   प्रमुख संग्रहः 'मधूलिका', 'अपराजिता'
5. आर.सी. प्रसादः
   प्रमुख संग्रहः 'कलापी'

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

रीतिकाल के अवसान के बाद तथा इतिवृत्तात्मक काव्य प्रवृत्ति से लगाकर आधुनिक काल में छायावद का आगमन हुआ। आधुनिक काल की शुरुआत 1900 से मानी जाती है। रीतिकाल के संस्कारों का गहरा प्रभाव आधुनिक साहित्य पर दिखाई देता है। आधुनिक हिन्दी कविता की शुरुआत 1916 से निराला, की कविता से मानी जाती है। साहित्य में कविता के क्षेत्र में छायावाद का आगमन सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पन्त, महादेवी वर्मा जैसे कवियों द्वारा हुआ। छायावादी कवियों का दृष्टिकोण सौन्दर्य प्रधान था। श्रृंगारिकता छायावादी काव्य की मुख्य प्रवृत्ति थी। छायावाद के उदय के अनेक कारण माने जाते है। श्रृंगारिकता पर रीतिकालीन कवियों का असर दिखाई देता है। छायावादी काव्य धारा ने धीमे-धीमे अपना अस्तित्व कायम किया। छायावादी कवियों ने इस दौर में प्राचीन तथा मध्यकालीन कवियों से बिल्कुल भिन्न नई शैली अपनाई। छायावादी काव्य में कवियों की प्रेम और सौन्दर्य सम्बन्धी भावनाओं को सशक्त अभिव्यक्ति प्राप्त हुई। छायावाद की काल सीमा सामान्यतः सन् 1914 से 1936 तक मानी जाती है। सौन्दर्य के प्रति आस्था, वैयक्तिक दृष्टि कोण, प्रकृति का मानवीकरण, लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली आदि असली विशेषताएँ थीं। सन् 1936 में छायावाद की सर्वोत्कृष्ट कृति कामायनी, प्रकाशित हुई और धीरे-धीरे छायावादी काव्यधारा धीमी होने लगी। छायावादी कवियों की अतिकल्पना तथा वैयक्तिक स्ज्ञान के कारण 1936 में छायावाद का ह्रास हुआ। प्रकृति का मानवीकरण तथा यथार्थ के अभाव के कारण छायावाद का ह्रास स्वाभाविक था। छायावाद के बाद एक नया वाद कविता के क्षेत्र में उभरकर आया जिसे प्रगतिवाद कहते हैं। 1936 में प्रेमचन्द्र की अध्यक्षता में प्रगतिशील संघ का अधिवेशन हुआ जिसके कारण साहित्य में एक नई विचारधारा समाविष्ट हुई जो शीघ्र ही प्रगतिवाद के रूप में प्रचलित हुई। 1936 में साहित्य में प्रगतिवाद उभरकर आया।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. छायावाद के अर्थ एवं परिभाषा पर टिप्पणी लिखिए।
2. छायावाद के विशेषताओं पर आलेख लिखिए।
3. छायावाद के प्रमुख कवियों पर टिप्पणी लिखिए।
4. छायावाद के नामकरण पर टिप्पणी लिखिए।
5. छायावाद के प्रमुख रचनाओं पर आलेख तैयार कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
4. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
5. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
6. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय
7. हिन्दी काव्य का इतिहास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
8. हिन्दी कविता का प्रवृत्तिगत इतिहास - पूरणचंद टण्डन, विनीता कुमारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रामचंद्र शुक्ल
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 2

उत्तर छायावाद, व्यक्तिवादी गीति कविता-हरिवंशराय बच्चन, नरेंद्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, भगवतीचरण वर्मा, गोपालसिंह नेपाली, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता- मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारीसिंह दिनकर, सियारामशरण गुप्त, उदयशंकर भट्ट, सोहनलाल द्विवेदी

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- उत्तर छायावाद से परिचय प्राप्त करता है
- व्यक्तिवादी गीति कविता से परिचय प्राप्त करता है
- व्यक्तिवादी गीति कविता के कवियों से परिचय प्राप्त करता है
- राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता एवं कवियों से परिचय प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

उत्तर छायावाद हिन्दी साहित्य में छायावाद के बाद की एक महत्वपूर्ण काव्य धारा है। यह अवधि दो विश्व युद्धों और स्वतंत्रता आन्दोलन के बीच की है। छायावाद का परवर्ती रूप ही हिन्दी साहित्य में उत्तर छायावाद के नाम से जाना जाता है। उत्तर छायावाद का समय अपेक्षाकृत छोटा है, लेकिन साहित्य में इसके योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी का विचार है 'छायावाद का पूवार्द्ध जहाँ कवि के व्यक्तित्व के आस्फालन (ढकेलने, दवाने या मारने की क्रिया) और विश्व दृष्टि के उन्मेष का काव्य है वहीं उसका उत्तरार्द्ध उसके संकोच और सीमाबद्ध होने का इतिहास है।

हिन्दी साहित्य में उत्तर-छायावाद, छायावाद के समानान्तर या बाद में लगभग 1930 के आसपास विकसित हुई प्रवृत्ति है। उत्तर छायावाद ने ही प्रगतिवाद के लिए ठोस पृष्ठभूमि तैयार की। उत्तर छायावाद अपने सामान्य अर्थ में छायावाद के उत्तर चरण का बोध कराता है। किन्तु प्रयोग की दृष्टि से इसके अन्तर्गत छायावाद के उत्तरकाल में रचित राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविताएँ तथा वैयक्तिक प्रगीतों की वह धारा आती है जिसे मस्ती व जवानी का काव्य कहा जाता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

उत्तर छायावाद, व्यक्तिवादी गीति कविता, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता, रोमानी दृष्टि, लौकिक प्रेम

Discussion / चर्चा

3.2.1 उत्तर-छायावाद

छायावादोत्तर काल में हिन्दी काव्य-साहित्य में कई नई प्रवृत्तियाँ उभरीं, जिनमें व्यक्तिगत, सामाजिक, रोमानी, और बौद्धिक यथार्थवादी दृष्टियाँ शामिल हैं। इस काल की प्रमुख काव्यधाराएँ राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता, वैयक्तिक गीतिकाव्य, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, और नई कविता हैं। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता भारतेंदु-काल से लेकर छायावाद-काल तक की परंपरा

को जारी रखते हुए समकालीन प्रश्नों के साथ विकसित हुई। छायावादी काव्यधारा, विशेषकर निराला और पंत के योगदान के माध्यम से, इस काल का महत्वपूर्ण हिस्सा रही है, जबकि अन्य धाराएँ इस काल की विशेष उपज हैं।

3.2.1.1 निराला

निराला के गीत छायावाद से अलग और नई संभावनाओं से भरे हुए हैं। उनकी कविताओं में लोकजीवन की गहरी छाप है, जो उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से दिखती है। निराला की कविताएँ प्रेम और सौंदर्य के साथ-साथ लोगों के सुख-दुःख, संघर्ष और यातना को भी उजागर करती हैं। निराला की कविताओं में निराला का लोकोन्मुख व्यक्तित्व प्रारंभ से ही झलकता रहा है। निराला ने छायावाद से हटकर प्रगतिशील कविताएँ लिखीं, जो छायावाद के प्रभाव से मुक्त हैं। उनकी कविताओं की भाषा, मुहावरे, और शैली पूरी तरह से लोक की हैं। उदाहरण के लिए, उनकी काव्य-रचनाएँ जैसे 'कुकुरमुत्ता', 'गर्म पकौड़ी', 'देव-संचीत', 'रानी और कानी', 'खजोहरा', 'मास्को डायलाग्स', 'स्फटिक शिला', और 'नये पत्ते' प्रगतिशीलता और लोकानुभूतियों को दर्शाती हैं। इन कविताओं में लोककथात्मक और संवादात्मक शैली का उपयोग हुआ है।

▶ निराला की कविताओं में निराला का लोकोन्मुख व्यक्तित्व प्रारंभ से ही झलकता रहा है

निराला की कविताएँ 1938 के पहले भी लोकजीवन और व्यक्तिगत अनुभवों को दर्शाती हैं। 'अणिमा', 'अर्चना', और 'आराधना' जैसी छायावादी कविताओं में उन्होंने स्वानुभूतिपरक गीत और विभिन्न व्यक्तियों पर कविताएँ लिखीं। इन कविताओं में प्रेम, प्रार्थना और अन्य मानवीय संवेदनाएँ शामिल हैं। निराला की इस अवधि की कविताओं में उनकी जीवनानुभूति की गहराई, टूटन, पराजय और आक्रोश भी देखी जा सकती है।

▶ मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति

3.2.1.2 सुमित्रानंदन पंत

पंत जी के इस काल के काव्य-साहित्य का विश्लेषण किया जाये तो ऐसा प्रतीत होगा कि ये अपने चिंतन और विषय में अधिक विकासशील रहे; और चूंकि ये अपने संस्कार और भाषा में मूलतः छायावादी ही रहे, अतः यह कहा जा सकता है कि पंत को इस अवधि में नया चिंतन और नया विषय प्राप्त हुए है। सन् 1936 की घोषणा कर पंत ने 1939 में 'युगवाणी' और 1940 में 'ग्राम्या' की रचना की। इसलिए वे मार्क्सवाद के भौतिक दर्शन और जनजीवन के सत्यों की ओर उन्मुख हुए।

▶ 1940 में 'ग्राम्या' की रचना की

पंत और निराला के बीच का अंतर यह है कि निराला ने जनजीवन को अपने अनुभवों के माध्यम से समझा, जबकि पंत ने इसे चिंतन और विचार के स्तर पर देखा। 'ग्राम्या' में पंत ने गाँव के जीवन का सुंदर चित्रण किया, लेकिन उनकी कविताओं में गांव की वास्तविकता की गहरी समझ नहीं दिखती। जैसे-जैसे पंत के विचार अरविंद दर्शन की ओर बढ़े, उन्होंने आध्यात्मिक दृष्टिकोण को भी अपनाया। पंत ने मार्क्सवाद को आवश्यक मानते हुए भी इसे पूरी तरह से पर्याप्त नहीं माना और अरविंदवाद में भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण का संतुलन ढूँढ़ा।

▶ 'ग्राम्या' में पंत ने गाँव के जीवन का सुंदर चित्रण किया

पंत की काव्य-रचनाओं में जैसे 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'शिल्पी', और 'लोकायतन' में यह समन्वय देखने को मिलता है। इस विकास यात्रा में पंत का काव्यपक्ष प्रभावित हुआ, जबकि उनके विचार अधिक उन्नत नहीं हुए। पंत ने समाज की समस्याओं और उनके समाधान को धारणा और आकांक्षा के स्तर पर स्वीकार किया, लेकिन अनुभूति के स्तर पर कम। इस

▶ 'लोकायतन' पंत की रचना है

कारण, चाहे मार्क्सवाद हो या अरविंदवाद, वे पंत की कविताओं को समृद्ध करने में पूरी तरह सफल नहीं हुए।

3.2.1.3 महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा की 'दीपशिखा' में उनकी क्रमानुसार भावधारा का ही उत्कर्ष दिखायी पड़ता है। प्रेम उनका मुख्य विषय है। कवयित्री ने संयोग और वियोग में उभरने वाले प्रेम के अनेक कोणों को अपने अनुभव के आलोक में देखा है। वेदना महादेवी की मूल संवेदना है। यह वेदना विरहजन्य है। करुण-वेदना और निराशा से आक्रांत इनका प्रारंभिक काव्य 'दीपशिखा' में कुछ आलोक पा सका है- आशा का, उल्लास का और मिलन का। यथा: (अ) सब बुझे दीपक जला लूँ। घिर रहा तम आज दीपक रागिनी अपनी जगा लूँ। (आ) हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन अगरु धूम सी साँस सुधिगन्ध सुरभित।

▶ प्रेम उनका मुख्य विषय है

महादेवी में गीतिकाव्य के उत्कर्ष की सुंदर भावनाएँ हैं, लेकिन यह रहस्यात्मकता का आवरण उनके प्रभाव की तीव्रता को कुछ कुंठित कर देता है। कवयित्री के पास सीमित संवेदनाएँ हैं। इन्हें वह भिन्न-भिन्न प्रतीकों और रूपकों से व्यक्त करती हैं। ये प्रतीक और रूपक भी बहुत सीमित और अभिजात हैं। कवयित्री की लौकिक संवेदनाएँ रहस्यवादी आभास से लिपट कर निश्चय ही विस्तार करती हैं, किंतु साथ ही अपनी हैं। दीप, विद्युत, सागर और तीव्रता खो देती बार-बार आते हैं और रहस्यात्मक संकेत में उलझ जाते हैं। इन निजी और छायावादी सीमाओं के बावजूद महादेवी जी छायावाद की विशिष्ट और समर्थ कवयित्री हैं और "दीपशिखा उनकी सशक्त कृति है। रहस्य और संकोच के आवरण के बावजूद कवयित्री की अंतरंग निजता गीतों में सहती रहती है। जहाँ कहीं वह पारदर्शी हो जाती हैं या जहाँ समग्र दृश्य सिमट कर उसी की ओर साकेत करने लगते हैं, वहाँ वे बहुत उत्कृष्ट गीतों की रचना करती हैं। महादेवी की दूसरी विशेषता सूक्ष्म चित्रात्मकता। ये चित्र रूप जगत और भाव जगत दोनों के हैं, किंतु रूप जगत के चित्र भी सावित्री के मानसिक संदर्भ में ही नियोजित होते हैं। लोकपरिवेश और लोकभाषा से दूर, सीमित आत्मानुभूति की परिधि में विचरण करने वाले, भाषा की अभिजात छवि से मंडित ये गीत शब्द-चयन, पद-संतुलन, बिंब-ग्रहण, सरलता, कोमलता और स्वर-लय में बहुत विशिष्ट हैं।

▶ 'दीपशिखा उनकी सशक्त कृति है

3.2.1.4 जानकीवल्लभ शास्त्री

शास्त्री जी मूलतः गीतकार हैं, इनके गीतों में छायावादी गीतों के ही संस्कार शेष हैं। ये गीत छायावादी गीतों से अधिक खुले हुए अवश्य हैं, किंतु इनकी संवेदना और गूंज-अनुगूंज प्रायः वैसी ही है। परंपरागत दर्शन, संवेदन और भाषा से निर्मित ये गीत उत्तर- छायावाद-युग के गीतों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं और इनका अपना आकर्षण है। 'रूप- अरूप', 'शिप्रा', 'मेघगीत' और 'अवन्तिका' इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं।

▶ परंपरागत दर्शन, संवेदन और भाषा से निर्मित ये गीत उत्तर- छायावाद-युग के गीतों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं

इन कवियों के अतिरिक्त उत्तर-छायावाद के अन्य उल्लेख्य कवि हैं- रामकुमार वर्मा ('अंजलि', 'रूपराशि', 'चित्ररेखा', 'चंद्रकिरण' और 'एकलव्य'), सुमित्राकुमारी सिन्हा ('विहाग', 'पंधिनी') और विद्यावती कोकिल ('अंकुरिता' और 'सुहागिन')।

3.2.2 व्यक्तिवादी गीतिकविता

व्यक्तिवादी गीतिकविता के कवियों तथा छायावादी कवियों में दृष्टि और विषय की बड़ी

समानताएँ है। इन कवियों की भी दृष्टि रोमानी है, वस्तुजगत के प्रति इनकी भी प्रतिक्रिया अत्यंत भावात्मक है। ये भी वस्तुजगत से नहीं, वस्तुजगत की प्रक्रिया से उत्पन्न अपने निजी सुख-दुःख के आवेग से संबद्ध थे, इसलिए इनके गीतों में भी भयंकर आत्म संप्रत्यय और उत्तेजना मिलती है। इनका भी विषय मूलतः सौंदर्य और प्रेम तथा तज्जन्य उल्लास और विषाद की अनुभूति है। इनकी भी अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम गीत ही है, क्योंकि इनके भी काव्यविषय की प्रकृति छायावादी काव्य की प्रकृति के समान गीतात्मक है। किंतु इन कृतियों में छायावादी कविता जैसा संकोच, रहस्यात्मकता और आदर्शवादिता नहीं है, बल्कि साहस के साथ सीधे साफ़ तौर पर अपने निजी प्रेम-संवेग तथा सुख-दुःख को कहने की आकुलता है। इनकी वेदना छायावाद की घिसती हुई वेदना की तरह सामान्य नहीं, वरन निजी प्रतीत होती है। अतः उससे अनुभव का एक विशिष्ट बिंब उभरता लक्षित होता है। यह अवश्य है कि इनके ये अनुभव-बिंब छायावाद के सुंदर अनुभव-बिंबों के समान सूक्ष्म संश्लिष्ट और गहरे नहीं हैं, किंतु जो कुछ है, वह छल नहीं ओढ़ता, उघड़े ही रूप में उभर कर, सहज प्रवाह का सुख देता है। छायावादी कविता भी प्रायः 'मैं' के माध्यम से अपना अनुभव उभारती है और व्यक्तिवादी गीतिकविता भी। किंतु, छायावाद का मैं संकोच या मर्यादित के कारण तीव्रता से आलोकित होने के स्थान प मंद-मंद दीप्त होता है, जबकि व्यक्तिवादी गीतिकविता का मैं अपने समूचे राग-विराग के साथ निर्व्याज भाव से फूट चलता है।

▶ अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम गीत

छायावादी काव्य प्रधानतः गीतात्मक है। गीत एवं प्रगीत में अंतर है 'गीत' संगीत के स्वर-ताल-लय पर बँधी रचना होती है और 'प्रगीत' में संगीत का ऐसा कठोर बंधन नहीं होता। उसमें स्वर-मैत्री एवं नादार्थ व्यंजना का प्राधान्य होता है जिसे आन्तरिक संगीत और शब्द-जन्य संगीत कहा जा सकता है। भाव तत्व की तन्मयता, कल्पना का सुखद स्पर्श एवं भाषा के स्वर-सामंजस्य को गीति-तत्व में सम्मिलित कर सकते हैं। भावों की यही आध्यात्मिकता, नित्रात्मक अभिव्यक्ति एवं स्वर-मैत्री 'छायावादी युग' के प्रगीतों की विशेषताएँ है।

3.2.2.1 व्यक्तिवादी गीतिकविता की विशेषताएँ

- लौकिक प्रेम इनकी केन्द्रीय वृत्ति है।
- प्रेम के संयोग-वियोगजन्य उल्लास, पीड़ा, उदासी,निराशा,असंतोष आदि स्वर से मुखरित है।
- इनका प्रेम सौंदर्य-आलंबन पर ठहरा होने के कारण अधिक मूर्त रूप धारण करता है।
- इनकी स्वच्छंद वृत्ति सौंदर्य और प्रेम, सामाजिक प्रतिबंधों से टकराकर विरह की पीड़ा बन जाती थी।
- कवि अपने अनुभव- सत्यों को स्वच्छंद एवं अनियंत्रित भाव से गाना चाहता था।
- इस धारा के कवि अपने गान को अनुभव के गान मानते थे, जिसको संसार वासना के रूप में लेता है तो उन्हें स्वीकार्य नहीं है।
- इनके पास जीवनदृष्टि नहीं थी, न तो पुरानी आध्यात्मिक जीवनदृष्टि और न नवीन समाजवादी दृष्टि।

- उनकी दृष्टि रोमानी थी, अतः वे व्यक्ति को न तो सामाजिक शक्ति से जोड़ सके, न आध्यात्मिक आदर्शों से।
- इस धारा के कुछ प्रमुख कृतियों में प्रगतिवादी कविता का विद्रोह देखने को मिलता है।
- व्यक्तिगत भावनाओं और अस्वीकृति को व्यक्त करता है।
- समाज के प्रति असंतोष और आलोचना को दर्शाता है।
- इस धारा का विद्रोह-स्वर अधिकतर व्यक्तिगत भावावेश पर केंद्रित है, उनमें सामाजिक दर्शन और रचनात्मक चिंतन कम हैं।
- वैयक्तिक गीतिकविता की अभिव्यक्तिमूलक सादगी उसकी एक बहुत बड़ी देन है
- कवि सीधे-सादे शब्दों और परिचित चित्रों के माध्यम से अपनी बात सरलता से व्यक्त करता है।
- कवि की शक्तियाँ अस्पष्ट बिंबों में उलझे बिना तीव्रता और प्रभाव बनाए रखती हैं, जबकि अशक्तियाँ रहस्यात्मकता का लाभ उठाकर महानता का आभास नहीं दिलाता है।
- संवेदनाएँ व्यक्तिगत होती हैं, लेकिन कवि का परिवेश, प्रकृतिचित्र, बिंब, और भाषा लोक के निकट और परिचित होती हैं।

▶ प्रगतिवादी कविता का विद्रोह देखने को मिलता है

- कविता की भाषा संस्कृतनिष्ठ होती है, लेकिन इसमें बोलचाल के शब्द और मुहावरे भी शामिल होते हैं, जिससे यह जीवंत और मांसल प्रतीत होती है।

संक्षेप में कहे तो लौकिक प्रेम वैयक्तिक गीतिकविता की मुख्य विशेषता है, जिसमें प्रेम के संयोग-वियोग, उल्लास, पीड़ा, और असंतोष प्रमुख होते हैं। कवि अपने अनुभवों को स्वच्छंद भावनाओं के साथ व्यक्त करता है, और प्रेम तथा सौंदर्य को मूर्त रूप में चित्रित करता है। इस धारा की कविता सामाजिक प्रतिबंधों से टकराकर विरह की पीड़ा को दर्शाती है। कवि जीवनदृष्टि के अभाव में रोमानी दृष्टि पर जोर देते हैं और कुछ कृतियों में प्रगतिवादी विद्रोह का स्वर भी देता है। वैयक्तिक गीतिकविता की अभिव्यक्तिमूलक सादगी कवि की शक्तियों और अशक्तियों को स्पष्टता से सामने लाती है, जबकि कविता की भाषा, यद्यपि संस्कृतनिष्ठ है तो भी बोलचाल के शब्दों और मुहावरे से जीवंत और मांसल प्रतीत होती है।

▶ अभिव्यक्तिमूलक सादगी उसकी एक बहुत बड़ी देन

कितना अकेला आज मैं
संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लूटा हुआ
परिवार से छूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं।

(एकांत संगीत)

प्रमुख कृतियाँ:
बच्चन की 'बंगाल का काल'
नरेंद्र शर्मा की 'अग्निशस्त्र'
अंचल की 'किरणबेला'
शंभुनाथ की 'मन्वंतर'

3.2.2.2 प्रमुख कवि

हरिवंशराय 'बच्चन': बच्चन इस धारा के सर्वोत्तम कवि हैं। इस धारा की समस्त संभावनाएँ बच्चन में समाहित हैं। बच्चन मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं। इसलिए उनकी प्रमुख कृतियों में आत्मानुभूति की सघनता है, जो अपने प्रभाव में तीव्र और मर्मस्पर्शी हैं। जिन कृतियों में आत्मानुभूति के साथ अवधारणाओं का संयोग होता चला है, उनमें प्रभाव की अन्विति टूट गयी है। लगता है, कवि अपनी बात कहने के बाद उसे 'जर्नलाइज्ड' करने लगता है। 'निशा-उपलब्धियाँ' हैं, वहीं अवधारणाएँ अनुभूतियों के रंग में भीग गयी हैं। कवि स्वानुभूतिजन्य और प्रेम का सहज गीत गाते हैं।

▶ बच्चन मूलतः आत्मानुभूति के कवि है

किंतु ऐसा लगता है विद्रोह या सामाजिक सत्य-चित्रण बच्चन के स्वभाव में नहीं है। इसके लिए जिस सामाजिक जीवन-भोग और बौद्धिक यथार्थवादी दृष्टि की आवश्यकता होती है, वह बच्चन या इस धारा के किसी कवि में नहीं है। बच्चन के गीत जहाँ अपनी सहज भाषा और अनुभूति की निश्छलता के कारण गीतिकाव्य को नयी गरिमा प्रदान करते हैं, वहाँ कहीं-कहीं उत्तेजना, भाषा के सपाटपन, शब्दों, बिंबों के अपव्यय के कारण बहुत प्रभावहीन भी सिद्ध होते हैं। जैसे 'जो बीत गयी सो बीत गयी' गीत का आरंभ एक अवधारणा से होता है और इस अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए कवि ने अनावश्यक रूप से तीन चित्र लिये हैं। कहा जा सकता है कि बच्चन के काव्यसौंदर्य का धरातल बहुत विषम है, कहीं काफ़ी ऊँचा, कहीं नीचा या सपाट। अपनी धारा के अन्य कवियों से बच्चन इस बात में अलग हैं कि जहाँ और लोगों ने बाद में अपने को दुहराया है, वहाँ बच्चन ने निर्मम भाव से अपनी जानी-पहचानी दुनिया को छोड़ कर यथार्थ की नयी दुनिया में प्रवेश किया है और उसके अनुकूल भाषा की तलाश की है।

▶ बच्चन के काव्यसौंदर्य का धरातल बहुत विषम है

नरेंद्र शर्मा: नरेंद्र शर्मा के गीतों का अपना वैशिष्ट्य है। उनमें बड़ी चित्रात्मकता और आत्मीयता है, उनके गीतों का सुख-दुःख सीधे-सीधे प्रेमपात्र को निवेदित है, बीच में न कोई अवधारणा आती है और न छल। इन गीतों का एक परिवेश होता है और वह परिवेश कवि का ही नहीं, हमारे भी निकट का परिचित होता है। वह कवि के अनुभवों को जीवंतता प्रदान करता है। प्रकृति का बहुत चटक और सुपरिचित परिवेश इन्हें घेरे रहता है। शर्मा जी के अपने आत्मीय क्षेत्र हैं- प्रकृति-सौंदर्य, मानव- सौंदर्य और उससे उत्पन्न विरह-मिलन की अनुभूतियाँ। यद्यपि यहाँ भी कवि की रूमानी दृष्टि ही प्रधान है, तो भी उसका स्वर बच्चन की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी और अनुभूतिप्रवण है तथा उसमें समाजवादी चिंतन का पुट भी है।

▶ विसंगतियों के विरुद्ध विद्रोही स्वर है

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल': अंचल का जन्म किशनपुर में हुआ था। एम.ए. की शिक्षा प्राप्त करके पहले ये इंस्टीट्यूट ऑफ़ लैंग्वेजेज़ एंड रिसर्च (जबलपुर) में हिन्दी- विभागाध्यक्ष रहे, फिर राजकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रायगढ़ के आचार्य हुए। इन्होंने अपने तीव्र रूमानी संवेदना को ले कर अपने अंतर की यात्रा तो की ही है, साथ ही ये समाज में भी घूमे हैं। इसलिए इनके सामाजिक यथार्थ वाले काव्यों में भी रूमानी संवेदना लक्षित होती है। रूप की उद्दाम आसक्ति, उद्दाम वासना, उद्दाम पीड़ा और उद्दाम जिजीविषा ने इनके काव्य की प्रकृति का निर्माण किया है। वासना की उद्दामता कविता को एक ओर सामाजिक संयम से काट देती है, दूसरी ओर रचनात्मक स्तर पर उसे अनुभूति की गहराई और संश्लिष्टता की अपेक्षा उत्तेजना अधिक देती है। उत्तेजना या स्नाय पूर्ण तनाव 'अंचल' में इस प्रकार हावी है कि के निरंतर किसी-न-किसी रूप में अपनी कविताओं में श्रृंगारिक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते रहे हैं।

▶ कविताओं में श्रृंगारिक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते रहे हैं

भगवतीचरण वर्मा: इनका जन्म शफीपुर, ज़िला उन्नाव में हुआ। प्रयाग में शिक्षा प्राप्त कर पहले ये पत्रकार बने, फिर स्वतंत्र भारत में आकाशवाणी से संबद्ध हुए। वर्मा जी की कविताओं में कई प्रकार की प्रवृत्तियों का संगम पाया जाता है। इनमें परंपरा के साथ युगबोध, वैयक्तिक सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और आशा-निराशा के साथ सामाजिक विद्रोह तथा निम्नवर्ग का पीड़ाबोध, अभिजात भाषा के साथ ऊर्जामयी सामान्य भाषा का अस्तित्व लक्षित होता है। फिर भी मस्ती, आवेश और अहं इनकी कविताओं के केंद्र में हैं। 'मधुकण', 'प्रेम-संगीत', 'मानव' और 'एक दिन' इनकी काव्य-कृतियाँ हैं।

▶ 'मधुकण', 'प्रेम-संगीत', 'मानव' और 'एक दिन' इनकी काव्य-कृतियाँ हैं

गोपालसिंह नेपाली: नेपाली बेतिया (बिहार) में पैदा हुए थे। काफ़ी समय तक फ़िल्मी दुनिया से संबद्ध रहे। नेपाली के प्रारंभिक गीत प्रकृति के मार्मिक, किंतु सीधे-सादे चित्रों से संपन्न होने के कारण अन्य कवियों की कविताओं से अपने को अलगा लेते हैं। इनके गीतों में चित्रित प्रेम-संवेग का भी अपना वैशिष्ट्य है। उनमें बड़ी सादगी, माधुर्य और प्रवाह है। 'पंछी', 'उमंग', 'रागिनी', 'पंचमी', 'रिमझिम', 'नवीन' आदि इनकी काव्य-कृतियाँ हैं।

▶ गोपालसिंह नेपाली काफ़ी समय तक फ़िल्मी दुनिया से संबद्ध रहे

आरसीप्रसाद सिंह: आरसीप्रसाद सिंह में छायावादोत्तर व्यक्तिवादी गीतिकविता की सभी प्रवृत्तियाँ दिखायी पड़ती हैं। इनकी कविता के केंद्र में नारी है। नारी के रूपाकर्षण, प्रेम, प्रेमजन्य उत्सुकता और उत्तेजना, निराशा, वेदना आदि के स्वरों से निर्मित इनकी कविताएँ अपनी धारा की कविताओं का ही रूप उजागर करती हैं। 'कलापी', 'संचयिता', 'जीवन और यौवन', 'पांचजन्य' और 'प्रेमगीत' इनकी काव्य-कृतियाँ हैं।

▶ आरसीप्रसाद सिंह की कविता के केंद्र में नारी है

शंभुनाथ सिंह: शंभुनाथ सिंह की काव्य-यात्रा अत्यंत विकासशील रही है। 'रूप-रश्मि', 'छायालोक', 'उदयाचल' और 'दिवालोक' में ये छायावादोत्तर व्यक्तिवादी गीतिकविता के कवि रहे हैं। 'मन्वंतर' प्रगतिवादी चेतना से प्रभावित है और बाद की कृतियों में 'नई कविता' का स्वर स्पष्ट है। व्यक्तिवादी गीतिकविताधारा में आने के बावजूद शंभुनाथ सिंह में गोयता का स्वर स्पष्ट है। व्यक्तिवादी मौलिक विधान, प्रणय-संवेदना, भाषा और छंद संक्षित होता है।

▶ 'मन्वंतर' प्रगतिवादी चेतना से प्रभावित है

3.2.3 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता

भारतवर्ष की एकता के अर्थ में राष्ट्रीयता का विकास आधुनिक काल में हुआ। आधुनिक काल में जो राष्ट्रीयता का स्वरूप के तीन आधार हैं- पूरे देश में अंग्रेजी शासन की स्थापना, सामान्य भारतीय प्रजा द्वारा अंग्रेजी शासन से उत्पन्न यातना का समान अनुभव तथा स्वाधीनता-आंदोलन का देशव्यापी प्रचार।

▶ आधुनिक काल में राष्ट्रीयता का स्वरूप के तीन आधार हैं

राष्ट्रीयता का विकास पहले पश्चिम, विशेषकर इंग्लैंड में हुआ, जहाँ पराधीनता की समस्या नहीं थी। वहाँ की राष्ट्रीयता भारत की राष्ट्रीयता से भिन्न थी। भारत में स्व-रक्षा का भाव था, जबकि पश्चिम में स्व-विकास पर ध्यान था। भारत की विविध संस्कृतियों और प्राचीन आध्यात्मिक सत्य ने उसकी राष्ट्रीयता को आकार दिया। भारतीय राष्ट्रीयता के तीन प्रमुख तत्व थे: पराधीनता से मुक्ति का प्रयास, पश्चिमी सभ्यता से अलगाव और प्राचीन संस्कृति का प्रचार, और आधुनिक मूल्यों पर आधारित व्यवस्था का पुनर्गठन। स्वतंत्रता के बाद पहले दो तत्व कम हुए, जबकि तीसरे की महत्वपूर्णता बढ़ी। आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति शुरुआत में भावनात्मक थी, जो समय के साथ जटिल और विविधतापूर्ण हो गई। गांधी जी ने भारतीय राष्ट्रीयता को नई दिशा दी।

▶ राष्ट्रीयता का विकास सबसे पहले पश्चिम में हुआ

प्रस्तुत कालावधि में आने वाली कृतियों पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि राष्ट्रीयता के सारे रूप कहीं खंडित रूप में, तो कहीं संश्लिष्ट रूप में दिखायी पड़ते हैं। राष्ट्रीयता का जो सबसे स्थूल रूप है, वह है जो विदेशी शासन के अत्याचारों, उनसे प्रसूत जन यातनाओं पर जनता के मन में उठती हुई क्रोध तथा असंतोष के तलवार थे। यह क्रिया बहुत स्थूल रूप में भी हो सकती है और बहुत सूक्ष्म तथा संश्लिष्ट रूप में भी। इस प्रकार की राष्ट्रीय कविताओं का महत्वपूर्ण स्तर प्रस्तुत अवधि में दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी आदि की कृतियों में देखा जा सकता है। वास्तव में प्रेमचंद के उपन्यासों में तत्कालीन भारतीय जीवन को जकड़ती हुई विदेशी सत्ता, सामंतवाद और महाजनी सभ्यता के जिस जटिल और बुनियादी स्वरूप को उभारा गया है, उसे भावुकता से संचालित इस प्रकार की राष्ट्रवादी कविताएँ मुखर नहीं कर सकी हैं। इनमें वस्तुस्थिति की सही व्याख्या के स्थान पर भावुक प्रतिक्रिया थी। इस संदर्भ में एक बात अवश्य लक्षित करने की है कि 1938 के आसपास के राष्ट्रीय जीवन की यातना और आक्रोश के स्वर में एक नया उभार लक्षित होता है। छायावाद-काल में गांधी जी के प्रभाव में आत्मपीड़न तथा अहिंसाजन्य नरम प्रतिरोध दिखायी पड़ता है, किंतु वामपंथी दलों के उदय, समाजवादी सिद्धांतों के प्रचार तथा विदेशी शासन के झूठे वायदों और अधिकाधिक कठोर, विषम एवं जटिल होती परिस्थितियों के कारण साहित्य का स्वर अधिक उग्र, यथार्थवादी और लोकोन्मुख होता गया। दूसरी बात यह हुई कि प्रगतिवाद के प्रभाव से देश के भीतर बनते हुए शोषकों तथा शोषितों के अनेक वर्गों की पहचान होती गयी। लड़ाई केवल अंग्रेज़ी सत्ता से ही नहीं है, बल्कि सामंती, महाजनी सभ्यता और उनके प्रतिनिधि देशी शोषकों से भी है, जो अपने ही देश की जनता के लिए अपने-अपने ढंग से भयंकर शोषण के अस्त्र-शस्त्र बन रहे हैं। राष्ट्रीयता का यह नया स्वर दिनकर में अधिक उभर कर आया। कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद ने भारतीय राष्ट्रीयता को अधिक प्रत्यक्ष किया, उसे आकाश से धरती पर उतारा तथा उसे जनजीवन से जोड़ा।

▶ यह क्रिया बहुत स्थूल रूप में भी हो सकती है और बहुत सूक्ष्म तथा संश्लिष्ट रूप में भी

राष्ट्रीयता का संबंध देश के स्थूल सुख-दुःख और आक्रोश के चित्रण से ही नहीं होता, बल्कि राष्ट्र की आत्मा या चेतना की पहचान से होता है, शायद उसी से अधिक होता है। यह चेतना स्थिर न होकर गतिशील रहती है, अर्थात नव-नव परिस्थितियों में नये-नये कोण उभारती रहती है और पुराने कोण छोड़े जाते है। संस्कृति का संबंध इसी आत्मा या चेतना से होता है। यह संस्कृति जहाँ इतिहास के रूप में हमारे लिए प्रेरणा और पृष्ठभूमि बनती है, वहाँ वर्तमान चेतना से स्पंदित हो कर हमारा जीवन बन जाती है। प्रतिभावान और नवदृष्टि-संपन्न कवियों ने संस्कृति के उदात्त अतीत रूप को वर्तमान जीवन-संदर्भों में पुनर्परीक्षित करके ही स्वीकार किया है। यह प्रयास प्रस्तुत काल के पूर्व रचित महत्वपूर्ण काव्य-कृतियों 'यशोधरा', 'पंचवटी', 'साकेत', 'प्रिय-प्रवास', 'कामायनी', 'राम की शक्तिपूजा' आदि में भी लक्षित होता है।

राष्ट्रीयता की पहचान मात्र देश के स्थूल सुख-दुःख और आक्रोश के चित्रण से ही नहीं, बल्कि राष्ट्र की आत्मा या चेतना से होता है।

▶ काव्य-कृतियों में प्रमुख हैं 'कुरुक्षेत्र', 'नकुल', 'जयभारत', 'रश्मिरथी', 'उन्मुक्त', 'विक्रमादित्य' आदि

प्रस्तुत अवधि में प्रकाशित काव्य-कृतियों में प्रमुख हैं 'कुरुक्षेत्र', 'जयभारत', 'नकुल', 'उन्मुक्त', 'रश्मिरथी', 'विक्रमादित्य' आदि। इनके अतिरिक्त 'इतिहास के आँसू' फुटकल कविताओं को भी इस संदर्भ में देखा जा सकता है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता मैथिलीशरण गुप्त इस धारा के श्रेष्ठ कवि हैं।

व्यक्तिवादी गीतिकविता की प्रवृत्तियाँ	राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ
वैयक्तिकता	पराधीनता के प्रति आक्रोश की भावना
प्रेम का स्वच्छंद अभिव्यक्ति	त्याग और बलिदान की भावना
अस्तित्वादी प्रवृत्तियाँ	ओज, अहिंसक, और शांतिकारी रूप
क्षणवाद	जनजागरण का सन्देश
क्रांति की भावना	विश्वबंधुत्व व नवसृजन पर बल
देशप्रेम	

रामधारीसिंह 'दिनकर' (1908-1974): इस धारा के इस कालावधि के सबसे सशक्त कवि 'दिनकर' हैं। दिनकर में संवेदना और विचार का बड़ा सुंदर समन्वय दिखायी पड़ता है। चाहे व्यक्तिगत प्रेम सौंदर्यमूलक कविताएँ हों, चाहे राष्ट्रीय कविताएँ, सभी कवि की संवेदना से स्पंदित हैं। दिनकर में आरंभ से ही अपने को अपने परिवेश से जोड़ने की तड़प दिखायी पड़ती है, इसलिए उनमें सर्वत्र एक खुलापन है, लोकोन्मुखता है, सहजता है- व्यक्तिगत प्रेम सौंदर्यमूलक कविताओं में भी। छायावाद या उत्तर-छायावादी वैयक्तिक कविता की कुंठा, अतिरिक्त अवसाद तथा निराशा के घिराव के स्थान पर प्रसन्नता और सर्वत्र सौंदर्य के प्रति स्वस्थ मानवीय प्रतिक्रिया दिखायी पड़ती है। दिनकर की सबसे बड़ी विशेषता है अपने देश और युग-सत्य के प्रति जागरूकता। कवि देश और काल के सत्य को अनुभूति और चिंतन दोनों स्तरों पर ग्रहण करने में समर्थ हुए है। उन्होंने राष्ट्र को उसकी तात्कालिक घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं, समताओं आदि के ही रूप में नहीं, बल्कि उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परंपरा के रूप में भी पहचाना है, और उसके प्राचीन मूल्यों का नये जीवन-संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवंतता प्रदान की है, वहीं दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्व देते हुए, उन्हें अपने प्राचीन किंतु जीवंत मूल्यों से जोड़ना चाहा है।

▶ दिनकर की सबसे बड़ी विशेषता है अपने देश और युग-सत्य के प्रति जागरूकता

सियारामशरण गुप्त (1895-1963): गुप्त जी और दिनकर के समान सियारामशरण गुप्त इस धारा के विशिष्ट कवि हैं। इनकी कृतियों में सर्वत्र गांधीवाद का प्रभाव दीखता है। देश की ज्वलंत घटनाओं और समस्याओं का इन्होंने बड़ा जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है, किंतु संस्कृति के उदात्त तत्वों के प्रति गहरी आस्था रखने वाले सियारामशरण जी इन घटनाओं, अवस्थाओं और समस्याओं को तात्कालिक तथ्य के रूप में न देख कर उन्हें बृहत्तर मानवीय मूल्यों, संवेदनाओं और मुद्दों से जोड़ देते हैं। इसलिए इनके काव्यों की पृष्ठभूमि अतीत हो या वर्तमान, उनमें आधुनिक मानवता की करुणा, यातना और द्वंद्व का समन्वित रूप उभरा है। सियारामशरण ने भारत की जिस किसी तात्कालिक घटना को लिया है, उसे एकदेशीयता से ऊपर उठा कर बृहत्तर मानवीय मूल्य का स्तर प्रदान किया है, मात्र राष्ट्रीयता कवि को स्वीकार्य नहीं। 'उन्मुक्त' आधुनिक अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण कृति हैं। इसमें अपने ढंग से युद्ध की अनिवार्यता, त्याग, बलिदान, यातना-विभीषिका और मानवीय करुणा का अद्‌भुत समन्वय हुआ है।

▶ इनकी कृतियों में सर्वत्र गांधीवाद का प्रभाव दीखा है

उदयशंकर भट्ट (1898-1961): इनका जन्म कर्णवास, जिला बुलंदशहर में हुआ था। ये सनातन धर्म कॉलेज, लाहौर में हिन्दी के अध्यापक रहे और बाद में आकाशवाणी से संबद्ध हुए। भट्ट जी की काव्य-कृतियाँ हैं 'विसर्जन', 'मानसी', 'अमृत और विष', 'युगदीप', 'यथार्थ', 'एकला चलो रे' और 'विजयपथ'। इनके काव्य में भाव, विचार और भाषा-संबंधी

▶ उदयशंकर भट्ट किसी वाद के अंतर्गत नहीं आते

बड़ा सुधरापन है। ये ठीक-ठीक किसी वाद के अंतर्गत नहीं आते। इनकी कविताओं में युग का स्वर सुनायी पड़ता है, और साथ-ही-साथ अपनी अतीत संस्कृति के प्रति आस्था भी। इनकी कविताओं में वेदना एवं निराशा की भी गूँज है और नवनिर्माण का उत्साह तथा शक्ति भी है।

▶ द्विवेदी जी की काव्य-यात्रा प्रबंधकाव्य और गीतिकाव्य दोनों क्षेत्रों में हुई है

सोहनलाल द्विवेदी (1906-1988): इनका जन्म बिन्दकी, जिला फ़तेहपुर में हुआ। ये अत्यंत सरल भाषा में राष्ट्रीय चेतना का स्वर व्यक्त करने वाले कवि है। इनकी राष्ट्रीयता की चेतना अतीत, वर्तमान और भविष्य इन तीनों ही काल आयामों को समेटती हैं। अभिव्यक्ति की सादगी और वर्णनात्मकता इनके भावों को अत्यंत सहजता से पाठकों तक प्रेषित कर देती है। द्विवेदी जी की काव्य-यात्रा प्रबंधकाव्य और गीतिकाव्य दोनों क्षेत्रों में हुई है। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ 'भैरवी', 'वासवदत्ता', 'कुणाल', 'चित्रा', 'प्रभाती', 'युगधारा' और 'पूजागीत'।

▶ हल्दीघाटी' महाराणा प्रताप के जीवन पर अधारित काव्य है

श्यामनारायण पांडेय (1907-1991): पांडेय जी की काव्य-प्रवृत्ति मुख्यतः उनके प्रबंध-काव्यों में ही निखरी है। 'हल्दीघाटी' महाराणा प्रताप के जीवन पर तथा 'जौहर' पद्मिनी की जौहर- कथा पर आधारित काव्य है। इन काव्यों में अद्‌भुत प्रवाह, ओज और सादगी है। किंतु पांडेय जी की राष्ट्रीयता अपने समय की सामासिक भारतीय राष्ट्रीयता न हो कर हिंदू राष्ट्रीयता है।

काव्य की मूलभावना देशीयता है। भारतीय जनमानस में भारतीयता और राष्ट्रीयता की भावना प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के रूप में प्रवाहित है। इस युग के कवियों ने राष्ट्रीय कर्तव्य और भावनाओं को प्रमुखता दी। दासता के बंधनों को तोड़ने के लिए कवि मौन या नहीं थे। अतः कवियों ने प्रबुद्ध समाज के साथ मिलकर देशीय गान गाने के साथ-साथ स्वतंत्रता संग्राम में भी सक्रिय भाग लिया।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

उत्तर छायावाद-युग की कविता का विकास छाया-वाद के 'काल्पनिक रोमानी', व्यक्तिवादी निराशा और आध्यात्मिक पलायन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ। यह समय एक प्रकार से संक्रान्ति का समय था जिसकी परिणति निराशा में हो रही थी। सामाजिक तथा राजनीतिक स्तर पर इस समय की भावभूमि का विश्लेषण किया जाए तो तत्कालीन समूचा युग एक निराशात्मक परिणति मे विलीन होता हुआ लक्षित होता है। अंचल तथा नरेन्द्र की कविताओं मे व्यक्त स्रणक्षयी निराशा, पस्ती, मृत्यु-पूजा आदि प्रवृत्तियाँ इसी स्थिति का प्रतिनिधित्व करती हुई प्रतीत होती है। परन्तु धीरे-धीरे पूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी व्यवस्था के प्रति जागरूक विरोधी आन्दोलन तैयार होने लगा। मार्क्सवादी मान्यताएँ साहित्यिक क्षितिज पर प्रतिष्ठित होने लगी। दूसरी ओर गाँधीवाद ने मानवात्मा के संस्कार की अनिवार्य आवश्यकता पर बल दिया। प्रस्तुत काल में साहित्य की अनेक प्रवृत्तियाँ हैं। इस समय का साहित्यिक इतिहास कई वादों और धाराओं से होकर धारा में व्यक्तिगत अनुभूति का घनत्व अधिक है, तो किसी में सामाजिक अनुभूति की स्फीति। किसी में रोमानी दृष्टि की प्रधानता है, तो किसी में बौद्धिक यथार्थवादी दृष्टि की। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता समागत छायावादी काव्यधारा या उत्तर-छायावाद, वैयक्तिक गीतिकाव्य, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता कहा जा सकता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. उत्तरछायावाद काव्य पर टिप्पणी लिखिए।
2. उत्तरछायावाद की राष्ट्रीयता पर टिप्पणी लिखिए।
3. उत्तरछायावाद के प्रमुख प्रवृत्तियों पर आलेख तैयार कीजिए।
4. व्यक्तिवादी गीतिकविता की विशेषताओं पर टिप्पणी लिखिए।
5. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा पर आलोचना कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वर्षणेय
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
5. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
6. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय
7. हिन्दी काव्य का इतिहास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
8. हिन्दी कविता का प्रवृत्तिगत इतिहास - पूरणचंद टण्डन, विनीता कुमारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि - डॉ. रामचन्द्र तिवारी, श्री राजेन्द्र बहादूर सिंह
3. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
4. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रामचंद्र शुक्ल
6. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

SGOU

इकाई : 3

प्रगतिवाद-प्रगतिवाद और चेतना, प्रगतिवाद और मार्क्सवाद का संबंध, प्रगतिवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ, प्रगतिवाद काव्य और उसके प्रमुख कवि

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- प्रगतिवाद के बारे में समझता है
- प्रगतिवाद की मुख्य प्रवृत्तियों के बारे में समझता है
- प्रगतिवाद के प्रमुख कवि के बारे में समझता है
- प्रगतिवाद की परिस्थियों के बारे में समझता है

Background / पृष्ठभूमि

जिस प्रकार द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता और स्थूलता के प्रति विद्रोह में छायावाद का जन्म हुआ, उसी प्रकार छायावाद की सूक्ष्मता, काल्पनिकता, व्यक्तिवादिता और समाज-विमुखता की प्रतिक्रिया में एक नई साहित्यिक काव्य धारा का जन्म हुआ। इस धारा ने कविता को कल्पना-लोक से निकाल कर जीवन के वास्तविक धरातल पर खड़ा करने का प्रयत्न किया। जीवन का यथार्थ और वस्तुवादी दृष्टिकोण इस कविता का आधार बना। मनुष्य की वास्तविक समस्याओं का चित्रण इस काव्य-धारा का विषय बना। यह धारा साहित्य में 'प्रगतिवाद' के नाम से प्रतिष्ठित हुई।

'प्रगति' का सामान्य अर्थ है- 'आगे बढ़ना और 'वाद' का अर्थ है-सिद्धांत। इस प्रकार प्रगतिवाद का सामान्य अर्थ है 'आगे बढ़ने का सिद्धांत'। लेकिन प्रगतिवाद में इस आगे बढ़ने का एक विशेष ढंग है, विशेष दिशा है जो उसे विशिष्ट परिभाषा देता है। इस अर्थ में 'प्राचीन से नवीन की ओर, 'आदर्श से यथार्थ की ओर', 'पूँजीवाद से समाजवाद' की ओर, रूढ़ियों से स्वच्छंद जीवन की ओर', 'उच्चवर्ग से निम्नवर्ग की ओर' तथा 'शांति से क्रांति की ओर बढ़ना ही प्रगतिवाद है।

परंतु हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद विशेष अर्थ में रूढ़ हो चुका है। जिसके अनुसार प्रगतिवाद को मार्क्सवाद का साहित्यिक रूप कहा जाता है। जो विचारधारा राजनीति में साम्यवाद है, दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्य में प्रगतिवाद है। इसी प्रगतिवाद को 'समाजवादी यथार्थवाद' (सोशेलिस्ट रियलिज्म) भी कहते हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

प्रगतिवाद, मार्क्सवाद, भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ, प्रगतिवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ, प्रमुख कवि

Discussion / चर्चा

3.3.1 प्रगतिवाद और चेतना

यद्यपि पूर्ववर्ती स्वच्छन्दतावादी (छायावादी) काव्य-परम्परा में भी वैयक्तिकता के साथ-साथ सामाजिकता, विश्व-बन्धुत्व एवं व्यापक मानवता के तत्वों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है किन्तु उसका मूल आधार काल्पनिक एवं आदर्शवादी है, उसमें भौतिकवादी एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण का उन्मेष प्रायः नहीं मिलता। प्रस्तुत काव्य परम्परा में भौतिकवादी जीवन-दर्शन पर आधारित समाजवादी विचारों एवं भावनाओं को विशेष रूप से स्थान प्राप्त हुआ, जिसे 'प्रगतिवाद' की संज्ञा दी गई है। वस्तुतः प्रगतिवाद का सम्बन्ध मार्क्सवादी आन्दोलन से है। इस आन्दोलन का प्रवर्तन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पाश्चात्य देशों में हुआ था। सन् 1935 में पेरिस में 'प्रगतिशील लेखक संघ' (Progressive writers Association) की स्थापना हुई थी जिसने साहित्य के माध्यम से समाजवादी विचारों के प्रचार को साहित्यकार का लक्ष्य घोषित किया। इसकी एक शाखा भारतवर्ष में भी स्थापित हुई। सन् 1936 में लखनऊ में 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' का पहला अधिवेशन हुआ, जिसका सभापतित्व उपन्यासकार प्रेमचन्द ने किया था।

▶ सन् 1936 में लखनऊ में 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' का पहला अधिवेशन हुआ

अगले अधिवेशन में डॉ. रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अध्यक्ष के रूप में अपने भाषण में प्रगतिशीलता की व्याख्या करते हुए बताया कि 'जो भी हमें परमुखापेक्षी, निष्क्रिय और तर्कहीन बनाता है वे सब हमारे लिए प्रतिक्रिया अध्ययन है और जो भी हममें आलोचनात्मक प्रवृत्ति जगाता है, बुद्धि और तर्क के प्रकाश में संस्थाओं और परम्पराओं की समीक्षा करता है, जो भी हमें सक्रिय बनाता है, परस्पर संगठित करता है, हमें बदल कर समुन्नत करता है, उस सबको हम प्रगत्यात्मक मानते हैं।' वस्तुतः मुंशी प्रेमचन्द और गुरुदेव टैगोर - दोनों ने ही प्रगतिशीलता को एक व्यापक-एवं उदात्त रूप में ही ग्रहण किया था जबकि परवर्ती साहित्यकारों ने इसे मार्क्सवाद की संकीर्ण सीमाओं में अवरुद्ध करके इसे 'प्रगतिशीलता' से 'प्रगतिवाद' का रूप दे दिया। प्रगतिशीलता जहाँ किसी वाद-विशेष की सूचक नहीं है, कोई भी विचार जो समाज की प्रगति में सहायक होता है 'प्रगतिशील कहा जा सकता है जबकि 'प्रगतिवाद' का अर्थ विशुद्ध मार्क्सवादी विचारों से लिया जाता है। इसीलिए प्रगतिवाद की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि राजनीति के क्षेत्र में जो मार्क्सवाद है वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद है। अतः प्रगतिवाद को समझने के लिए मार्क्सवाद के आधारभूत सिद्धान्तों का ज्ञान अपेक्षित है।

▶ दूसरा अधिवेशन डॉ. रवीन्द्रनाथ टैगोर के अध्यक्षता में हुआ

3.3.2 मार्क्सवाद के आधारभूत सिद्धान्त

प्रगतिवादी विचारधारा का मूलाधार मार्क्सवाद या साम्यवाद है जिसके प्रवर्तक कार्ल मार्क्स है। मार्क्सवादी विचार-धारा को मुख्यतः तीन शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं (1) द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद, (2) मूल्य-वृद्धि का सिद्धान्त और (3) मानव-सभ्यता के विकास की व्याख्या।

▶ प्रगतिवादी विचारधारा का प्रवर्तक कार्ल मार्क्स है

3.3.2.1 मार्क्सवाद के मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

1. द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद: मार्क्स के अनुसार, सृष्टि किसी अलौकिक शक्ति से नहीं, बल्कि भौतिक विकास से बनी है। यह विकास दो विरोधी शक्तियों के संघर्ष से होता है, जिससे नई चीजें और रूप उत्पन्न होते हैं।

▶ विकास दो विरोधी शक्तियों के संघर्ष से होता है

2. मूल्य-वृद्धि का सिद्धान्त: किसी भी वस्तु का मूल्य किस प्रकार बढ़ जाता है, इसकी व्याख्या करते हुए कार्ल मार्क्स ने उत्पत्ति के चार अंग निर्धारित किये- (1) मूल पदार्थ, (2) स्थूल साधन, (3) श्रमिक का श्रम, (4) और मूल्य-वृद्धि। उदाहरण के लिए, कपास को कपड़े में बदलने से उसकी कीमत बढ़ जाती है। यह कार्य श्रमिक से ही संभव हो जाता है। ऐसे में, यह लाभ श्रमिक का है, लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था में यह लाभ अक्सर मिल मालिक ही ले लेता है। इससे समाज में दो वर्ग बन जाते हैं: एक वर्ग श्रमिक होता है, जो मेहनत करता है, और दूसरा वर्ग वह होता है, जो श्रमिकों की मेहनत का अनुचित लाभ उठाता है। मार्क्सवादी विचारधारा में, श्रमिकों को 'शोषित' माना जाता है और मिल मालिक, जागीरदार या पूंजीपति 'शोषक' होते हैं।

▶ मार्क्सवादी विचारधारा में, श्रमिकों को 'शोषित' माना जाता है

3. सभ्यता का विकास: मार्क्स ने कहा कि मानव सभ्यता का इतिहास शोषक (जिनके पास ताकत है) और शोषित (जिनकी ताकत छिनी जाती है) वर्गों के संघर्ष की कहानी है। उन्होंने इसे चार युगों में बाँटा:

   1. दास-प्रथा: श्रमिकों के सभी संसाधनों पर मालिक का अधिकार था।
   2. सामन्ती प्रथा: श्रमिकों को कुछ स्वतंत्रता मिली, लेकिन उत्पादन के साधनों पर सामन्त का नियंत्रण रहा।
   3. पूँजीवादी व्यवस्था: श्रमिकों को उनके श्रम पर अधिकार मिला, लेकिन उत्पादन के साधनों पर पूंजीपतियों का नियंत्रण रहा।
   4. साम्यवादी व्यवस्था: यहाँ श्रमिकों की सत्ता होगी और उत्पादन के सभी साधनों पर उनका नियंत्रण होगा।

▶ मानव सभ्यता का समस्त इतिहास शोषक वर्ग और शोषित वर्ग के संघर्ष की ही कहानी है

मार्क्सवाद का उद्देश्य एक ऐसा समाज बनाना है जहाँ सभी लोगों को उनके श्रम के अनुसार लाभ मिले और शोषण समाप्त हो।

3.3.3 प्रगतिवाद और मार्क्सवाद का संबंध

सन् 1935 में पेरिस में ई एम फास्टर की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ नामक संस्था का निर्माण हुआ। इसके नेतृत्व में लेखक विश्वविख्यात माक्सिम गोर्की, आन्द्रे गैड, ई.एम फोस्टर और आन्द्र मालशक्स आदि थे। उसी वर्ष लन्दन में डाक्टर पुलकराज आनन्द, सज्जाद जहीर, भवानी भट्टाचार्य आदि भारतीय लेखकों के प्रयत्न से इसका प्रथम अधिवेशन हुआ। सन् 1936 में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई और उसी समय इसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में हुआ जिसमें पन्त, यशपाल, सज्जाद जहीर आदि अनेक प्रभावशाली लेखकों ने भाग लिया। यहीं से हिन्दी में प्रगतिवाद का आरम्भ माना जाना चाहिए। इस अधिवेशन के अध्यक्ष पद से प्रेमचन्द ने कहा था 'हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उक्त चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रभाव हो जो हम में गति और बेचैनी पैदा करे, क्योंकि अब ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है। इसका दूसरा अधिवेशन 1938 में कलकत्ता में और तीसरा अधिवेशन दिल्ली में सन् 1942 में हुआ। इसके बाद और भी दो तीन अधिवेशन हुए। इन अधिवेशनों में देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों पर विचार हुए और लेखकों को तत्कालीन समस्याओं के संदर्भ में सृजन की प्रेरणा दी गई।

▶ 1936 में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई

प्रारम्भ में इस नवीन काव्य प्रवृत्ति के लिये दो नाम सामने आये प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य। प्रगतिवादी साहित्य उसे कहा गया जो काव्यकर्म के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की प्रेरणा से लिखा जा रहा था। कहा गया कि 'राजनीति में जो मार्क्सवाद है साहित्य में वही प्रगतिवाद है। इसके विपरीत प्रगतिशील साहित्य उसे माना गया जो किसी एक राजनीतिक विचारधारा में बंधा अथवा प्रेरित न होकर सच्चे अर्थों में समूची मानवता के उत्थान की बात करता हो। लेकिन इस प्रकार का विभाजन आगे चलकर मान्य नहीं रहा। 'सामाजिक' यथार्थ की अभिव्यक्ति को उद्देश्य मानकर लिखने वाला समस्त साहित्य प्रगतिशील अथवा प्रगतिवादी माना जाने लगा। यहाँ इस तथ्य का भी उल्लेख आवश्यक है कि छायावादी आन्दोलन केवल कविता तक सीमित था किन्तु प्रगतिवाद केवल कविता तक सीमित न रहा। इसने कहानी, उपन्यास, समीक्षा आदि सभी प्रमुख काव्य विधाओं को प्रभावित किया।

▶ 'राजनीति में जो मार्क्सवाद है साहित्य में वही प्रगतिवाद है

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है कि प्रगतिवाद का आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। इसके अनुसार विश्व में सदैव दो तत्व सक्रिय रहे है-एक विधेयात्मक और दूसरा निषेधात्मक। दूसरे शब्दों में प्रत्येक देश में दो शक्तियों में द्वन्द्व चलता रहता है जिसका आधार यथार्थ (मैटर) है। इस प्रकार समाज के सदैव दो वर्ग रहे हैं- एक शोषक वर्ग और दूसरा शोषित वर्ग। शोषक वर्ग एक प्रकार की मरणोन्मुखी प्रवृति है और शोषित वर्ग नयी जीवन्त शक्ति का प्रतीक है। समाज के उत्थान में पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट करके शोषण विहीन समाज की स्थापना साम्यवाद का उद्देश्य है। ऐसे समाज में धनी, निर्धन, शोषक, शोषित का भेद समाप्त हो जायेगा। इस सिद्धान्त को मान कर जो साहित्य रचा गया उसे प्रगतिवाद कहते हैं।

▶ प्रगतिवाद का आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है

प्रगतिवादियों के अनुसार यह दर्शन जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण उपस्थित करता है। यह दृष्टिकोण पूर्णतः भौतिकवादी है। इसलिए उसे धर्म, ईश्वर, किसी आध्यात्मिक शक्ति, स्वर्ग नरक आदि में विश्वास नहीं है। यह पूँजीवाद सामन्तवाद आदि का घोर विरोधी है और समाज में ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करना चाहता है जिसमें जाति, धर्म, लिंग आदि का भेदभाव किये बिना सभी व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुरूप अपने विकास कर सकें और सभी व्यक्तियों को जीवन की आवश्यक सुविधाएँ सुलभ हो सकें। कला के प्रति भी इसका दृष्टिकोण सर्वथा उदार और मानववादी है। वह कला कला के लिये स्थान पर 'कला जीवन के लिये' सिद्धान्त में विश्वास करता है। यह प्राचीन जर्जर रूढ़ियों का घोर विरोधी है और वर्गहीन नये समाज की रचना में विश्वास करता है। सौन्दर्य के प्रति भी उसका दृष्टिकोण भिन्न है। वह प्राचीन विलासमयी और रोमानी कला के स्थान पर स्वस्थ जीवन के चिन्तन में विश्वास करता है। लोकजीवन के यथार्थ में ही वह सौन्दर्य के अन्वेषण में विश्वास करता है। कला के प्रति उसका दृष्टिकोण यथार्थवादी है वह छायावादी रंगीन कल्पनाओं और कोमल अभिव्यक्तियों में विश्वास नहीं करता है। वह सहज सरल भाषा में, स्पष्ट शैली में यथार्थ का उद्घाटन करता है। इसीलिए इसके शब्द, मुहावरे, भाषा, नवजीवन से आये हुए हैं और ताजगी लिये हुए जनसाधारण के हैं।

▶ कला के प्रति उसका दृष्टिकोण यथार्थवादी है

जहाँ तक प्रगतिवाद का उपर्युक्त विशेषताओं का सम्बन्ध है उसकी किसी से विरोध नहीं रहा। लेकिन प्रगतिवाद में एक वर्ग ऐसा भी रहा है जो साम्यवाद के प्रति पूर्णतया समर्पित है। उसका यह अन्धविश्वास है कि मानव की प्रगति के लिये साम्यवाद के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं है। वे साहित्य को राजनीति का अनुगामी मानने लगे और अपने देश की वास्तविकता का चित्रण न करके रूस, चीन का गुणगान करने लगे। इस प्रकार इन लोगों

ने साहित्य को राजनीति के प्रचार का माध्यम बना लिया और किसानों, मजदूरों और गाँवों की समस्याओं से अपरिचित रहते हुए भी बधे-बंधाए सिद्धान्तों के आधार पर उनके प्रति सहानुभूति परक साहित्य रचना करने लगे। ऐसे प्रचारात्मक साहित्य का स्वागत करना सभी के लिये संभव नहीं था। इसके अतिरिक्त वे लोग सामाजिक यथार्थ के नाम पर समाज की केवल कुरूपताओं और बीभत्सताओं का ही चित्रण करने लगे।

▶ मानव की प्रगति के लिये साम्यवाद के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं है

प्रगतिवाद के नाम पर यौन सम्बन्धों का भी नग्न चित्रण होने लगा। कुछ कवि लेखक फ्राइड के मनोविश्लेषण का सहारा लेकर अपनी दमित वासनाओं को ही व्यक्त करने लगे। इस प्रकार काम वासनाओं से सम्बद्ध अश्लीलता का स्पर्श करने वाला साहित्य ही रचा जाने लगा। काव्यभाषा में जो माधुर्य, चित्रात्मकता और सांकेतिकता होती है प्रगतिवादियों ने उसका भी परित्याग कर दिया और प्रायः अभिधात्मक शैली में अपनी बात कहनी प्रारम्भ कर दी। इसलिये कुछ लोगों ने यह आरोप लगाया कि इस काव्य में कला पक्ष की उपेक्षा की जाती है। वैसे इसमें व्यंग्य की प्रधानता अवश्य रही जो काव्य का प्रधान गुण होता है। निराला और नागार्जुन की व्यंग्यपरक कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

▶ फ्राइड के मनोविश्लेषण से प्रभावित

प्रगतिवादी कवियों की, प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण भी बदला हुआ दिखलाई पड़ता है। यहाँ छायावादी प्राकृतिक सुषमा का मोहक अथवा आध्यात्मिक स्वरूप नहीं मिलता। उसके स्थान पर कवियों ने गाँवों के यथार्थ दृश्य खींचे तथा दलित, उपेक्षित वर्ग के भयावह दुखदायी जीवन को काव्य का विषय बनाया। इस काव्य में गाँवों के सदैव से उपेक्षित, दरिद्र किसान, मजदूर भी नायक बनाये गये।

▶ उपेक्षित वर्गों को काव्य का विषय बनाया

राजनीतिक प्रतिबद्धता और प्रचारात्मक उद्देश्य के कारण यह प्रवृत्ति हिन्दी कविता में अधिक लोकप्रिय न हो सकी। प्रारम्भ में ही इसका विरोधी स्वर सुनाई पड़ने लगा था। सन् 1942-43 तक आते-आते यह धारा क्षीणा हो गई।

प्रगतिवाद की ओर झुकाव सबसे पहले उन्हीं कवियों का हुआ था जो छायावाद के स्तम्भ थे। सुमित्रानन्दन पन्त इनमें अग्रणी हैं। सन् 1936 में उन्होंने युगान्त द्वारा छायावादी युग के अंत की घोषणा कर दी। युगवाणी में उन्होंने प्रगतिवाद को युग की वाणी बताया। उनकी ग्राम्या भी इसी ढंग की रचना है। उन्होंने अपने विचारों को और अधिक स्पष्ट करने के लिये 'स्याम' नामक पत्रिका का प्रकाशन भी किया। प्रगतिवाद के समर्थन में 'हंस' और नया साहित्य नामक पत्रिकाओं में प्रचुर सामग्री प्रकाशित की। पन्त जी ने उपर्युक्त ग्रन्थों में प्राचीन अन्धविश्वासों और रूढ परम्पराओं का विरोध किया और नये समाज के निर्माण का समर्थन किया। यहाँ आकर उनकी भाषा शैली भी सरल सहज हो गई। यह कुछ वर्ष तक साम्यवाद से बहुल प्रभावित रहे और भौतिकवादी दर्शन की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते रहे। उनकी 'ग्राम्या' में गाँवों के रीतिरिवाजों, सम्बन्धों आदि के यथार्थ चित्र मिलते हैं। लेकिन पन्त जी की यह संवेदना केवल दूर की देखी हुई और बौद्धिक थी। उन्होंने स्वयं कभी भी दरिद्रता के अभिशाप को भोगा नहीं था। इसलिये शीघ्र ही उन्हें भौतिकवाद की सीमाओं का बोध हो गया और वे दूसरी दिशा की ओर मुड़ गये।

▶ युगवाणी में उन्होंने प्रगतिवाद को युग की वाणी बताया

दूसरे छायावादी कवि निराला की रचनाओं में प्रगतिशील स्वर आरम्भ से ही विद्यमान था। वे दीन-दुखियों और पीड़ित शोषित मानव के करुण दृश्य देखकर मर्माहत हो जाते थे और उन्हें अपनी वाणी का विषय बनाते थे। 'कुकुरमुत्ता', 'गर्म पकौड़ी', 'डिप्टी साहब आ गये',

▶ व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग

'भिक्षुक', 'वनबेला' आदि कविताओं में उनका यह मानवतावादी पक्ष उभर कर सामने आया है। उन्होंने कुछ कविताओं में व्यंग्यात्मक शैली में पूँजीवादियों के शोषण पर तीखा प्रहार किया है और 'विधवा', 'वह तोड़ती पत्थर' आदि कविताओं में सर्वहारा वर्ग की दीन-दशा का उल्लेख किया है।

▶ सतरंगे पंखों वाली नागार्जुन का प्रसिद्ध काव्य संग्रह है

बिहार में दरभंगा के एक गाँव में उत्पन्न नागार्जुन, कवि और उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'सतरंगे पंखोंवाली' उनका प्रसिद्ध काव्य संग्रह है जिससें अनुभूत सामाजिक परिवेश के दृश्य मिलते हैं। उनकी कुछ कविताएँ संवेदनात्मक हैं, कुछ कविताएँ आर्थिक वैषम्य, राजनीतिक पराधीनता और मानसिक धार्मिक अन्धविश्वासों पर प्रहार से सम्बद्ध हैं और कुछ में उपदेश की प्रवृत्ति पाई जाती है। 'पाषाणी', 'रवीन्द्र के प्रति', 'बादल को घिरते देखा है' आदि कविताओं में उनका प्रगतिवादी स्वर मुखर है।

इन प्रमुख कवियों के अतिरिक्त भगवती चरण वर्मा, राम विलास शर्मा, मुक्ति बोध भारत भूषण अग्रवाल आदि कवियों को भी प्रगतिवाद से जोड़ा जा सकता है।

'प्रगतिशील लेखक संघ' की विधिवत् स्थापना सन् 1936 में हुई किन्तु उससे पूर्व ही साम्यवादी विचारधारा के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में प्रगति-चेतना के उन्मूलन के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी।

अस्तु भारतीय साहित्य में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना से बहुत पूर्व ही भारतीय राजनीति, समाज एवं साहित्य के क्षेत्र में साम्यवादी विचार- धारा का पर्याप्त प्रचार-प्रसार हो चुका था जिससे हिन्दी के भी अनेक कवियों व साहित्यकारों का प्रभावित होना स्वाभाविक था। यद्यपि इस शताब्दी के तीसरे दशक में छायावाद अपने पूरे यौवन पर था किन्तु इसी दशक के अन्त तक जाते-जाते हम देखते हैं कि छायावाद के ही अनेक प्रमुख कवि साम्यवादी विचारों व समाजवादी आदर्शों से प्रभावित होने लगे, जिनमें सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और सुमित्रानन्दन पन्त के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सन् 1926 में प्रकाशित 'परिमल' में 'निराला' जी ने 'भिक्षुक', 'विधवा', 'बादल राग' आदि कविताओं में दीन-हीन शोषित वर्ग के प्रति अपनी सच्ची सहानुभूति की अभिव्यक्ति करके अपनी 'प्रगति-चेतना' को व्यक्त किया है। इसी प्रकार पन्त जी 'युगान्त' (1936), 'युगवाणी' (1936) एवं 'ग्राम्या' (1940) में क्रमशः छायावादी सौन्दर्य एवं कल्पना के लोक को छोड़कर प्रगतिवाद के ठोस धरातल पर अवतरित होते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। अब वे प्रकृति एवं नारी की उपासना को छोड़कर मानव की ओर अग्रसर होते हुए यथार्थ जीवन के सुख-दुःख में रुचि लेने लगते हैं। पंत के काव्य-जीवन में इस परिवर्तन का प्रमुख कारण मार्क्स के साम्यवादी दर्शन का ही प्रभाव था, इसे स्वयं कवि ने भी स्वीकार किया है 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में मेरी क्रान्ति की भावना मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित ही नहीं होती, उसे आत्मसात करने का भी प्रयत्न करती है।

किन्तु हमें यहाँ यह न भूलना चाहिए कि इन छायावादी कवियों ने साम्यवाद को सर्वांगीण रूप में स्वीकार नहीं किया था- वे उसके केवल आर्थिक पक्ष से एवं उसके साध्य से तो सहमत थे किन्तु इसके साथ ही वे गाँधीवादी आदर्शों सत्य, अहिंसा, संयम एवं त्याग आदि को भी मान्यता देते थे। वस्तुतः वे इन दोनों के समन्वय के द्वारा मानव-जाति के आर्थिक कष्टों एवं सामाजिक वैषम्य के निराकरण के साथ-साथ उसके नैतिक एवं आध्यात्मिक अभ्युत्थान की भी कामना करते थे- साम्यवाद की स्थूल भौतिकवादी दृष्टि, अध्यात्म विरोधी विचारधारा एवं घृणा तथा हिंसा की नीति इन्हें स्वीकार्य नहीं थी-इसीलिए वे 'प्रगतिशील' ही रहे- मार्क्स के पूर्णतः अनुयायी वे नहीं बन सके।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की प्रथम कृति 'रेणुका', भगवती चरण वर्मा की 'मधुकण', नरेन्द्र शर्मा की 'शूल-फूल' बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के 'विप्लव-गायन', जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द के 'जीवन-संगीत', आरती प्रसाद सिंह की 'कलापी' में संगृहीत कविता 'रक्तपर्व', गोपाल सिंह 'नेपाली' की 'उमंग' आदि कविताओं में भी प्रगति-चेतना के स्वर सुनाई पड़ते हैं। इनमें कहीं वर्ग-वैषम्य का चित्रण करते हुए शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है तो कहीं वर्तमान व्यवस्था को बदल देने के लिए क्रान्ति का आह्वान किया गया है तो कहीं स्पष्ट रूप में 'साम्यवाद' की प्रशंसा एवं पूँजीवाद की भर्त्सना की गई है। इस प्रकार ये कविताएँ भले ही पूर्णतः प्रगतिवादी न कहीं जा सकें किन्तु इनसे इतना तो भली- भाँति प्रमाणित होता है कि हिन्दी में प्रगतिशील संघ की विधिवत् स्थापना से पूर्व ही प्रगतिवाद के आगमन की ध्वनि या अनुगूँज स्पष्ट रूप में सुनाई पड़ने लग गई थी तथा उसके लिए अपेक्षित पृष्ठभूमि तैयार हो गयी थी- ऐसी स्थिति में उसे एकाएक आयातित या आरोपित वाद मानना उचित नहीं होगा।

3.3.4 प्रगतिवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ

समाज और समाज से जुड़ी समस्याओं यथा गरीबी, अकाल, स्वाधीनता, किसान-मजदूर, शोषक-शोषित संबंध और इनसे उत्पन्न विसंगतियों पर जितनी व्यापक संवेदनशीलता इस धारा की कविता में है, वह अन्यत्र नहीं मिलती। यह काव्यधारा अपना संबंध एक ओर जहाँ भारतीय परंपरा से जोड़ती है वहीं दूसरी ओर भावी समाज से भी। वर्तमान के प्रति वह आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि अपनाती है। प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं:-

▶ दीन-दरिद्र वर्ग के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि

सामाजिक यथार्थवाद- इस काव्यधारा के कवियों ने समाज और उसकी समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक विषमता के कारण दीन-दरिद्र वर्ग के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि के प्रसारण को इस काव्यधारा के कवियों ने प्रमुख स्थान दिया और मजदूर, कच्चे घर, मटमैले बच्चों को अपने काव्य का विषय बनाया।

सड़े घूर की गोबर की बदबू से दबकर
महक जिंदगी के गुलाब की मर जाती है।

- केदारनाथ अग्रवाल

ओ मजदूर ! ओ मजदूर !!
तू सब चीजों का करता, तू हीं सब चीजों से दूर ओ मजदूर ! ओ मजदूर!!
श्वानों को मिलता वस्त्र दूध, भूखे बालक अकुलाते हैं। मां की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं।
युवती की लज्जा बसन बेच, जब ब्याज चुकाये जाते हैं।
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं। पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमंत्रण।

-दिनकर

▶ सामाजिक असमानता का विरोध किया

शोषक वर्ग के प्रति घृणा: हिन्दी के प्रगतिशील कवियों ने सभी तरह के सामाजिक, अन्याय, शोषण, एवं सामाजिक असमानता का विरोध किया। शोषक वर्ग के अन्तर्गत -पूँजीपति, जमींदार, मिल मालिक एवं स्वार्थी राजनीतिज्ञ आदि है। ये लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए पूँजीवादी व्यवस्था बनाये रखना चाहते हैं। शोषण की प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब

तक यह पूँजीवादी व्यवस्था रहेगी, इसलिए प्रगतिवादी कवि इस व्यवस्था को नष्ट करने का आह्वान करता है-

हो यह समाज चिथड़े-चिथड़े।
शोषण पर जिसकी नींव पड़ी ।।

▶ निराला ने 'कुकुरमुत्ता' नामक कविता में प्रतीकात्मक शैली में पूँजीपतियों के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है

प्रगतिवादी कवि पूँजीवादी-शोषण और अन्याय के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल बजाकर वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहता है। निराला ने 'कुकुरमुत्ता' नामक कविता में प्रतीकात्मक शैली में पूँजीपतियों के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त किया है-

अबे सुन बे गुलाब भूल मत जो पाई खुशबू रंगो आब।
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट डाल पर इतराता है कैपेटलिस्ट।।

शोषितों के प्रति सहानुभूतिः प्रगतिशील कवि वस्तुतः समाज से अभिन्न थे। वे जनता का हिस्सा थे। इस कारण समाज की ठोस वास्तविकताओं-दुःख, शोषण, अन्याय,भेदभाव के विरुद्ध बेहतर भविष्य की आकांक्षा के साथ संघर्ष उनकी कविता में स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुए हैं। वे दुनिया को संपन्न और विपन्न, शोषक और शोषित, भूस्वामी और भूमिहीन श्रमिक, पूँजीपति और मजदूर के दो स्पष्ट वर्गों में विभाजित देख रहे थे। उनकी सहानुभूति स्पष्ट रूप से विपन्न, शोषित और वंचित वर्ग से थी। केशव प्रसाद मिश्र जाड़ा और निर्धन, हीरा डोम की एक अछूत की शिकायत, निराला की 'तोडती पत्थर' और रामधारी सिंह दिनकर की कुछ कविताएँ इसके उदाहरण हैं-

▶ बेहतर भविष्य की आकांक्षा

आरती लिये तू किसे ढूंढता है मूर्ख
मंदिरों, राजप्रासादों में, तहखानों में
देवता कहीं सड़कों पर गिट्टी तोड़ रहे, देवता मिलेंगे खेतों में खलिहानों में।'

- दिनकर

हाट धर्मशाला, अदालतें।
विद्यालय वेश्यालय सारे
होटल, दफ्तर, बूचड़खाने।
मंदिर, मस्जिद, हाट, सिनेमा
श्रमजीवी की उस हड्डी से टिके हुए हैं।
जिस हड्डी को सभ्य आदमी के समाज ने टेढा करके छोड दिया है।

- केदारनाथ अग्रवाल

क्रांति की भावनाः प्रगतिशील कवि अपनी कविताओं में शोषक समाज को समाप्त करने केलिए सामंतों एवं पूँजीपतियों के विरोध में क्रांति का आह्वान करते हैं। पंत की 'द्रुत झरो' कविता मशहूर है। निराला ने अपनी एक कविता में शोषकों की हवेलियों को मजदूरों की पाठशाला बनाने का स्वप्न देखा था;

▶ शोषकों के विरुद्ध क्रांति का आह्वान

आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार तेली,
खोलेंगे अंधेरे का ताला

धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्थाः प्रगतिवादी काव्य में धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्था

▶ प्रगतिवादी काव्य में धर्म आर ईश्वर के प्रति अनास्था प्रकट की गयी है

प्रकट की गयी है। उसकी मान्यता है कि धर्म और ईश्वर का आवरण शोषकों ने शोषण की प्रक्रिया को जारी रखने के लिए डाल रखा है। प्रगतिवादी कवि की दृष्टि में यह पाखण्ड है। ईश्वर, भाग्य, धर्म, पूर्व जन्म के कर्म, स्वर्ग-नरक की धारणा आदि शोषण के हथियार हैं, जिनके विरुद्ध प्रगतिवादी काव्य में बोला गया है। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ने ईश्वर की धारणा पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए उसे 'आत्म- प्रवंचना' की संज्ञा दी है-

ऊपर बहुत दूर रहता है शायद आत्म प्रवंचक एक।
जिसके प्राणों में विस्मृत है, उर में सुख श्री का अतिरेक ।।
जिसका ले-ले नाम युगों से मांस लुटाते तुम रोये।
किन्तु न चेता जो निशि वासर और क्षुधातुर तुम सोये ।।

▶ बालकृष्ण शर्मा नवीन की कविता है 'जूठे पत्ते'

प्रगतिशील कवि भाग्य और परलोक जैसी कोई भी बात नहीं मानते थे। वे समाज की भाग्यवादी व्याख्या को अस्वीकार करते हैं - बालकृष्ण शर्मा नवीन की 'जूठे पत्ते' शीर्षक कविता में उस ओर इशारा है-

अरे चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को।
उस दिन सोचा, क्या न लगा दूँ आज आग इस दुनिया भर को
यह भी सोचा क्यों न टेटुआ घोंटा जाए स्वयं जगपति का?
जिसने अपने ही स्वर को रूप दिया इस घृणित विकृति का।

▶ अमानवीय शोषण के खिलाफ व्यंग्य प्रतिरोध

व्यंग्यः सामाजिक, आर्थिक वैषम्य का चित्रण करने से रचना में व्यंग्य आ जाना स्वाभाविक है। व्यंग्य ऊपर से हास्य लगता है किंतु वह अंत में वेदना उत्पन्न करता है। इसीलिए सामाजिक व्यंग्य अमानवीय शोषण सत्ता का सदैव लक्ष्य करता है। प्रगतिशील कवियों में व्यंग्य सर्वत्र दिखाई देता है किंतु नागार्जुन इस क्षेत्र में सबसे आगे हैं। एक देहाती मास्टर दुखरन, उसके शिष्यों और मदरसे की यह तस्वीर नागार्जुन ने इस प्रकार खींची है-

घुन खाए शहतीरों पर की बारह खडी विधाता बांचे
फटी भीत है, छत है चूती, आले पर बिस्तुइया नाचे
लगा-लगा बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम से सांचे।

▶ प्रगतिवादी साहित्यकार ने नारी को पुरुष के समकक्ष माना है

नारी विषयक दृष्टिकोणः प्रगतिवादी कवियों ने नारी के सन्दर्भ में नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। प्रगतिवादी साहित्यकार ने नारी को पुरुष के समकक्ष माना है, उन्होंने नारी को उतने ही अधिकार देने की बात कही है, जितने कि पुरुषों को दिए गए हैं। प्रगतिवादी साहित्य महलों में रहने वाली राजकुमारियों की बात नहीं करता। यह तो स्वस्थ कृषक बालिकाओं और मज़दूरिनों का चित्रण करता है। यह साहित्य नारियों को मुक्त करने की बात भी कहता है

'मुक्त करो नारी को मानव चिर बंदिनी नारी को।'

उपयोगितावादः प्रगतिवादी आलोचक उसी कृति को साहित्य रचना मानते हैं, जिसका मानव जीवन में अधिक-से-अधिक महत्व हो। उनके अनुसार सच्चा साहित्य वह है, जो जन-जीवन को प्रगति के पथ पर अग्रसर करे।

▶ नवीन प्रतीकों का प्रयोग

प्रतीक योजनाः नवीन दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति के लिए प्रगतिवादी कवियों ने नवीन प्रतीकों को अपनाया है। इन कवियों के काव्य में प्रलय, ताण्डव, मशाल आदि प्रतीक का

प्रयोग प्रयुक्त हुए हैं। कहीं पर इन कवियों ने प्राचीन प्रतीकों को लिया है, तो कहीं पर नवीन प्रतीकों को ग्रहण किया है। निराला के काव्य 'कुकुरमुत्ता' में गुलाब के पुष्प को पूँजीपति वर्ग का प्रतीक माना गया है।

प्रकृति चित्रण: मानव समाज की भांति प्रकृति के क्षेत्र में भी प्रगतिवादी कवि सहज स्थितियों में सौंदर्य देखता है। उसका सौंदर्य बोध चयनवादी नहीं। प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति और ग्राम जीवन के अनुपम चित्र खींचे हैं जिनमें रूप-रस-गंध-वर्ण के सारे बिम्ब उभरे हैं। नागार्जुन का 'बादल को घिरते देखा है, केदारनाथ अग्रवाल का 'बसंती हवा' और त्रिलोचन का 'धूप में जग-रूप सुंदर इस कोटी की उत्कृष्ट कविताएँ हैं।

▶ प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति और ग्राम जीवन के अनुपम चित्र खींचे हैं

भाषा-शैली: प्रगतिवादी साहित्य का सम्बन्ध जन-जीवन से होने के कारण इस धारा का साहित्यकार सरल एवं स्वाभाविक भाषा-शैली को अपनाने के पक्षपाती है। स्पष्ट, यथार्थ तथा वास्तविक विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए वह सरल, सुबोध एवं व्यावहारिक भाषा का प्रयोग करता है। वह परम्परागत उपमानों एवं प्रतीकों को त्यागकर नवीन विचारधाराओं को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त नूतन उपमानों तथा प्रतीकों की योजना करता है, जब उसे शक्ति की तुलना करनी पड़ती है, तो वह भीम, हनुमान आदि को न अपनाकर टैंक और बुलडोजर की ओर आकर्षित होता है। प्रगतिवादी कविता में नए उपमानों को सामान्य जन जीवन और लोक गीतों से ग्रहण किए गए हैं।

▶ सरल, सुबोध एवं व्यावहारिक भाषा का प्रयोग

प्रगतिवादी कवि परम्परागत और प्राचीन छन्दों का बहिष्कार करके नवीन मुक्तक छन्दों की ओर बढ़ता है।

"खुल गए छंद के बंध, प्रास के रजत पाश"

- पंत

इस प्रकार प्रगतिवादी साहित्य वैयक्तिकता की नहीं, बल्कि सामूहिक चेतना की बात करता है। यह छायावादी कल्पना से बाहर आकर जन-जीवन को स्पष्ट करने वाला साहित्य है। काव्य को अलंकृत करने की चिंता नहीं। अतः वह कहता है-

तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार।
वाणी! मेरी चाहिए क्या तुम्हें अलंकार।

मशाल, जोंक, रक्त, तांडव, विप्लव, प्रलय आदि नए प्रतीक प्रगतिवादी साहित्य की अपनी सृष्टि हैं। प्रगतिवादी कवि का कला संबंधी दृष्टिकोण भाषा, छंद, अलंकार, प्रतीकों तथा वर्णित भावों से स्पष्ट हो जाता है। वह कला को स्वांत-सुखाय या कला कला के लिए नहीं, बल्कि जीवन के लिए, बहुजन के लिए अपनाता है। वह कविता को जन-जीवन का प्रतिनिधि मानता है।

▶ प्रगतिवादी साहित्य वैयक्तिकता की नहीं, बल्कि सामूहिक चेतना की है

3.3.5 प्रगतिवाद काव्य और उसके प्रमुख कवि

प्रगतिवाद ने अपनी सीमाओं के बावजूद हिन्दी-काव्यधारा के विकास में एक बहुत ही महत्वपूर्ण अध्याय जोड़ा। उसने काव्य को (साहित्य मात्र को) व्यक्तिवादी यथार्थ के बंद कमरे से निकाल कर जनजीवन के विस्तृत समतल पर प्रवाहित कर दिया। जीवन और साहित्य के मूल्य, सौंदर्यबोध और लक्ष्य को समाज के यथार्थ से जोड़ा, भाषा को कुहरे से निकाल कर धरातल पर प्रतिष्ठित किया। निराला, सुमित्रानंदन पंत, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास

▶ त्रिलोचन प्रगतिवाद के प्रमुख कवि है

शर्मा, नागार्जुन, शिवमंगलसिंह 'सुमन', त्रिलोचन और मुक्तिबोध इस धारा के प्रमुख कवि हैं।

केदारनाथ अग्रवाल (1911-2000): प्रगतिवादी कवियों में केदारनाथ अग्रवाल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बाँदा जिले के एक गाँव में जन्मे केदारनाथ जी व्यवसाय से वकील हैं किन्तु कवि रूप में उन्होंने उच्चवर्ग के जीवन की असंगतियों और सामान्य जन के निर्धनता के अभिशाप में पिसते जीवन के यथार्थ दृश्य खींचे हैं। युग की गाथा में उन्होंने विषम आर्थिक व्यवस्था का यथार्थ चित्र खींचा है। नीति के बादल व मांझी न बजाओ बंशी, वसन्ती हवा आदि कविताओं में प्रकृति के स्वाभाविक दृश्य मिलते हैं।

▶ प्रगतिवादी कवियों में केदारनाथ अग्रवाल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय

रामविलास शर्मा (1912-2000): रामविलास शर्मा का जन्म झांसी में हुआ था। उन्होंने अंग्रेजी के पी-एच.डी. प्राप्त किये थे। दीर्घकाल तक ये बलवंत राजपूत कॉलेज, आगरा में अंग्रेज़ी के प्राध्यापक रहे और फिर के.एम. मुंशी हिन्दी विद्यापीठ, आगरा के निदेशक रहे। ये प्रगतिशील लेखकसंघ के मंत्री तथा 'हंस' के संपादक भी रहे। ये प्रख्यात प्रगतिवादी समीक्षक भी हैं। इनकी कविताओं का सौंदर्य है- सादगी, वेग और सहजता। शर्मा जी की कविताओं में प्रचार और नारों की कमी नहीं, स्थूल व्यंग्यों की भी अधिकता है। किंतु जहाँ वे अतिवादिताओं से मुक्त हो कर केवल कवि के रूप में रहे, वहाँ वे सामाजिक संवेदना को आत्मसात् करके उसे सरल, वेगवती भाषा में अभिव्यक्त करते रहे।

▶ रामविलास शर्मा प्रख्यात प्रगतिवादी समीक्षक है

नागार्जुन (1910-1998): नागार्जुन का वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र है। इनका जन्म तरौनी (दरभंगा) में हुआ था। स्कूली शिक्षा के स्थान पर इन्होंने हिन्दी-संस्कृत का स्वाध्याय किया। 'यात्री' नाम से ये मैथिली में भी कविताएँ लिखते थे। कवि के साथ-साथ ये हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार भी हैं। इनकी कविताएँ मुख्यतः तीन तरह की हैं, कुछ कविताएँ गंभीर, संवेदनात्मक और कलात्मक हैं, जिनमें कवि ने मानव-मन की रागात्मक और सौंदर्यमयी छवियों को अंकित किया है और साथ-ही-साथ मनुष्य की मानवीय संभावनाओं के प्रति आस्था व्यक्त की है। दूसरी कोटि की कविताएँ वे हैं, जो सामाजिक कुरूपता, राजनीतिक अव्यवस्था और धार्मिक अंधविश्वास पर बढ़िया, चुभता हुआ व्यंग्य करती हैं। शिक्षा पद्धति पर एक व्यंग्य द्रष्टव्य है:

▶ 'यात्री' नाम से ये मैथिली में कविताएँ लिखते थे

घुन खाये शहतीरों पर की बारहखड़ी विधाता बांचे,
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिस्तुइया नाचे,
बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट मिनट में पाँच तमाचे,
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के साँचे।

(युगधारा)

नागार्जुन की तीसरी कोटि की रचनाएँ उद्‌बोधनात्मक हैं, किंतु काव्य-तत्व की दृष्टि से ये रचनाएँ हलकी हैं। 'बादल को घिरते देखा है', 'पाषाणी', 'चंदना', 'रवींद्र के प्रति', 'सिंदूर तिलकित भाल', 'तुम्हारी दंतुरित मुसकान' आदि कविताएँ इनकी उत्तम प्रगतिवादी कविताएँ हैं।

▶ 'बादल को घिरते देखा है', नागार्जुन की प्रगतिवादी कविता है

रांगेय राघव (1923-1962): रांगेय राघव बहुमुखी प्रतिभा के प्रगतिवादी कवि थे। इन्होंने कविता के साथ-साथ कहानियाँ, उपन्यास और आलोचनाएँ भी लिखी हैं, कविता के क्षेत्र में ये प्रबंध और मुक्तक दोनों ही क्षेत्रों में सक्रिय रहे। 'अजेय खंडहर', 'मेधावी' और 'पांचाली' उनकी प्रबंधात्मक कृतियाँ हैं, जिनमें विषय की नवीन योजना के साथ-साथ नूतन प्रबंधविन्यास

▶ 'अजेय खंडहर', 'मेधावी' और 'पांचाली' रांगेय राघव की प्रबंधात्मक कृतियाँ हैं

भी लक्षित होता है। रांगेय राघव की कविताओं में समाजवादी चिंतन और उससे अनुप्राणित सामाजिक संवेदना की शक्ति है। 'राह के दीपक' की कविताओं में युगीन यथार्थ के संदर्भ में प्रकृति-छवि का भी अंकन किया गया है।

शिवमंगलसिंह सुमन (1915-2002): शिवमंगल सिंह सुमन का भी नाम प्रगतिवादी कवियों में लिया जाता है। इन्होंने गीतों की भी रचना की है और लम्बी कविताएँ भी लिखी हैं। 'हिलोल कर आँखें नहीं भरी' इनके काव्य संग्रह हैं। ऐशिया जाग उठा है, जल रहे हैं दीप, जलती है जवानी, प्रलय, सृजन आदि कविताओं में आपने पूँजीपतियों की शोषक नीति की निन्दा की है और दीन-दुखियों के प्रति सवेदना व्यक्त की है। उनकी प्रगतिवादी कविता का एक नमूना इस प्रकार है-

▶ 'हिलोल कर आँखें नहीं भरी' शिवमंगलसिंह सुमन के काव्य संग्रह हैं

हाय यहाँ मानव में समता का व्यवहार नहीं है।
हाहाकारों की दुनिया में सपनों का संसार नहीं है।
इसीलिए अपने सपनों को मुट्ठी में मलता जाता है।

शिवमंगलसिंह सुमन की कविताएँ भी दो तरह की हैं। एक तो वे, जो गीत हैं या छोटी-छोटी सुगठित कविताएँ हैं। दूसरी वे, जो अधिक लंबी और उपदेशात्मक हैं। उनकी छोटी-छोटी कविताएँ और गीत जहाँ कला और प्रभाव की दृष्टि से उत्तम दीखती हैं, वहीं बड़ी कविताएँ अधिक विस्तार की है और इससे अनुभूति का उनका प्रभाव बिखर जाता है, क्योंकि वे ध्वन्यात्मक और चित्रात्मक न हो कर इतिवृत्तात्मक होती हैं।

▶ त्रिलोचन का वास्तविक नाम वासुदेव सिंह है

त्रिलोचन (1917-2007): त्रिलोचन का वास्तविक नाम वासुदेव सिंह है। इनका अधिकांश जीवन संघर्ष और अभाव में बीता है। इसीलिए इनकी कविताओं में चिन्ता और वेदना के स्वर अनायास ही आ गये हैं। धरती, गुलाब और बुलबुल आदि उनके काव्य संग्रह हैं।

मुक्तिबोध (1917-1964): अपने विश्वासों और संवेदनाओं से जनवादी हैं। प्रगतिशील कविता के अंतर्गत इनकी अनेक रचनाएँ आसानी से रखी जा सकती हैं, किंतु कुल मिला कर इन्हें नई कविता के अंतर्गत रखना ही समीचीन होगा। सर्वहारा वर्ग के प्रति गहरी संवेदना रखनेवाले कवि हैं मुक्तिबोध वे मूलतः मार्क्सवादी कवि तथा आलोचक है। प्रकाश से अंधेरे की और जानेवाला विलक्षण व्यक्तित्व है उनका। इन कवियों के अतिरिक्त अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, शमशेर बहादुरसिंह, धर्मवीर भारती आदि में भी प्रगतिवाद किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है, किंतु मूलतः इन्हें प्रगतिवाद के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता।

▶ मुक्तिबोध जनवादी कवि हैं

इन कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज की वास्तविकताओं को उभारा और प्रगतिशील विचारों को प्रसारित किया। उनकी कविताएँ न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए भी प्रेरक हैं।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी काव्य जगत में प्रगतिवाद ने विशेष प्रकार का अस्तित्व कायम किया। छायावादी काव्यधारा से हटकर प्रगतिवादी कवियों ने समाज तथा राजनीति को प्रमुखता देकर राष्ट्रप्रेम की जागृति की। मध्यमवर्ग तथा निम्नमध्य वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट हुई। यथार्थवादी दृष्टिकोण इन कविताओं में मिलती है। प्रगतिवादी कवियों ने आम आदमी को भीखमंगा बना देने वाली सामन्ती पूँजीवादी व्यवस्था पर प्रहार किया। सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, रामधारी सिंह दिनकर, तथा नये कवियों में नरेन्द्र शर्मा, सुमन, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन जैसे कवियों ने अपना विशेष योगदान दिया। प्रगतिवादी कवियों ने शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति प्रकट की। समाज में दीन दुःखीयों का शोषण किया जा रहा था। पूँजीवादी व्यवस्था ने आम आदमी की जीना मुश्किल कर दिया था ऐसी व्यवस्था के प्रति कवियों ने अपनी आवाज़ बुलन्द की। लेकिन कुछ कवियों ने मार्क्सवाद से ज्यादा प्रभावित होने के कारण रूढ़ी परम्परा का विरोध किया। प्रगतिवादी काव्य में अतिसामाजिकता तथा बौद्धिकता के अतिरेक के कारण इसका अवसान हुआ।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. प्रगतिवाद और मार्क्सवाद के संबंध पर टिप्पणी लिखिए।
2. प्रगतिवाद की विशेषताओं पर टिप्पणी लिखिए।
3. प्रगतिवाद की रचनाओं में निहित प्रतिरोध पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
4. प्रगतिवाद के प्रमुख कवियों पर आलेख तैयार कीजिए।
5. प्रगतिवाद की परिस्थितियों पर टिप्पणी तैयार कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
5. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
6. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय
7. हिन्दी काव्य का इतिहास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
8. हिन्दी कविता का प्रवृत्तिगत इतिहास - पूरणचंद टण्डन, विनीता कुमारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
5. हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास - डॉ. हरिशचन्द्र अग्रहरि

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

SGOU

इकाई : 4

प्रयोगवाद-अर्थ एवं परिभाषा, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद में अंतर, प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, नई कविता-आरंभ तथा अर्थ, प्रयोगवाद और नई कविता, नई कविता की काल सीमा, नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, शिल्प पक्ष, अकविता या साठोत्तरी कवि

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- प्रयोगवाद के बारे में समझता है
- तारसप्तक के बारे में समझता है
- प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ समझता है
- नई कविता के बारे में समझता है
- नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ समझता है

Background / पृष्ठभूमि

आधुनिक हिन्दी कविता का विकास कई महत्वपूर्ण धाराओं के माध्यम से हुआ है। 1943 में प्रकाशित तारसप्तक ने प्रयोगवादी कविता की नींव रखी, जिसमें युवा कवियों ने अपनी विशिष्टता दर्शाई। 1951 में आया दूसरा सप्तक (नई कविता) ने बोलचाल की भाषा और आम आदमी के संघर्षों को प्राथमिकता दी।

1960 के दशक में अकविता ने नई कविता के विचारों को चुनौती दी और राजनीतिक-सामाजिक मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया। इन आंदोलनों ने कविता में नई संवेदनाएँ, शिल्प में प्रयोगशीलता और समाज की विसंगतियों पर व्यंग्य को स्थान दिया।

आधुनिक हिन्दी कविता ने समय की समस्याओं और मानव अनुभवों को उजागर किया, जिससे यह एक जीवंत और विविधतापूर्ण परंपरा बन गई। तारसप्तक से लेकर नई कविता और अकविता तक, प्रत्येक काव्य आंदोलन ने हिन्दी साहित्य में नए आयाम जोड़े हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

प्रयोगवाद, नई कविता, अज्ञेय, तारसप्तक

Discussion / चर्चा

आधुनिक हिन्दी कविता में आधुनिकता की अवधारणा 'तारसप्तक' (1943) के माध्यम से स्पष्ट रूप से प्रस्तुत हुई, जिसने काव्य में एक महत्वपूर्ण बदलाव किया और आगे के संकलनों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

3.4.1 प्रयोगवाद अर्थ एवं परिभाषा

आधुनिक हिन्दी कविता में आधुनिकता की अवधारणा का पहला बडा विस्फोट 'तारसप्तक'(1943) के माध्यम से सामने आया था जिसे देवीशंकर अवस्थी ने आधुनिक पथ का पहला संकलन कहा है। इसके बाद दूसरा सप्तक 1951 में और तीसरा सप्तक 1959 में निकला और चौथा सप्तक 1979 में निकाला। इसके संपादक अज्ञेय थे, जिन्होंने छायावाद के बाद प्रयोगशील को विभिन्न धाराओं के कवियों की रचनाओं सप्तक परपंरा में एकत्र कर प्रकाशित किया।

▶ तारसप्तक 1943 का प्रकाशन

तारसप्तक से अज्ञेय ने हिन्दी कविता को नया संस्कार देने का आरंभ किया। आधुनिक हिन्दी काव्य - साहित्य विशेष रूप से अग्रेज़ी से प्रभावित रहा है। हिन्दी प्रयोगवाद के कवि अज्ञेय अग्रेज़ कवि समीक्षक थॉमस ईस्टन्स इलियट से अत्यधिक प्रभावित थे। इलियट की कविताओं और समीक्षात्मक कृतियों का अनुवाद भी अज्ञेय ने किया। इलियट अपनी विख्यात कविता 'द वेस्ट लैण्ड' ('बंजर भूमि') में काव्य-शिल्पगत नये प्रयोग किये। वास्तव में अज्ञेय ने इलियट से प्रभावित होकर ही तारसप्तक का प्रकाशन किया।

▶ अज्ञेय अग्रेज़ कवि इलियट से प्रभावित थे

तारसप्तक का प्रकाशन, सात युवा कवियों के सहयोग के आधार पर एक काव्य संकलन के रूप में प्रकाशित किया गया है। जिसका नाम संगीतों के सुरों के आधार पर तारसप्तक रखा गया था। तारसप्तक में शामिल कवि थे, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द जैन, भारतभूषण अग्रवाल 'प्रभाकर माचवे', गिरिजाकुमार माथुर', रामविलास शर्मा और स्वयं अज्ञेय'। इन संग्रहित कवियों का कोई वैचारिक या काव्य मूलक दृष्टि साम्य नहीं है। वे साहित्य जगत के किसी स्कूल या दल के समर्थक नहीं है - 'उनको मतैक्य नहीं है, सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग-अलग है, जीवन के विषय में, समाज और शैली के, छन्द और तुक के कवि दायित्वों के प्रत्येक विषय में उनका मनभेद है।'

▶ इन कवियों का कोई वैचारिक या काव्य मूलक दृष्टि साम्य नहीं है

काव्य मर्मज्ञों के एक वर्ग ने इस काव्यधारा का घोर विरोध किया, जिसमें नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे छायावाद के पुरस्कर्ता आचार्य थे- 'इस प्रकार की रचनाएँ पश्चिम से हिन्दी में आ रही है। .... ऐसी कविताएँ हिन्दी में किसी नैसर्गिक प्रतिक्रिया का परिणाम नहीं कही जा सकती। लेकिन एक छोटे वर्ग ने इस प्रकार की कविता का स्वागत भी किया।'

तारसप्तक की कतिपय कविताओं में प्रयोगशीलता प्रकट थी। अतः इस काव्यान्दोलन का नाम पड़ा 'प्रयोगवाद'। अजेय ने भी प्रयोग की वाद सूचना का निषेध करते हुए 'दूसरा सप्तक' (1951) में कहा- 'प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं है। प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है। कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं हैं। अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना। ,,,,,, अभी राही हैं- राही नहीं; राहों के अन्वेषी।'

▶ दूसरा सप्तक 1951 का प्रकाशन

रामविलास शर्मा ने आगे चलकर यहाँ तक कहा था कि राही नहीं, राहों के अन्वेषी की नारा अज्ञेय ने सभी को सत्य से भटकने केलिए दिया था ताकि वे अभिजात्यवादी पूँजीवादी मूल्यों की रक्षा कर सके इतना ही नहीं व्यक्ति स्वातंत्र्य के नाम पर अज्ञेय ने व्यक्तिवाद का पोषण किया और कला कला केलिए सिद्धांत के बीज बोए। विचारधारा से मुक्ति, सत्य के अन्वेषण की ललक व्यक्तिवाद, बौद्धिकता का मुखौटा ; प्रयोग का आग्रह, नए बिंब और जटिल प्रतीक थे। सभी विशेषताएँ कविता के साहित्यक मूल्यों तक सीमित हैं। रामविलास शर्मा के उपर्युक्त

मत की तरफ इशारा करते हुए ही अज्ञेय ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में लिखा है-' कम से कम एक ने तो न केवल एलान करके कविता छोड दी बल्कि क्रमशः कविता के ऐसे आलोचक हो गए कि उसे साहित्य क्षेत्र से ही खदेड देने पर तुल गए। दूसरे सप्तक का प्रकाशन इसका चिह्न है कि कविता में आधुनिक प्रवृत्तियों के उदय का सामान्यतः स्वागत किया गया और इन प्रवृत्तियों को व्यक्तिवाद या कलावाद में सीमित करके नहीं देखा गया।

▶ कला कला केलिए

प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद में अंतर	
प्रगतिवाद में व्यक्ति की समस्याओं की प्रधानता अधिक होती है।	प्रयोगवाद में व्यक्ति की समस्याओं का चित्रण नहीं होता।
प्रगतिशील आंदोलन का संबंध स्वाधीनता संघर्ष से था।	प्रयोगवाद में केवल साहित्यिक आंदोलन ही रहा है।
प्रगतिवाद में सरल भाषा शैली को अपनाया गया।	अनपढ़ शब्दावली, उपमाओं तथा रूपकों का प्रयोग किया गया है।
प्रगतिवादी जनसाधारण से सहानुभूति रखते हैं।	प्रयोगवाद में वैयक्तिकता की प्रधानता है।
प्रगतिवाद में जिंदगी का यथार्थ चित्रण है।	प्रयोगवाद में बौद्धिकता की प्रधानता अधिक है
प्रगतिवाद में विषयवस्तु की प्रधानता अधिक है।	प्रयोगवाद में कलापक्ष का अधिक महत्व

3.4.2 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

3.4.2.1 प्रयोगवादी कविता में मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ देखी गई हैं:

▶ उपमान तथा बिम्बों का चयन

1. **समसामयिक जीवन का यथार्थ चित्रणः** प्रयोगवादी कविता की भाव-वस्तु समसामयिक वस्तुओं और व्यापारों से उपजी है। समसामयिकता के प्रति इनका इतना अधिक मोह है कि इन कवियों ने उपमान तथा बिम्बों का चयन भी समसामयिक युग के विभिन्न उपकरणों से किया है।

▶ वैयक्तिक कुरूपता का प्रकाशन

2. **घोर अहंनिष्ठ वैयक्तिकताः**- प्रयोगवादी कवि समाज-चित्रण की अपेक्षा वैयक्तिक कुरूपता का प्रकाशन करके समाज के मध्यमवर्गीय मानव की दुर्बलता को प्रकट करता है। मन की नग्न एवं अश्लील वृत्तियों का चित्रण भी होते है। अपनी असामाजिक एवं अहंवादी प्रकृति के अनुरूप मानव जगत के लघु और क्षुद्र प्राणियों को काव्य में स्थान देता है। भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता की प्रतिष्ठा करता है। कवि के मन की स्थिति, अनुभूति, विचारधारा तथा मान्यता इस कविता में विशेष रूप से अभिव्यक्त हुई है। व्यक्ति का केवल सामाजिक अस्तित्व ही नहीं है, बल्कि उसकी अपनी भावनाओं का भी एक संसार है। इसलिए इस धारा की कविताओं में अधिक ईमानदारी के साथ कवि के निजी दर्द अभिव्यक्त हुए हैं।

3. **विद्रोह का स्वरः** प्रयोगवादी कविता में विद्रोह का स्वर एक ओर समाज और परम्परा से अलग होने के रूप में मिलता है और दूसरी ओर आत्मशक्ति के उद्घोष के रूप में। विद्रोह का दूसरा रूप चुनौती और ध्वंस की बलवती अभिव्यक्ति के रूप में है। वैज्ञानिक युग ने उसे पुराने चरित्रों के प्रति शंकित किया है, इसलिए वह उनके प्रति कोई श्रद्धा नहीं रखता।

▶ प्रयोगवाद कविता में विद्रोह का स्वर मुखरित है

इस कविता के कवियों को ईश्वर, नियति, मंदिर, दैवी-व्यक्तियों एवं स्थानों में विश्वास नहीं है। वह स्वर्ग और नरक का अस्तित्व नहीं मानता। भारत भूषण अग्रवाल की निम्न पंक्तियाँ देखिए-

रात मैंने एक स्वपन देखा मैंने देखा
कि मेनका अस्पताल में नर्स हो गई
और विश्वामित्र ट्यूशन कर रहें हैं
उर्वशी ने डांस स्कूल खोल लिया है
गणेश ट्रॉफ़ी खा रहे हैं

▶ लघु मानव की प्रतिष्ठा किया गया है

4. **लघु मानव की प्रतिष्ठाः** प्रयोगवादी काव्य में लघु मानव की ऐसी धारणा को स्थापित किया गया है जो इतिहास की गति को अप्रत्याशित मोड़ दे सकने की क्षमता रखता है; धर्मवीर भारती की ये पंक्तियाँ देखिए:-

मैं रथ का टूटा पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
इतिहासों की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड़ जाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुए पहियों का
आश्रय ले।

इस कविता में मानव के लघु व्यक्तित्व की उस शक्ति पर गौरव तथा अभिमान अभिव्यक्त हुआ है जो व्यक्ति की महत्व की चरम सीमा का स्पर्श करती है।

▶ आस्था और अनास्था की द्वंद्वमयी अभिव्यक्ति

5. **अनास्थावादी तथा संशयात्मक स्वरः** डॉ. शंभूनाथ चतुर्वेदी ने अनास्थामूलक प्रयोगवादी काव्य के दो पक्ष स्वीकार किए हैं। एक आस्था और अनास्था की द्वंद्वमयी अभिव्यक्ति, जो वस्तुतः निराशा और संशयात्मक दृष्टिकोण का संकेत करती है। दूसरी, नितांत हताशापूर्ण मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति। कुंठा एक अनास्थामूलक वृत्ति है। प्रयोगवादी कवि अपनी कुंठाओं और वासनाओं को छिपाने में विश्वास नहीं रखता, इसलिए वह इनका नग्न रूप प्रस्तुत कर देता है।

▶ काव्य में अनास्थामूलक तत्वों को अनावश्यक माना

6. **आस्था तथा भविष्य के प्रति विश्वासः** जहाँ प्रयोगवाद के कुछ कवियों ने अनास्थावादी और संशयात्मकता को स्वर दिए वहीं कुछ अन्य कवियों ने जैसे नरेश मेहता तथा रघुवीर सहाय ने काव्य में अनास्थामूलक तत्वों को अनावश्यक माना। गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में आस्था के बल पर नव-निर्माण का स्वर मुखरित हुआ है। हरिनारायण व्यास तथा नरेश मेहता में भी आस्थामूलक वृत्तियों के प्रति आग्रह है।

▶ प्रयोगवादी कवि वेदना से पालायन नहीं करते

7. **वेदना की अनुभूति का प्रयोगः** प्रयोगवादी कवि वेदना से पालायन न करके, उसके सान्निध्य की अभिलाषा करते हैं। इसे उसने दो रूपों में स्वीकार किया है-एक तो वेदना को सहन करने की लालसा और दूसरे वेदना या पीड़ा की अतल गहराइयों में बैठकर नए उपलब्धि के रूप में।

8. **समष्टि कल्याण की भावनाः** इस कविता में व्यष्टि के सुख की अपेक्षा समष्टि के कल्याण को अधिक महत्व दिया गया है।

9. **वासना की नग्न अभिव्यक्तिः** छायावादी कल्पना में प्रकृति के अनेक रूप-रंगों का चित्रण था, प्रगतिवाद की कविता में सामाजिक यथार्थ की प्रवृति रही तो प्रयोगवादी कविता में फ्रायड के मनोविश्लेषण के प्रभाव से नग्न यथार्थवाद का चित्रण हुआ। इस में साधनात्मक प्रेम का अभाव है मांसल प्रेम एवं दमित वासना की अभिव्यक्ति ही अधिक हुई है। प्रयोगवादी कवि अपनी ईमानदारी अपनी यौनवर्जनाओं के चित्रण में प्रदर्शित करता है। जब वह ऐसा करता है तो सेक्स को समस्त मानव प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं का केंद्र-विंदु मानता है। कुंवरनारायण ने यौनाशय को अत्यधिक महत्व दिया-

▶ फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित

आमाशय
यौनाशय
गर्भाशय
जिसकी जिंदगी का यही
आशय
यहीं इतना भोग्य
कितना सुखी है वह
भाग्य उसका ईर्ष्या के योग्य

10. **क्षण की अनुभुतिः** प्रयोगवादी कविता में क्षण विशेष की अनुभूति को यथारूप प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति है।

11. **व्यंग्यः** व्यंग्य का गहरा पुट इस कविता की विशेषता रही है। आधुनिक जीवन की विसंगतियों पर, लोगों के बदलते हुए रूपों पर, सभ्यता के नाम पर फैले शोषण पर, राजनीति की कुटिल चालों पर, धर्म के व्यापारों पर, यह कविता व्यंग्य करती है। आज के जीवन का खोखलापन, स्वार्थपरता का भाव कवि के मन को खीझ से भर देता है। इसलिए वह इन पर गहरा व्यंग्य करता है। अज्ञेय की कविता सांप में शहरी सभ्यता पर करारा व्यंग्य है।

▶ व्यंग्य का गहरा पुट इस कविता की विशेषता रही है

साँप तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हे
नहीं आया।
एक बात पूछूं–(उतर दोगे?)
फिर कैसे सीखा डसना–
विष कहाँ पाया?

12. **काव्य शिल्प में नए प्रयोगः** शिल्प के क्षेत्र में प्रयोगवादी कवियों के काव्य में अपूर्व क्रांति दिखाई पड़ती है। मुक्तिबोध के काव्य में वक्रता से सरलता की ओर जाने की प्रवृत्ति संकेतों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। गिरिजाकुमार माथुर ने काव्य में विषय की अपेक्षा टेकनिक पर अधिक ध्यान दिया। भाषा, ध्वनि तथा छंद-विधान में उन्होंने नवीन प्रयोग

▶ भाषा, ध्वनि तथा छंद-विधान में शमशेरबहादुर सिंह ने नवीन प्रयोग किए

किए। प्रभाकर माचवे ने नई अलंकार- योजना, बिम्ब-विधान और उपमानों के नए प्रयोग किए। अज्ञेय ने साधारणीकरण की दृष्टि से भाषा संबंधी नवीनता को अधिक महत्व दी। शमशेरबहादुर सिंह ने फ्रांसीसी प्रतीकवादी कवियों के प्रभाव मे पर्याप्त प्रयोग किए, जिनके कारण उन्हें कवियों का कवि कहा जाने लगा। स्पष्ट है कि प्रयोगवादी कवियों ने भाषा, लय, शब्द, बिम्ब तथा छंद-विधान संबंधी नए प्रयोगों पर बहुत ध्यान दिया।

▶ बिम्ब नितान्त सजीव हैं

13. **बिम्ब योजनाः** प्रयोगवादी कविता में बिम्ब-योजना बड़ी सफलता के साथ की गई है। इस कविता से पूर्व की किसी कविता में इतने अधिक स्पष्ट बिम्ब उतरें हैं, इसमें संदेह है। बिम्ब योजना के विषय में प्रयोगवादियों की बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इनके बिम्ब नितान्त सजीव हैं।

▶ नए उपमानों का प्रयोग

14. **नए उपमान** : अप्रस्तुत-योजना में प्रयोगवादी कवियों ने पुराने उपमानों का पूर्णतः परित्याग कर दिया है। इनके उपमान एकदम नए हैं। इनके अप्रस्तुत-विधान की प्रमुख विशेषता यह है कि वे जीवन से गृहीत हैं, उनकी संयोजना के लिए कल्पना के पंखों पर नहीं उड़े है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक क्षेत्र में नवीनता का आग्रह प्रयोगवाद की उपलब्धि है। इसी के चलते कहीं-कहीं यह कविता दुरूह भी हो गई है।

3.4.3 नई कविता

▶ नई कविता नाम अज्ञेय का दिया हुआ है

1951 में प्रकाशित दूसरा सप्तक के प्रकाशन के साथ हिन्दी साहित्य में नई कविता का आरंभ माना जाता है। जिसके कवि थे भवानीप्रसाद मिश्र, शकुंत माथूर, शमशेर बहादूर सिंह, नरेश मेहता, हरिनारायण व्यास, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती। ये सभी आगे चलकर हिन्दी कविता के बडे स्तंभ बने। नई कविता नाम अज्ञेय का दिया हुआ है। इस नाम का सर्वप्रथम प्रयोग उन्होंने रेडियोवार्ता में किया था जो 'नये पत्ते' के जनवरी-फरवरी 1953 अंक में 'नई कविता' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। इस नाम के पीछे न्यू पोइट्री काव्यान्दोलन का भी प्रभाव है। न्यू पोइट्री के ही अनुकरण पर इलाहाबाद से जगदीश आदि परिमल ग्रुप के रचन्ाकारों ने 'नई कविता' नामक पत्रिका का भी प्रकाशन किया। नई कविता को प्रतिष्ठा दिलाने में क ख ग, नये पत्ते, निकष, प्रतिमान, कल्पना आदि पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण कार्य किया। नई कविता प्रयोगवादी कविता का नया संस्कार है। इसमें जो कुछ भी नयापन है, वह उस समय की तात्कालिक उपज न होकर साहित्य की क्रमशः विकासमान प्रक्रिया का परिणाम है।

तारसप्तक से 'दूसरा सप्तक' के कवियों में समानता यह नज़र आती है कि दूसरी सप्तक में बोलचाल की भाषा और समाज के संघर्ष पर बल देते हुए भी, प्रयोग, विविधता और विशिष्टता 'की प्रवृत्तियाँ बनी हुई है।' तीसरा सप्तक (1959) तक आते-आते अज्ञेय ज्यादा चयनवादी हो गए थे, क्योंकि उन्हें अपने प्रतिमानों पर ही खरा उतरना था। यह सप्तक प्रकाश में आने के साथ ही चर्चित हो गया।

तीसरा सप्तक के कवियों ने ज्यादा साहस दिखाया। तीसरा सप्तक के कवि थे- प्रतापनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुँवरनारायाण, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपने वक्तव्य में कहा, साधारण बोल-चाल की भाषा में जो कविताएँ नहीं लिखी जा सकती, उन्हें मैं अभी

नहीं लिख रहा हूँ। मैं विषय वस्तु को रूप-विधान से अधिक महत्व देता हूँ।" केदारनाथ सिंह ने कहा, "कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिबं विधान पर। प्राचीन काव्य में जो स्थान चरित्र का था, आज की कविता में वह स्थान बिंब अथवा इमेज का है।" कुंवर नारायण ने कहा, "सत्य का अर्थ अपने से बड़े सत्य में विकसित हो सकने की सक्रियता है।" इस तरह तार सप्तक की परंपरा में जो नई कविता विकसित हो रही थी वह प्रयोग, बिंब और रूप विधान को महत्वपूर्ण मानते हुए भी 'विषय वस्तु और व्यापक सत्य की उपेक्षा नहीं कर रही थी। इसलिए ऐसे सभी कवियों ने प्रयोगशीलता की आधुनिक प्रवृत्तियों पर प्रयोगवाद, फ्रायडवाद, अस्तितवाद या व्यक्तिवाद का आरोप लगाने का विरोध किया। तारसप्तक की महत्वपूर्ण श्रृंगला 'तीसरा सप्तक' पर आकर स्कती है। हांलाकि अज्ञेय ने हल्के-फुल्के ढंग से चौथा सप्तक (1979) भी निकाला था।

▶ चौथा सप्तक का प्रकाशन 1979 में

3.4.4 नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

नई कविता हिन्दी साहित्य का एक महत्वपूर्ण काव्य आंदोलन है जो 1950-60 के दशक में उभरा। यह आंदोलन पारंपरिक काव्य रूपों और शैलियों से अलग होकर एक नई दृष्टि और शैली को प्रस्तुत करता है। नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं:

संत्रास, कुण्ठा, घुटन, दर्द जैसे भावों की अभिव्यक्तिः नई कविता के कवियों का युग उनके मोह भंग का युग है। स्वतन्त्रता से प्राप्त होने वाली आशाओं का स्वप्न इस समय तक टूट चुका था। इस काल के मानव ने बढ़ती हुई बेरोज़गारी, अत्याचार आदि में जीवन जीने की विवशता को स्वीकार कर लिया था, इसलिए उसे स्वयं को समुचित रूप से स्थिर न देखने से उसके मन में संत्रास, कुण्ठा, घुटन एवं दर्द जैसे भाव उत्पन्न हो गए थे। ये सभी भाव व्यक्ति के कष्टों को आधारित था। नई कविता के कवियों ने अपनी कविताओं में इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति की है।

▶ मोह भंग का युग

'जिन्दगी है भार हुई दुनिया है बहुत बोर दम्भी, पाखण्डी, बहुरूपिए हैं बड़े लोग।'

लघु मानव की प्रतिष्ठाः नई कविता की एक मुख्य विशेषता लघु मानव की प्रतिष्ठा है। लघु मानव से अभिप्राय किसी ऐसे व्यक्ति से नहीं है, जो किसी पाप, घृणा अथवा असुन्दरता की प्रतिमूर्ति है और न ही किसी ऐसे व्यक्ति से जो दर्शन, सम्प्रदाय, राजनीतिक दल या वर्ग विशेष के साथ जुड़ा हुआ है। इस प्रकार नई कविता का कवि उपेक्षित व्यक्ति के जीवन सन्दर्भों एवं संवेदनाओं को ग्रहण करके समाज और जीवन की परिधि को व्यापक बनाता है।

▶ नई कविता की एक मुख्य विशेषता लघु मानव की प्रतिष्ठा है

अस्तित्ववादी चिन्तनः नई कविता में अस्तित्ववादी चिन्तन कवि की संवेदना का अंग बनकर आया है। भारतीय चिन्तन में मोक्ष पर गम्भीर विचार किया गया है।

▶ अस्तित्ववादी चिन्तन कवि की संवेदना का अंग बना

इसी काल में द्वितीय विश्व युद्ध की भीषणता ने मानव को मृत्यु को वरण करने की स्थिति में ला दिया था। इसलिए नई कविता के कवियों के वक्तव्यों द्वारा भी इस चिन्तन की अनुगूँज सहज ही सुनाई पड़ने लगती है।

विरोध के स्वरः इस युग के कवियों ने युगीन स्थितियों के प्रति विरोध अथवा विद्रोह का स्वर मुखरित किया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् व्यक्ति जिन स्वप्नों को पूरा होता हुआ देखना चाहता था। वे उसे जर्जरित होते हुए दिखाई पड़े। यह देखकर वह व्यथित हो गया और उसके जीवन में निराशा भर गई। इन कवियों ने समाज में फैली हुई विसंगतियों, अनाचार आदि के

▶ विद्रोह भाव को अपनी कविता द्वारा साकार किया है

प्रति विद्रोह भाव को अपनी कविता द्वारा साकार किया है; जैसे-

'सदियों से कुचला गया मेरा घायल फन अब फुफकार कर तन गया है।'

▶ अकेलेपन और अजनबीपन के भाव

अकेलेपन और अजनबीपन की अभिव्यक्तिः समाज और संसार की दुःख-दर्द भरी भाग-दौड़ और भीड़ से व्यक्ति का मन - इतना भर चुका है कि वह अकेला रहना चाहता है। नई कविता में व्यक्ति के इस - अकेलेपन और अजनबीपन के भाव अच्छी प्रकार से व्यक्त किए गए हैं। श्रीकान्त वर्मा ने इस प्रकार के भाव बार-बार व्यक्त किए हैं। वे कहते हैं

'सच मानो मैं अकेला हूँ
इतना अकेला जितना प्रत्येक नक्षत्र दूसरे से।'

व्यंग्य की प्रवृत्तिः नई कविता में व्यंग्य की मात्रा अत्यधिक मिलती है। नई कविता का कवि मनोरंजन की कविता नहीं लिखता, बल्कि युग और परिवेश के प्रति सजग होकर, भूख, बेरोज़गारी, दुःख-दर्द, शोषण, कष्ट आदि परिस्थितियों को अपनी व्यंग्य भरी वाणी में प्रस्तुत करता है

▶ कविता में व्यंग्य की मात्रा अत्यधिक मिलती है

'लोहे का स्वाद लोहार से मत पूछो उस घोड़े से पूछो जिसके मुँह में लगाम है।' धूमिल नई कविता के मूल्यांकन का एक प्रतिमान बिम्ब विधान है। प्रभाकर माचवे, केदारनाथ सिंह आदि ने बिम्बों की सृष्टि की है और उसके महत्व को रेखांकित किया है। नई कविता में बिम्बों के अनेक प्रयोग देख सकते है।

भाषिक संरचनाः नई कविता की संवेदना को व्यक्त करने के लिए परम्परा से भिन्न भाषा की रचना की गई है। नई कविता की भाषा कृत्रिमता और अलंकार आग्रह से मुक्त है। भवानी प्रसाद मिश्र ने नई कविता की भाषा के स्वरूप को व्यक्त करते हुए लिखा है- 'जिस तरह मैं बोलता हूँ उस तरह तू लिख'। नई कविता की भाषा का यह बहुत बड़ा गुण है। नई कविता में बोलचाल के तत्सम, तद्भव, देशज, उर्दू, अंग्रेज़ी आदि शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। इस प्रकार नई कविता के कवियों ने जो यथार्थ देखा, भोगा है, उसे उसी प्रकार से कह दिया। इन कवियों की कविता में किसी की प्रशंसा के गीत या स्वयं के सुख का निवेदन नहीं है, वह तो परिस्थिति के पत्थरों को तोड़कर निकली है। नई कविता आधुनिक युग का जीवन्त प्रतिबिम्ब है।

▶ नई कविता की भाषा कृत्रिमता और अलंकार आग्रह से मुक्त है

इन प्रवृत्तियों ने नई कविता को हिन्दी कविता में एक विशिष्ट पहचान एवं दिशा प्रदान की।

3.4.5 अकविता या साठोत्तरी कविता

सन् साठ के, नई कविता के बाद साहित्य में और एक नई कविता ने प्रवेश किया, जिसे अकविता कहा जाता है। नई कविता के बाद अकविता का आरम्भ इसलिए हुआ कि जिस व्यक्ति की नई कविता को तलाश थी, वह उसमें सार्थक नहीं हो पाई, इसलिए नई कविता में जो नामुमकिन था, वह अकविता में मुमकिन होने लगा। नई कविता के विरुद्ध अकविता के दौर के कवियों का मिजाज कुछ बदला हुआ था, अर्थात अकवितावादियों ने नये कवियों के खिलाफ आवाज उठाई, जिसके कारण नई कविता पीछे छूट गई। अकविता विशिष्ट राजनैतिक और समसामायिक परिवेश से प्रेरित हुई थी।

▶ नई कविता के बाद साहित्य में नयाधारा आया, जिसे अकविता कहा जाता है

'अकविता को नामकरण को लेकर काफी बहस हुई और उसे नानपोएट्री (Non Poetry) और एण्टी पौएट्री (Anty Poetry) अंग्रेजी शब्दो का हिन्दी पर्याय भी ठहराया गया जो इसकी सही शिनाख्त के रास्ते में बाधक ही हुआ। असल में यह नाम हिन्दी में एक खास ढंग की कविता के लिए इस्तेमाल किया गया और उसे एण्टी या नॉन पोएट्री कहना उतना ही गलत है, जितना की यह आरोपित करना कि अकविता में कविता नहीं है। 'अकविता, एक नये तेवर, एक अलग प्रकार के अन्दाज की पहचान देती है। तात्पर्य यह कि अकविता अपना नया तेवर अपनाती है। अकविता में युगीन परिवेश और मानसिकता को उभारकर लाया गया है। अकविता में सौन्दर्य बोध का अभाव जाहिर हैं। जगदीश चतुर्वेदी के अनुसार- 'अकविता अस्वीकृति और निषेध की अनिवार्यता को सहज मानकर स्वीकार करती है। उसे किसी प्रकार के व्यामेह या अतीतोन्मुख वैभव अथवा रागात्मकता से तीव्र घृणा है।'

▶ अकविता में युगीन परिवेश और मानसिकता को उभारकर लाया गया है

अकविता में कवियों ने विशिष्ट मानसिकता का चित्रण किया है। अकविता के कवियों की मानसिकता के लिए उसका नगर बोध अधिक जिम्मेदार है। तात्पर्य यह कि रचनाकार ने नगर बोध को यही तरह से पहचाना है अधिकांश कवि नगर तथा महानगरों में रहते है। अकेलापन, रिश्ते की टूटन तथा आपसी अजनबीपन की भावना अकविता के कवियों की मानसिकता को उद्घाटाति करती है।

▶ अकविता के कवियों की मानसिकता के लिए उसका नगर बोध अधिक जिम्मेदार है

अकविता के कवियों ने देह के व्याकरण को उसी तरह से पढ़ा है क्यों कि यह रचनाकार मध्यवर्ग से संम्बद्ध है और मध्यवर्ग के व्यक्ति को यौनगत वर्जनाओं को अपनाना था, जिसके कारण कवियों की सेक्स अनुभूति झिझक से दूर है। इन रचनाकारों ने सेक्स को अधिक महत्व दिया, कामुक विह्वलता, व्यंग्य और विडम्बना में बदल गई। अकविता में सेक्स घिनौनी रूप में उभरकार आने लगा। अकविता के रचनाकारों ने स्त्री की योनि, जांघ, नाभि, संभोग, स्तन जैसे शब्दों का प्रयोग अपनी कविताओं में किया।

▶ इन रचनाकारों ने सेक्स को अधिक महत्व दिया

अकविता का दौर भी अधिक समय तक रह न पाया। अकविता के कवियों की मानसिकता तथा यौन भावनाओं के कारण अकविता पीछे जाने लगी। सही नाटकीयता के अभाव, बडबोलेपन, कृमहीनता, आरोपित नंगेपन से अकविता ने अपना अस्तित्व खो दिया तात्पर्य यह कि अकविता अपने नंगेपन के कारण साहित्य में अधिक समय तक न टिक पाई। अकविता का धीमी-धीी ह्रास होने लगा, और फिर एक नया दौर आया। सन् 1960 के बाद साहित्य में काफी परिवर्तन हुआ, नई कविता का आन्दोलन शुरु हुआ, जिसे साठोत्तरी या समकालीन कविता कहते है। सन् 1960 के बाद समकालीन कविता का दौर शुरु होता है। इन कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से युगीन परिवेश को साकार किया जिससे कविता के तेवर कुछ और हो गया है और साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त किया।

▶ सन् 1960 के बाद समकालीन कविता का दौर शुरु होता है

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

अज्ञेय प्रयोगवादी कविता के मूल प्रवर्तक रहे। प्रयोगवादी कवियों की उक्तियों में प्रयोग और अन्वेषण पर इतना जोर दिया गया था कि इस तरह के नाम की परिकल्पना जरा भी हैरत पैदा नहीं करती। प्रयोगवादी कविता किसी मनोरंजन का साधन मात्र नही थी बल्कि मूलतः यथार्थवादी और व्यक्ति पर केन्द्रित थी। प्रयोगवादी रचयिता निम्न मध्य वर्ग के बौद्धिक व्यक्ति थे। व्यक्ति की कुण्ठा, अनास्था, पराजय बोध इस में निहित है। प्रयोगवादी कविता केवल एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि समूचे मध्यवर्ग संसार की कविता थी। दमित काम वासना और जटिल संवेदनाओं का अंकन इसमें विशेष रूप से उभरा है। छायावाद की भावुकता और कल्पना की जगह इस में बौद्धिक स्ज्ञान अधिक है। छायावाद की स्मानियत को ठुकराकर प्रयोगवादी कवियों ने यथार्थवादी तथा मूर्त सौन्दर्य दृष्टि को अपनाया था। प्रयोगवादी कविता मूलतः व्यक्ति चेतना की कविता थी। वैयक्तिकता, बौद्धिकता, यथार्थवाद आदि पूर्ववर्ती काव्य की अपेक्षा प्रयोगवाद में अधिक मात्रा में है। प्रयोगवादी काव्यधारा चौथे दशक में बलवती थी किन्तु बाद में जैसे- जैसे उसमें नयापन आने लगा वह क्षीण होती गयी, कविता के क्षेत्र में नया मोड निर्माण हुआ, प्रयोगवादी कविता के तेवर एकदम बदलकर नई कविता, में परिवर्तित होने लगे। दूसरा सप्तक का प्रकाशन 1951 में अज्ञेय ने ही किया। सन् 1950 के बाद हिन्दी कविता की जिस नवीन धारा को प्रमुखता प्राप्त हुई उसे बहुत सारे नये कवियों ने नई कविता का नाम दिया। सामान्यतः सन् 1950 ई. के बाद की कविता को प्रयोगवाद से अलग करने के लिए नई कविता का नाम दिया जाने लगा। नई कविता, नाम के जैसे छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद से बिल्कुल नई थी। भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेशकुमार मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती मुक्तिबोध, सक्सेना जैसे अनेक कवि नई कविता से जुड़े हुए है। नई कविता के बाद साहित्य में और एक नई कविता ने प्रवेश किया, जिसे अकविता कहा जाता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. तारसप्तक पर टिप्पणी लिखिए।
2. प्रयोगवाद पर आलेख तैयार कीजिए
3. नई कविता एवं प्रयोगवाद के अंतर को स्पष्ट कीजिए।
4. प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि पर टिप्पणी लिखिए।
5. साठोत्तरी कविता के बारे में आलेख तैयार कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
5. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा

6. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय
7. हिन्दी काव्य का इतिहास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
8. हिन्दी कविता का प्रवृत्तिगत इतिहास - पूरणचंद टण्डन, विनीता कुमारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी का गद्य साहित्य - रामचन्द्र तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

BLOCK-04

आधुनिक काल- गद्य साहित्य

Block Content

Unit 1: हिन्दी कहानी-उद्भव और विकास, हिन्दी कहानी का विकास-प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रसाद युग, उत्तर प्रेमचंद युग, नई कहानी, अकहानी, साठोत्तरी कहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी, सहज कहानी, सक्रिय कहानी, हिन्दी के प्रमुख कहानीकार - प्रेमचंद, प्रसाद, अज्ञेय, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती

Unit 2: हिन्दी उपन्यास- उद्भव और विकास, हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार, प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास, प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास, हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार-यशपाल, जैनेद्र कुमार, भीष्म साहनी, फणीश्वरनाथ रेणु

Unit 3: हिन्दी नाटक का विकास एवं प्रमुख नाटककार, प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक, द्विवेदी युगीन नाटक, प्रसादयुगीन नाटक, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक- नुक्कड़ नाटक, हिन्दी के प्रमुख नाटककार-भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, जगदीशचंद्र माथुर, रामकुमार वर्मा

Unit 4: हिन्दी निबंध का विकास एवं प्रमुख निबंधकार, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग, शुक्लोत्तरयुग, हिन्दी निबंधों के प्रकार - विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, आत्मपरक, हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास, समकालीन हिन्दी आलोचना

इकाई : 1

हिन्दी कहानी-उद्भव और विकास, हिन्दी कहानी का विकास-प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रसाद युग, उत्तर प्रेमचंद युग, नई कहानी, अकहानी, साठोत्तरी कहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी, सहज कहानी, सक्रिय कहानी, हिन्दी के प्रमुख कहानीकार - प्रेमचंद, प्रसाद, अज्ञेय, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी कहानी से परिचय प्राप्त करता है
- हिन्दी के प्रमुख कहानिकारों के बारे में समझता है
- हिन्दी कहानी आन्दोलन के बारे में जानकारी मिलती है
- नई कहानी के बारे में जानकारी प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

कहानी में जीवन के किसी एक अंग या संवेदना की अभिव्यक्ति होती है। कहानी की मूल आत्मा 'एक संवेदना या एक प्रभाव' है। कहानी का प्रमुख उद्देश्य भी कम-से-कम शब्दों में उस प्रभाव को अभिव्यक्त करना है। ब्लेट्ज हेमिंग्टन ने कहानी की परिभाषा देते हुए लिखा है- "The aim of a short story is to produce a single effect with the greatest economy of words." हिन्दी के प्रसिद्ध कवि एवं कथाकार 'अज्ञेय' के अनुसार- "कहानी एक सूक्ष्मदर्शी यन्त्र है जिसके नीचे मानवीय अस्तित्व के दृश्य खुलते हैं।"

हिन्दी कहानी की विकास यात्रा का प्रारम्भ 1900 ई. के आसपास मानना समीचीन है, क्योंकि इससे पूर्व हिन्दी में कहानी जैसी किसी विधा का सूत्रपात नहीं हुआ था। हिन्दी की प्रथम कहानी कौन-सी है-यह एक विवादास्पद प्रश्न है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'इंदुमती' को ही हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना है जिसका प्रकाशन सन् 1900 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका में हुआ था, किन्तु शिवदान सिंह चौहान के अनुसार यह कहानी शेक्सपीयर के 'टेम्पेस्ट' का अनुवाद है, अतः मौलिक रचना नहीं कही जा सकती। सरस्वती पत्रिका में ही सन् 1903 में रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' प्रकाशित हुई तथा सन् 1907 में बंग महिला की 'दुलाईवाली' कहानी छपी। इधर नवीन अनुसंधानों के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि सन् 1901 में 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का प्रकाशन 'छत्तीसगढ़ मित्र' नामक पत्रिका में हुआ था, जिसके लेखक माधवराव सप्रे थे, अतः यहीं हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी कही जा सकती है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास, कहानी आन्दोलन, प्रेमचंद, जैनेन्द्र

Discussion / चर्चा

4.4.1 हिन्दी कहानी की विकास यात्रा

साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा कहानी है। कहानी का जन्म मानव के साथ ही हुआ है। मनुष्य के जीवन की हर घटना अपने आप में एक कहानी है। अपने सुख-दुःख को औरों को सुनाने और दूसरों के सुख-दुःख को स्वयं सुनने की प्रक्रिया से कहानी का जन्म हुआ। भारतीय साहित्य में वेदों, उपनिषदों और बौद्ध, जातक कथाओं में अनेक कहानियाँ हैं। कहानी ने मनुष्य को मनुष्य बनाया और सभ्यता के पथ पर उनको अग्रसर किया। मनुष्य के बदलाव के साथ कहानी भी बदली। इसलिए कहानी मनुष्य की पहचान बन गयी। कहानी शब्द की उत्पत्ति 'कथ्य' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'कहना'। लेकिन 'कहानी' का मतलब सिर्फ कहना नहीं। 'कहानी' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है। इस शब्द की परिभाषा देना कठिन है, क्योंकि इसका रूप दिन-ब-दिन बदलता जा रहा है। प्रेमचंद के मत में कहानी में जीवन के किसी एक अंग या मनोभाव को प्रदर्शित करना लेखक का उद्देश्य है। उसमें मानव जीवन का संपूर्ण रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। इसका समर्थन करते हुए प्रेमचंद जी ने कहा है कि कहानी "एक रमणीय उद्यान नहीं है जिसमें भांति-भांति के फूल सजे हुए हैं, बल्कि एक ऐसा गमला है जिसमें एक ही पौधा का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।" कहानी पूर्णतः कल्पना की उपज नहीं होती है। कहानी की मूल प्रेरणा जीवन से मिलती है। लेकिन कहानी संपूर्ण जीवन की व्याख्या न करके जीवन के एक खण्ड का चित्रण प्रस्तुत करती है और कुछ क्षणों के लिए पाठक को संवेदित कर देती है। कहानी एक ऐसी सामाजिक वस्तु है, जो अपनी आकर्षक एवं सशक्त शिल्प विधि के कारण पाठक को बाँध रखने की क्षमता रखती है। आधुनिक काल में हिन्दी गद्य के विकास के साथ ही हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास हुआ है। विवेचन की सुविधा केलिए हिन्दी कहानी के इतिहास को पाँच युगों में विभाजित किया जा सकता है।

▶ साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा

1. प्रेमचंद पूर्व युग (सन् 1900-1916)
2. प्रेमचंद युग (सन् 1916-1936)
3. प्रेमचंदोत्तर युग (सन् 1936 से)

4.1.1.1 प्रेमचंद पूर्व युग

हिन्दी कहानी का उद्भव उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। इस युग को 'प्रेमचंद पूर्व युग' कहा जा सकता है। इस काल में बहुत कम कहानियाँ लिखी गयीं। पहली कहानी किसे मानें, यह विवादास्पद प्रश्न है। कुछ विद्वान 'एक टोकरी भर मिट्टी' को पहली हिन्दी कहानी मानते हैं। माधवराव सप्रे कृत यह कहानी सन् 1901 में 'छत्तीसगढ मित्र' नामक पत्रिका में छपी। हिन्दी कहानी के संदर्भ में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना है। श्रीमती राजेंद्रबाला घोष कृत 'दुलाईवाली', किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'इंदुमती', रामचंद्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' जिन्हें कुछ विद्वानों ने हिन्दी की आरंभिक कहानियाँ मानी है। माधव प्रसाद मिश्र की 'मन की चंचलता', लाला भगवानदीन की 'प्लेग की चुड़ैल', वृंदावनलाल वर्मा की 'राखी बंद भाई' और 'नकली किला', विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक की 'रक्षाबंधन' आदि

आलोच्य युग की लोकप्रिय कहानियाँ हैं। ये सारी कहानियाँ 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। वस्तुतः 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित कहानियों ने हिन्दी कहानी को एक नई दिशा प्रदान की है और हिन्दी कहानी अपने विकास पथ पर अग्रसर हुई। सन् 1909 ई. में काशी से 'इंदु' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसमें जयशंकर प्रसाद की कहानियाँ प्रकाशित होने लगी थी। बाद में इन कहानियों का संग्रह 'छाया' नाम से सन् 1912 में प्रकाशित हुआ। राधिकाचरण प्रसाद की कहानी 'कानों में कंगना' इंदु में 1913 ई. में प्रकाशित हुई। चंद्रधर शर्मा गुलेरी इस काल के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार कहे जा सकते हैं। उन्होंने केवल तीन कहानियाँ लिखीं - 'उसने कहा था', 'सुखमय जीवन' और 'बुद्ध का काँटा।' इनमें से 'उसने कहा था' का प्रकाशन 1915 में सरस्वती में हुआ था। कथ्य एवं शिल्प दोनों की दृष्टियों से यह अपने युग की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी जा सकती है। इस युग की कहानियों का प्रमुख विषय आदर्श, सामाजिकता, प्रेम, आत्मत्याग आदि था। हिन्दी कहानी साहित्य के इस युग में कहानी अपनी बाल्यावस्था में थी। प्रेमचंद के आगमन के पूर्व हिन्दी कहानी का कोई सशक्त रूप नहीं उभर आया था। लेकिन इन कहानियों की कथावस्तु, चरित्र चित्रण, वातावरण आदि में एक प्रकार की शक्ति दिखाई देती है और भावी कहानियों के लिए मार्ग दर्शन भी।

▶ 1909 ई. में काशी से 'इंदु' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ

प्रेमचन्द

युगप्रवर्तक कहानीकार
लगभग 300 कहानियों की रचना की
प्रेमचन्द की संपूर्ण कहानियाँ 'मानसरोवर'द्य नाम से 8 खण्ड़ों में प्रकाशित
नवाबराय के नाम से उर्दू में लिखते थे
उर्दू में लिखा कहानी संग्रह 'सोजे वतन' 1907 ई. में प्रकाशित
'सोजेवतन' कहानी संकलन को अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया
पहली हिन्दी कहानी 'पंच परमेश्वर' सन् 1916 ई प्रकाशित
अन्तिम कहानी 'कफन' 1936 ई. में प्रकाशित
'पंच परमेश्वर', 'आत्माराम', 'प्रेरणा', 'ईदगाह', 'नमक का दरोगा'
अधिकांश कहानियों का विषय ग्रामीण जीवन से लिया गया है

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

इस काल के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार कहे जा सकते हैं।

उन्होंने केवल तीन कहानियाँ लिखीं- उसने कहा था, सुखमय जीवन और बुद्ध का कांटा।

इनमें से 'उसने कहा था' का प्रकाशन सन् 1915 ई. में 'सरस्वती' में हुआ था।

'उसने कहा था' कहानी को हिन्दी कहानी के विकास के प्रथम सोपान की महत्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा सकता है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का 'उसने कहा था' कथ्य एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से यह अपने युग की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी जा सकती है।

कहानी का मूल विषय है- आदर्श प्रेम जो त्याग और बलिदान के लिए प्रेरित करता है।

इस युग के प्रमुख कहानियाँ

राजेंद्रबाला घोष	-	'दुलाईवाली'
किशोरीलाल गोस्वामी	-	'इंदुमती'
रामचंद्र शुक्ल	-	'ग्यारह वर्ष का समय'
माधव प्रसाद मिश्र	-	'मन की चंचलता'
लाला भगवानदीन	-	'प्लेग की चुड़ैल'
वृंदावनलाल वर्मा	-	'राखी बंद भाई', 'नकली किला'
विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक	-	'रक्षाबंधन'

4.1.1.2 प्रेमचंद युग (सन् 1916-1936)

प्रेमचंद हिन्दी के युग प्रवर्तक कहानीकार माने जाते हैं। हिन्दी कहानी जगत में प्रेमचंद का आविर्भाव आधुनिक हिन्दी कहानी के लिए एक वरदान है। प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी कहानियों ने आख्यायिका का रूप त्यागकर आधुनिक हिन्दी कहानी का स्वरूप धारण किया। अनूदित कहानियों के स्थान पर मौलिक कहानी रचनाओं की ओर लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुए। प्रेमचंद ने मानव मन का हर कोना झाँका और वे जीवन की यथार्थ समस्याओं का चित्रण यथार्थ भावभूमि पर करने लगे। यह माना जाता है कि प्रेमचंद हिन्दी कहानी जगत में 'पंच परमेश्वर' के माध्यम से आये। इनकी पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' सन् 1916 में और अंतिम कहानी 'कफन' 1936 में प्रकाशित हुई। इस अवधि को 'प्रेमचंद युग' नाम से माना जाता है। मुंशी प्रेमचंद ने अपने जीवनकाल में लगभग 300 कहानियों की रचना की, जो 'मानसरोवर' के आठ खण्डों में संकलित हैं।

▶ प्रेमचंद की पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न'

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों को रेखांकित किया। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के माध्यम से पूरे युग का नेतृत्व किया। उन्होंने कभी-कभी 'पंच परमेश्वर', 'नमक का दारोगा' जैसे आदर्शवादी रचनाएँ पेश कीं और कभी-कभी 'पूस की रात', 'बढ़ी काकी', 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआँ', 'सफेद खून', 'कफन' आदि कहानियाँ जिसमें सामाजिक विसंगतियों, अमानवीयता, शोषित-पीड़ित उपेक्षित मानव मन की दशा-दिशा का यथार्थपरक रेखांकन किया। प्रेमचंद ने तत्कालीन सामाजिक विचारधारा, रीति-नीति आदि का चित्रण करते हुए आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद से अनुप्राणित लगभग तीन सौ कहानियों लिखीं। इन कहानियों में न केवल तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण है अपितु आदर्शवादी दृष्टिकोण की स्थापना के साथ-साथ हिंदु-मुस्लिम ऐक्य की भावना पर भी बल दिया। प्रेमचंद नारी के प्रति आदर का भाव रखते थे और उन्होंने पति-पत्नी, विधवा-विवाह, बाल विवाह, अंतर्जातीय विवाह आदि से संबंधित उत्कृष्ट कहानियों की सृष्टि की है जिसमें समस्याओं के प्रति सुधार का आग्रह है। प्रेमचंद की कहानियों में 'शतरंज के खिलाड़ी', 'सवा सेर गेहूँ', 'सद्गति', 'सत्याग्रह', 'पूस की रात', 'कफन', 'ईदगाह', 'नशा' 'नमक का दारोगा', 'बड़े भाई साहब' आदि प्रमुख हैं। कहानियों में नई-नई शैलियों का प्रयोग भी प्रेमचंद ने किया।

▶ आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद से अनुप्राणित लगभग तीन सौ कहानियों लिखीं

इस युग के दूसरे महत्वपूर्ण कहानीकार हैं-जयशंकर प्रसाद। उनके पाँच कहानी संग्रह

प्रकाशित हुए हैं, जिनके नाम है 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आंधी' और 'इंद्रजाल।' कुल मिलाकर 69 कहानियाँ इन में संकलित हैं। प्रसादजी की पहली कहानी 'ग्राम' सन् 1911 ई में इंदु में प्रकाशित हुई थी। उन्होंने अधिकतः कल्पना प्रधान कहानियाँ लिखीं। उनकी कहानियों में एक ओर अनुभूति की तीव्रता, काव्यात्मकता, प्रेम-चित्रण, प्रकृति निरूपण एवं कल्पना की प्रचुरता है तो दूसरी ओर भारत के अतीत के प्रति गौरव, ऐतिहासिकता, नारी के प्रति सम्मान, प्रेम, करुणा, त्याग, बलिदान आदि का चित्रण है। इनकी समस्त कहानियाँ भावात्मक हैं। प्रसाद की कहानियाँ सोद्देश्य होती थीं। प्रेमचंद और प्रसाद अपने युग के दो प्रमुख प्रतिनिधि कहानीकार थे। इन दोनों की परंपरा को तत्कालीन अनेक कहानीकारों ने आगे बढ़ाया।

▶ प्रसादजी की पहली कहानी 'ग्राम' सन् 1911 ई में इंदु में प्रकाशित

इस युग के अन्य कहानीकारों में पं. विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, जैनेंद्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, यशपाल आदि उल्लेखनीय हैं। 'ताई', 'रक्षा बंधन', 'पतितपावन', 'विद्रोही' आदि विश्वंभरनाथ शर्मा की प्रमुख कहानियाँ हैं। उन्होंने लगभग 200 कहानियाँ लिखी हैं और उनकी कहानियों में दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, अंधविश्वास आदि सामाजिक समस्याएँ हैं। इस युग के यथार्थवादी कहानीकारों में पांडेय बेचन शर्मा उग्र का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'इंद्रधनुष', 'दोजख की आग', 'पोली इमारत' आदि संग्रहों में उग्रजी ने यथार्थपरक दृष्टिकोण को आधार बनाकर सामाजिक निरर्थकता की ओर संकेत किया गया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने ऐतिहासिक विषयों पर मार्मिक कहानियों की रचना की। इनकी कहानियाँ 'बाहर-भीतर', 'सोया हुआ शहर', 'धरती और आसमान' आदि संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क ने मध्यवर्गीय जीवन से अपनी कहानियों के विषय चुने। अश्क जी के प्रमुख कहानी संग्रह हैं- 'निशानियाँ' और 'दो धारा।' इस युग के प्रेमचंद शैली के प्रमुख कहानीकार हैं-सुदर्शन। इनके प्रमुख कहानी संग्रह 'पुष्पलता', 'परिवर्तन', 'सुदर्शन सुधा', 'सुदर्शन सुमा' आदि हैं। इन सभी कहानियों में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण आदर्शवादी दृष्टिकोण से हुआ है।

▶ इस युग के यथार्थवादी कहानीकारों में पांडेय बेचन शर्मा उग्र का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं

सुभद्राकुमारी चौहान, उषादेवी मित्रा, शिवरानी देवी आदि लेखिकाओं ने अपनी कहानियों द्वारा इस युग को समृद्ध किया। भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कहानियों 'मिठाईवाला', 'रजनी', 'खाली बोतल' में यथार्थ उद्घाटित हुआ है। इसी परंपरा में निराला जी की 'ज्योतिर्मयी', 'चतुरी चमार', 'सुकुल की बीवी' को तथा यशपाल की कहानियाँ 'कर्मफल', 'सन्यासी', 'रोटी का मोल', 'प्रायश्चित' को रखा जा सकता है।

▶ कहानियों द्वारा इस युग को समृद्ध किया

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक

- प्रथम कहानी 'रक्षाबन्धन' सन् 1912 में ही प्रकाशित
- उनकी कहानियाँ 'गल्य मन्दिर', 'चित्रशाला', 'प्रेम प्रतिमा', 'मनिधा' और 'कल्लोल' आदि संग्रहों में संकलित
- कहानियों का विषय सामाजिक समस्या जैसे दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह एवं अन्धविश्वास आदि
- 'ताई', 'रक्षाबन्धन', 'विधवा', 'कर्तव्य बल', 'विद्रोही', 'पतितपावन' उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

▶ कहानियों का विषय सामाजिक समस्या

सुदर्शन

- कहानियों का विषय जीवन की ज्वलन्त समस्याओं का है।
- उनके कहानी संग्रहों के नाम है सुदर्शन सुधा, 'सुदर्शन सुमन' की गद्य विधाएँ 'पुष्पलता', 'सुप्रभात', 'तीर्थयात्रा', 'गल्प मंजरी', 'परिवर्तन', 'पनघट' आदि।

▶ सुदर्शन के कहानी संग्रह

- इन संग्रहों की कुछ प्रसिद्ध एवं चर्चित कहानियों है 'हार की जीत', 'कवि की श्री', 'प्रेम तरु', 'दो मित्र', 'एषेस का सत्यार्थी', 'पत्थरों का सौदागर' और 'कमठ की बेटी' आदि।

जयशंकर प्रसाद

- उनके पांच कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं- छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आंधी और इन्द्रजाल।
- उनकी कुछ कहानियों में ऐतिहासिक देशकाल एवं वातावरण की सफल प्रस्तुति की गई है।
- अतीत गौरव, स्वप्निल भावुकता एवं कल्पना की ऊँची उड़ान उनकी कहानियों की विशेषता मानी जा सकती है।
- प्रेम, करुणा, त्याग, बलिदान इनकी कहानियों के विषय हैं।

▶ प्रेम, करुणा, त्याग, बलिदान प्रसाद का कहानियों के विषय हैं

- उन्होंने उच्चकोटि के नारी चरित्र अपनी कहानियों में प्रस्तुत किए हैं, जो अपने निश्छल प्रेम, बलिदान और त्याग से पाठकों पर अमिट छाप छोड़ते हैं।
- प्रसाद की उल्लेखनीय कहानियाँ है 'पुरस्कार', 'इन्द्रजाल', 'आकाशदीप', 'ममता', 'मधुवा', 'देवरथ', 'बेड़ी', 'प्रतिध्वनि', 'आंधी', 'सालवती' आदि।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

▶ मार्मिक कहानियों की रचना

- ऐतिहासिक विषयों पर मार्मिक कहानियों की रचना की।
- 'अंबपालिका', 'मिधुराज', 'सिंहगढ़ विजय', 'पन्नाधाय', 'रूठी रानी', 'दे खुदा की राह पर' आदि उनकी प्रमुख कंहानियाँ हैं।

रायकृष्णदास

▶ प्रसाद परम्परा के कहानी लेखक

- रायकृष्णदास भी प्रसाद परम्परा के कहानी लेखक हैं।
- उनकी कहानियों में कवित्वपूर्ण वातावरण और नाटकीयता विद्यमान है।
- अन्तःपुर का आरम्भ में इन तत्वों को देखा जा सकता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क

- मध्यमवर्गीय जीवन से अपनी कहानियों के विषय चुने हैं।
- समाज की कुरीतियों, आन्दोलनों एवं कुण्ठाओं को भी उनकी कहानियों में अभिव्यक्ति मिली है।
- व्यक्ति चित्रण के साथ-साथ समष्टि चित्रण भी अश्क जी की कहानियों में दिखाई पड़ता है।

▶ कहानियों के विषय मध्यमवर्गीय जीवन

- उनकी कहानियों में कहीं मार्क्सवादी दृष्टिकोण है तो कहीं व्यक्तिमूलक चेतना एवं मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति है।
- अश्क जी के प्रमुख कहानी संग्रह हैं- 'निशानियाँ' और 'दो धारा'।

भगवती प्रसाद बाजपेयी

▶ तीन सौ कहानियाँ लिखीं

- लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखीं, जिनमें सामाजिक यथार्थ का चित्रण हुआ है।
- अछूत समस्या, विधवा विवाह, वेश्या समस्या, जैसी अनेक समस्याओं को इन कहानियों में उठाया गया है।
- लेखक का शिल्प विधान पुष्ट है तथा यथार्थवादी चरित्रों के प्रति रुझान दिखाई पड़ता है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

▶ सामाजिक यथार्थ का चित्रण

- उनकी कहानियों के अनेक संकलन प्रकाश में आए हैं- 'चिनगारियाँ', 'शैतान मण्डली', 'बलात्कार', 'इन्द्रधनुष', 'चाकलेट', 'दोजख की आग' आदि।
- सामाजिक यथार्थ को नग्न रूप में पेश करने में वे सिद्धहस्त कथाकार माने जा सकते हैं।
- इन कहानियों में सामाजिक शोषण, अनाचार एवं कुरीतियों के प्रति आक्रोश व्यक्त किया गया है।

राधिकारमणप्रसाद सिंह।

▶ 'गांधी टोपी' नामक संग्रह

- 'कानों में कंगना', 'दरिद्रनारायण' और 'पैसे की पुंअती' उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।
- इनका संकलन 'गांधी टोपी' नामक संग्रह में किया गया है।

4.1.1.3 प्रेमचंदोत्तर युग

प्रेमचंद को हिन्दी कथा-साहित्य का मील का पत्थर मानते हुए उनके बाद के युग को प्रेमचंदोत्तर युग कहते हैं। सन् 1936 ई. से सन् 1950 ई तक का समय हिन्दी कहानी साहित्य में प्रेमचंदोत्तर युग के रूप में जाना जाता है। प्रेमचंदोत्तर कहानी किसी एक दिशा की ओर अग्रसर नहीं हुई अपितु विविध दिशाओं में उसका विकास हुआ। इस काल में एक ओर तो प्रगतिवादी विचारधारा से अनुप्राणित कहानीकारों ने प्रगतिवादी कहानियों लिखी तो दूसरी ओर मनोविश्लेषणपरक कहानीकारों ने मनोविज्ञान पर आधारित कहानियाँ लिखीं। प्रगतिवादी कहानीकारों में सर्वप्रमुख है यशपाल, जिन्होंने मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित होकर अनेक कहानियों की रचना की। 'वो दुनिया', 'पिंजड़े की उड़ान', 'फूलो का कुर्ता', 'तर्क का तूफान' एवं 'चक्कर क्लब' उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। रांगेय राघव, नागार्जुन, अमृतराय और मन्मथनाथ गुप्त इसी परंपरा के अन्य कहानीकार हैं। मार्क्सवाद से प्रभावित इनकी कहानियों में रोटी, कपड़ा और मकान के लिए सर्वहारा वर्ग की कशमकश चित्रण की गई है। शोषण पर आधारित अर्थतंत्र की विद्रूपता का उद्घाटन करना इसका प्रमुख लक्ष्य रहा है। रांगेय राघव की प्रमुख कहानियाँ 'गद्य', 'फूल का जीवन', 'गूँगे', 'घिसटता कंबल', 'प्रवासी' आदि हैं। मनोविश्लेषणवादी कहानीकारों में अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी एवं जैनेंद्र के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी कहानियों का मेरुदंड मनोविज्ञान ही है। अज्ञेय ने व्यक्ति के परिवेश और संघर्ष को अपनी कहानियों में उकेरा है। अज्ञेय ने कहानी को बौद्धिक एवं वैचारिक आधार प्रदान किये

▶ प्रगतिवादी कहानीकारों में सर्वप्रमुख है यशपाल

तथा प्रतीकों एवं बिंबों के प्रयोग में वृद्धि की। 'चिड़ियाघर', 'पुरुष का भाग्य', 'कोठरी की बात', 'साँप', 'गैंग्रीन, 'शरणार्थी', 'लेटरबक्स' आदि इनकी प्रमुख कहानियाँ हैं। इनकी कहानी कला का मूल धरातल व्यक्ति चरित्र है।

जैनेंद्र कुमार

- कहानी का मूलाधार जीवन दर्शन और मनोविज्ञान है।
- मानवीय दुर्बलताओं का यथार्थ चित्रण जैनेंद्र की कहानियों में प्रमुखता से हुआ है।
- उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं 'जाह्नवी', 'पत्नी', 'मास्टर साहब', 'परख', 'ध्रुवयात्रा' आदि।
- इनकी कहानियों में मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन, मनोवैज्ञानिक समस्याएँ, बौद्धिक समस्याएँ, स्वच्छंद प्रेम की समस्या तथा रूढ़ियों का व्यंग्यात्मक चित्रण हुआ है।

▶ मानवीय दुर्बलताओं का यथार्थ चित्रण

इलाचंद्र जोशी

- मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रमुख कहानीकार हैं।
- इनकी सर्वप्रथम कहानी 'सजनला' इसका प्रमाण है।
- जोशी जी की प्रमुख कहानियाँ 'रोगी', 'मिस्त्री' 'परित्यक्ता', 'प्रेतात्मा', 'पागल की सफाई', 'शराबी' और 'काकी' आदि हैं।
- इलाचंद्र जोशी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रमुख कहानीकार हैं

▶ सर्वप्रथम कहानी 'सजनला'

भगवतीचरण वर्मा, रामकृष्ण बेनीपुरी, सत्यवती मलिक आदि भी प्रेमचंदोत्तर युग के प्रमुख कहानीकार हैं। इस युग में हास्य-व्यंग्य की कहानियाँ, शिकार कहानियाँ, वैज्ञानिक कहानियाँ तथा पारिवारिक कहानियाँ भी लिखी गई हैं। हरिशंकर परसाई, अमृतलाल नागर और अन्नपूर्णानंद की कहानियों में हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। पं. श्रीराम शर्मा ने शिकार कथाओं का श्री गणेश किया। इस काल में प्रेम, रोमांस एवं यौन समस्याओं को भी कहानीकारों ने अपनी विषयवस्तु बनाया है। कहानी के शिल्प ने भी इस काल में प्रगति की है। युगीन परिवेश को व्यक्त करने में इस काल की कहानी में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

▶ हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है

स्वातंत्र्योत्तर कहानी नई कहानी के विशेषण से जानी जाती है। नई कहानी का नामकरण नई कविता की तरह अपनी पिछली परंपरा से अलगाव के लिए हुआ था। देश को मिली आज़ादी, देश विभाजन, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, स्वतंत्रता का हास्यास्पद बन जाना जैसी स्थितियों से हिन्दी कहानीकार भी अपने को अछूता न रख सका। सन् 1947 ई. में देश को स्वतंत्रता मिली। देश की जनता अपने देश की सरकार की ओर आशा भरी नज़रों से देख रही थी। किंतु आज़ादी के बाद के वातावरण से देश की जनता में असंतोष, क्षोभ, आक्रोश और निराशा का वातावरण छा गया। इस नई पीढ़ी का कहानीकार समाज का ही एक अंग था। उनकी कहानियों में इन बातों की अभिव्यक्ति होने लगी और इन कहानियों को नई कहानी कहने का आरंभ हुआ 'नई कहानी' के लेखकों ने कथानक एवं चित्रण की शास्त्रीय विशेषताओं को छोडकर कहानी की संवेदना और प्रामाणिकता पर बल दिया। नई कहानी की वास्तविक चर्चा 1955 ई. के आसपास प्रारंभ होती है। मोहन राकेश के कहानी संग्रह 'नये

बादल' (1957) और राजेंद्र यादव के कहानी संग्रह 'जहाँ लक्ष्मी कैद हैं' (1957) की भूमिकाओं में कहानी के तेवर के बदलाव को साफ-साफ रेखांकित किया गया। कमलेश्वर, मार्कण्डेय, राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा, धर्मवीर भारती, श्रीकांत वर्मा, रांगेय राघव, अमरकांत, मोहन राकेश, दुष्यंत कुमार आदि नई कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। राजेंद्र यादव की 'अभिमन्यु की आत्महत्या', कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', राजेंद्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद हैं', निर्मल वर्मा की 'परिंदे', अमरकांत की 'दोपहर का भोजन', राजकमल चौधरी की 'बस स्टाप' आदि कहानियों में बदली हुई संवेदना की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। इस नयी संवेदना के साथ शिल्प का नयापन भी जुड गया। नई कहानी में जीवन और समाज की विषम परिस्थितियों एवं समाज के संपूर्ण हर्ष विषाद की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। नई कहानी के पश्चात् हिन्दी कहानी में कई कहानी आंदोलनों का सूत्रपात हुआ।

▶ मोहन राकेश के कहानी संग्रह 'नये बादल'

सत्तरोत्तर हिन्दी कहानी एक परिदृश्य

कहानी में समाज का प्रतिबिंब पड़ता है। समाज में विभिन्न प्रकार के कार्य व्यापार घटित होते हैं। इसलिए कहानी में समाज की युगीन परिस्थितियों का अंकन होता है। कहानी की सबसे बड़ी विशेषता उसकी कालिकता है। कहानी अपने समय की चिंताओं और समस्याओं को ग्रहणकर उनपर गहन-गंभीर विमर्श प्रस्तुत करती है। सत्तरोत्तर हिन्दी कहानी भी इससे भिन्न नहीं है। इस युग की कहानियों में भी अपनी काल की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक, परिस्थितियों का प्रतिबिंब पड़ा है। समकालीन हिन्दी कहानी कथ्य और शिल्प की दृष्टि से अपने पूर्व की कहानी से बिल्कुल अलग है। इसका कारण यह है कि इस युग की कहानी ने कभी आंदोलन का स्वरूप नहीं अपनाया बल्कि जीवन मूल्यों के साथ तालमेल रखते हुए सामाजिक परिवर्तन के प्रत्येक पहलू को तटस्थता से पकड़ने का प्रयास किया है। सत्तरोत्तर हिन्दी कहानी पूर्णतः आंदोलन मुक्त है।

▶ समकालीन हिन्दी कहानी कथ्य और शिल्प की दृष्टि से अपने पूर्व की कहानी से बिल्कुल अलग है

सत्तर के आसपास पूरे विश्व में व्याप्त प्रमुख घटना थी भूमंडलीकरण। भूमंडलीकरण के बाद देश की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक परिस्थितियों में समूल परिवर्तन हुआ। इससे संसार के बदलने का रफ्तार बढ़ गई। भूमंडलीकरण से उत्पन्न उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद, विज्ञापनवाद, आजीविकावाद एवं मीडिया संस्कार द्वारा भारतीय जीवन में भी बदलाव आये। भूमंडलीकरण और मुक्त बाज़ार के नाम पर फैले उपभोक्तावाद ने हमें मानवीयता से अलग कर दिया। इससे रिश्तों में ढीलापन आया। इस सामाजिक समस्याओं के खिनौने यथार्थ को परखते हुए सत्तरोत्तर हिन्दी कहानीकारों ने अनेक कहानियों की रचना की। सत्तरोत्तर कहानियों में चित्रित यथार्थ बहुआयामी है, क्योंकि सबर तक आते-आते पिछले कई वर्षों से व्यवस्था के विरोध उबलता हुआ जनता का आक्रोश लावे की तरह फूट गया है। कारण यह है कि आदमी अभी जिस माहौल में जी रहा है और अपने अधिकारों के लिए लड़ रहा है उतना शायद पहले कभी नहीं हुआ था। सत्तरोत्तर कहानी का अध्ययन करने पर एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि ज़िंदगी के लगभग हर पक्ष पर इस काल में कहानी लिखी गई हैं और लिखी जा रही है। आज की कहानी मनुष्य एवं समाज को बेहतर बनाने के लिए लिखी गई कहानियाँ है। अपने पूर्ववर्ती कहानियों से आज की कहानियों को अलग करनेवाली बात यह है कि आज की कहानी अधिक समाज सापेक्ष है। संवेदनहीन आधुनिक मानव की विसंगतियों पर कहानी लिखने की प्रेरणा कहानीकार को मिलती है। उत्तराधुनिक विसंगतियों जैसे उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद, आजीविकावाद, विज्ञापनवाद, व्यवस्था विरोध, राजनैतिक

विसंगतियों, नारी विमर्श, दलित विमर्श, मूल्यों का विघटन आदि पर आधारित समाज सापेक्ष कहानियाँ इस युग में अधिक लिखी गयीं हैं। आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के इस जमाने में संपन्न वर्ग मुहल्लों को अपने कब्जे में कर लिया है। प्रशासन, अधिकारी, राजनैतिक नेता आदि इन संपन्नों की ऊँगली के इशारे पर नाच रहे हैं और आम आदमी का शोषण हो रहा है। इन सबके विरोध आवाज उठना आज के कहानीकार अपना कर्तव्य समझते हैं। सत्तरोत्तर कहानी वादमुक्त कहानी है। आंदोलन या वाद रचनाकारों को अपने कैद में रखते हैं। आंदोलन मुक्त परिवेश में कहानीकार को अपनी प्रतिभा का पूर्ण उपयोग कर सकते हैं। इसलिए समकालीन परिवेश कहानीकारों के लिए प्रेरणाप्रद हैं।

▶ आज की कहानी अधिक समाज सापेक्ष है

निर्मल वर्मा, मन्नु भंडारी, चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, उदय प्रकाश, अखिलेश, स्वयंप्रकाश, एस. आर. हरनोट, मनीषा कुलश्रेष्ठ, अल्पना मिश्र, अलका सरावगी, संजीव, शर्मिला बोहरा जालान आदि सत्तरोत्तर कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उन्होंने हिन्दी कहानी को नई ऊर्जा प्रदान की है। कहानी समय, समाज, इतिहास तथा जीवन की पुनर्रचना है। इतिहास, फैंटसी, मिथक एवं तथ्य का मिश्रण करके कहानीकारों ने कहानी के शिल्प पक्ष को भी नया मोड़ दिया है। डॉ. विभूति नारायण राय के मत में 'आज की कहानी अपने परिवेश की ही उपज है। आज सांप्रदायिकता, नारी उत्पीड़न, दलितों और हरिजनों पर अत्याचार की समस्या अधिक जटिल हुई है। लूट का कारोबार बढ़ा है, राष्ट्रीयता को खतरा पैदा हो गया है। समकालीन कहानी में इन समस्याओं को नज़र अंदाज़ नहीं किया गया है। यहाँ ऐसी कहानियाँ, जिन्होंने सांप्रदायिकता, आतंकवाद, नारी और दलितों की वास्तविक समस्या तथा शोषण को पहचानता है।'

▶ कहानी को नई ऊर्जा प्रदान की है

4.1.3 हिन्दी कहानी के विभिन्न आन्दोलन

4.1.3.1 नयी कहानी

स्वातन्त्र्योत्तर कहानी को 'नयी कहानी' के नाम से पुकारा गया है। 'नयी कहानी' शब्द का प्रयोग जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, अश्क, यशपाल के बाद की पीढ़ी की कहानी के लिए किया गया है। 'नयी कहानी' नामकरण के जन्म का इतिहास खोजते हैं तो हम पाते हैं कि दुष्यन्तकुमार ने सबसे पहले 'नयी कहानीः परम्परा और शीर्षक' (कल्पना में प्रकाशित) अपने निबन्ध में नयी पीढ़ी की कहानियों में कुछ नयापन और मौलिकता देखकर उन पर अपना विचार किया था।

▶ स्वातन्त्र्योत्तर कहानी को 'नयी कहानी' पुकारते

नयी कहानी के नामकरण की आवश्यकता का प्रश्न सर्वप्रथम डॉ. नामवर सिंह ने अपने लेख 'आज की हिन्दी कहानी' में उठाया और पूरे बल के साथ इस नाम का समर्थन किया। 'नयी कहानी' के विषय में नामवर सिंह के विचार समय-समय पर विकसित होते रहे हैं। वे कभी सांकेतिकता को या कभी सूक्ष्म वातावरण को या संगीतात्मकता को या कथा विन्यास को या वास्तव में विविध आयामों को या नवीन दृष्टि को 'नयी कहानी' का आधार मानकर उसका मूल्यांकन करते रहे हैं। उन्होंने एक विभिन्न बात यह भी कही कि कहानी की चर्चा में 'अनायास ही 'नयी कहानी' शब्द चल पड़ा है और सुविधानुसार इसका प्रयोग कहानीकारों ने भी किया है और आलोचकों ने भी।' किन्तु उनका अनायास वाला कथन इसलिए सत्य प्रतीत नहीं होता कि नामकरण की आवश्यकता सबसे पहले उन्होंने ही महसूस की और उन्होंने ही यह नाम दिया।

▶ दुष्यन्तकुमार के लेख का नाम 'नयी कहानीः परम्परा और शीर्षक'

4.1.3.2 सचेतन कहानी

नयी कहानी आन्दोलन के उत्तरार्द्ध में यह आन्दोलन बहुत थोड़े से कथाकारों तक सीमित रह गया तथा वह धीरे-धीरे सामाजिक समस्याओं से कटने लगा। सन् 1960 तक नयी कहानी रूढ़ होने की स्थिति में आ गयी थी और उसमें एक खास किस्म का मैनरिज्म पैदा हो गया था। नयी कहानी की रूढ़ि और उसके मैनरिज़्म को तोड़ने की दृष्टि से हिन्दी कहानी में जो आन्दोलन उभरे उनमें सचेतन कहानी-आन्दोलन एक महत्वपूर्ण घटना है। इसका प्रारम्भ नवम्बर, 1964 में प्रकाशित 'आधार' के 'सचेतन कहानी विशेषांक' के प्रकाशन से माना जाता है जिसका सम्पादन डॉ. महीप सिंह ने किया था। उन्हीं के शब्दों में, सचेतन आन्दोलन साहित्यिक संचेतना की सामूहिक प्रतिक्रिया है। इसके सूत्र बम्बई में 'रचना' द्वारा आयोजित गोष्ठियों में हैं। गत अप्रेल में 'मनीषा' द्वारा दिल्ली में आयोजित गोष्ठी में यह चर्चा और मुखर होकर सामने आयी ।

▶ 1964 में प्रकाशित 'आधार' के 'सचेतन कहानी विशेषांक' के संपादक डॉ.महीप सिंह

सचेतन कहानी का प्रारम्भ महीप सिंह द्वारा किया गया था। 1964 में 'आधार' नामक पत्रिका का सचेतन कहानी विशेषांक प्रकाशित हुआ था जिसे इस आन्दोलन का प्रारम्भ माना जा सकता है। 'आधार' के इस विशेषांक में महीप सिंह, राजीव सक्सेना, उपेन्द्रनाथ अश्क, श्याम परमार आदि ने सचेतन कहानी सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट किया तथा इस अंक में आनन्दप्रकाश जैन, कमल जोशी, कुलभूषण, धर्मेन्द्र गुप्ता, मधुकर सिंह, मनहर चौहान, महीप सिंह, योगेश गुप्त, वेदराही, सुखवीर, हिमांशु जोशी आदि 20 कहानीकारों की कहानियाँ छपीं। बाद में महीप सिंह ने 'संचेतना' नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन प्रारम्भ किया, जो सचेतन कहानी आन्दोलन का प्रमुख मंच बनी और सुदर्शन नारंग के संपादन में 'श्रेष्ठ सचेतन कहानी शीर्षक से एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ ।

▶ सचेतन कहानी का प्रारम्भ महीप सिंह द्वारा किया गया था

4.1.3.3 अकहानी

1960 तक आते-आते कुछ ऐसी परिस्थितियाँ बनीं कि स्वतंत्रता का जिस उल्लास और उत्साह के साथ स्वागत किया था, वह ठंडा होने लगा था और हम एक मोह-भंग की स्थिति में आ पहुँचे थे। इस निराशा भरे वातावरण में हिन्दी कहानी को जिस नयी धारा का सूत्रपात हुआ उसे कहानीकारों तथा समीक्षकों ने अकहानी के नाम से अभिहित किया। साठोत्तरी कहानी को डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने पहले तो 'समकालीन कहानी' से पुकारा, किन्तु शीघ्र ही उन्होंने समकालीन, कहानी के स्थान पर 'अकहानी की व्याख्या प्रारम्भ कर दी और सन् 1960 के बाद हिन्दी कहानी के क्षितिज पर वह एक आन्दोलन के रूप में उग आयी, जिसके पक्षधरों में डॉ. गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, प्रयाग शुक्ल, सुधा अरोड़ा, ज्ञानरंजन, रमेश बक्षी, श्रीकांत वर्मा, विजय मोहन सिंह, विश्वेश्वर आदि थे।

▶ हिन्दी कहानी को जिस नयी धारा का सूत्रपात हुआ

अकहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने कहानी में एक आक्रामक मुद्रा को स्वीकार किया और नयी कहानी से उत्पन्न लिजलिजी भावुकता से उसे मुक्त किया। उसने सभी प्रकार के मूल्यों को अस्वीकार किया और शिल्प के स्तर पर नये प्रतीकों, नये बिम्बों तथा नये संकेतों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। अकहानी सूक्ष्म अभिव्यक्ति पर बल देती है, इसलिए उसमें अमूर्तता का आधिक्य है। अकहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि तो यही है कि उसने नयी कहानी द्वारा स्थापित आभिजात्य को तोडा तथा हिन्दी कहानी को एक नयी दिशा प्रदान की।

▶ नये प्रतीकों, नये बिम्बों तथा नये संकेतों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया

4.1.3.4 समांतर कहानी

सन् 1972 ई. के आस-पास नयीकहानी के प्रथम दौर के सशक्त रचनाकार कमलेश्वर ने 'सारिका' के माध्यम से समांतर कहानी आन्दोलन चलाया। उन्होंने 'समांतर-1' में 'अरविंद', 'आशीष सिन्हा', 'इब्रहीम शरीफ', 'कामतानाथ', 'जितेन्द्र भाटिया', 'दामोदर सदन', 'निस्प्रमा सोबती', 'मधुकर सिंह', 'मृदुला गर्ग', 'सुधा अरोड़ा', 'शीला रोहेकर', 'विभुकुमार', 'श्रवणकुमार', 'सतीशजमाली', 'सुदीप', 'सनतकुमार', 'से. रा. यात्री', 'रमेश उपाध्याय' की कहानियाँ प्रकाशित कीं। 'समांतर कहानी' आन्दोलन ने कहानी में आम आदमी को प्रतिष्ठित करने पर बल दिया। इस आन्दोलन से जुड़े हुए रचनाकारों ने जीवन के विभिन्न संदर्भों में आम आदमी के संघर्ष को देखा और उसकी चिन्ताओं, तकलीफों एवं मजबूरियों को रेखांकित किया। कहना न होगा कि इस आन्दोलन को भी व्यापक समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। इसके सिद्धान्त-सूत्र सोच-समझकर निर्धारित किये गये थे, कहानियों के भीतर से उभर कर सामने नहीं आये थे। यह सारा आन्दोलन कमलेश्वर की महत्त्वाकांक्षा का द्योतक अधिक था, रचना-संदर्भों से उभर कर रचनाकारों की सक्रियता की अनिवार्य परिणति के रूप में सामने नहीं आया था।

▶ समांतर कहानी आन्दोलन के प्रवर्तक कमलेश्वर हैं

4.1.3.5 जनवादी कहानी

जहाँ तक आन्दोलन के रूप में जनवादी कहानी के उदय का प्रश्न है, 'जनवादी कहानी का उदय सातवें दशक के अन्तिम वर्षों में माना जाता है। लेकिन उसका वास्तविक उभार आठवें दशक में देखने को मिलता है। 'वस्तुतः जनवादी कहानी आन्दोलन समूचे जनवादी आन्दोलन से जुड़ा हुआ है। दिल्ली विश्वविद्यालय में 1977 में 'जनवादी विचार मंच' की स्थापना हुई तथा इसी मंच के तत्वावधान में 14-15 अक्टूबर, 1978 को दिल्ली में हिन्दी के लेखकों का एक शिविर आयोजित किया गया जिसमें दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, बिहार, मध्यप्रदेश, पश्चिमी बंगाल के लगभग 250 लेखकों ने भाग लिया। शिविर का केन्द्रीय विषय था '1967 से 1977 तक जनवादी साहित्य के दस वर्ष। इसी शिविर में जनवादी कहानी पर दो निबन्ध पढ़े गये 'जनवादी कथा-रचना की समस्याएँ (असगर वजाहत) तथा 'जनवादी कहानी स्वरूप और समस्याएँ (चारू मित्र, प्रदीप मांडव)। इसी शिविर में 'आज का कथा साहित्य : सार्थकता की तलाश शीर्षक से डॉ. कुंवरपाल सिंह ने भी एक निबन्ध पढ़ा जिसमें उन्होंने जनवादी कहानी तथा उपन्यास पर समग्र रूप से विचार किया। इस शिविर को हम जनवादी कहानी आन्दोलन की भूमिका मान सकते हैं किन्तु इस आन्दोल की तीव्र गति 1982 में जनवादी लेखक संघ की दिल्ली में स्थापना के साथ हुई। 13 फरवरी, 1982 को दिल्ली में जनवादी लेखक संघ का प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ जिसमें इस संघ का संविधान भी स्वीकृत हुआ। इस अधिवेशन के पश्चात् जनवादी कहानी पर 'कलम' (कलकत्ता), 'कथन' (दिल्ली), 'उत्तरगाथा' (मथुरा से प्रकाशित होती थी पर इसे दिल्ली से प्रकाशित किया जाने लगा), उत्तरार्द्ध' (मथुरा) जैसी पत्रिकाओं में व्यापक रूप से चर्चा प्रारम्भ हो गयी। हम जनवादी आन्दोलन का प्रारम्भ जनवादी लेखक संघ की स्थापना के साथ ही मान सकते हैं।

▶ दिल्ली विश्वविद्यालय में 1977 में 'जनवादी विचार मंच' की स्थापना हुई

4.1.3.6 सक्रिय कहानी

आक्टीव स्टोरी के नकल पर राकेश वत्स ने अपने संपादकत्व में मार्च 1978 में सक्रिय कहानी का विशेषांक निकाला। इस अंक के कहानीकारों में चित्रा मुद्गल, रमेश बतरा, स्वदेश

भारती जैसे लोग थे। सक्रिय कहानी का मतलब स्पष्ट करते हुए राकेश वत्स ने कहा है कि 'सक्रिय कहानी आम आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा की कहानी है।' सक्रिय कहानी व्यक्तिवादी दानवी प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल देती है। प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह के मत में सक्रियता वह गति है जो कहानी और उसके पाठक दोनों को परिचालित करती है और अपने परिवेश के वैषम्य के विरुद्ध उसे एक योद्धा के रूप में प्रस्तुत करती है। हृदयेश, अमरकांत, मार्कंडेय, भीष्म साहनी, ममता कालिया, राजी सेठ, इंदुबाला आदि इस आंदोलन से जुड़ी हुई है।

▶ राकेश वत्स ने कहा है कि सक्रिय कहानी आम आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा की कहानी है

4.1.3.7 समकालीन कहानी

इसमें दो राय नहीं कि स्वातन्त्र्योत्तर काल में कहानी हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा रही है। कविता के वर्चस्व के बावजूद कहानी ने केन्द्रीय स्थान ग्रहण किया है। इसमें भी संदेह नहीं कि देश की बदलती परिस्थितियों की जितनी गहराई से कहानी ने आत्मसात किया है कि उतना अन्य किसी विधा ने नहीं। छठे, सातवें तथा आठवें दशक में हिन्दी में बड़े घरानों से निकलने वाली पत्रिकाओं तथा लेखकों के अपने प्रयासों से निकलने वाली पत्रिकाओं का हिन्दी साहित्य क्षितिज पर पूर्ण आलोक है। आठवें दशक के अन्तिम वर्षों में कुछ व्यापारिक दबावों के चलते बड़े घराने इन पत्रिकाओं के प्रति उदासीन से होने लगते हैं। पहले 'दिनमान' का प्रकाशन बंद होता है फिर 'सारिका', 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' आदि का। 'कहानी', 'नई कहानियाँ, 'कल्पना' आदि पत्रिकाएँ भी इनसे पूर्व बंद हो चुकी थी। इस कारण हम पाते हैं कि आठवें-नवें दशक में एक साहित्यिक शून्य उत्पन्न हो गया है। साहित्यिक चर्चाएँ काफी धीमी पड़ने लगी है।

▶ आठवें-नवें दशक में एक साहित्यिक शून्य उत्पन्न हो गया

किन्तु इस शून्य को भरने का कार्य वरिष्ठ कथाकार राजेन्द्र यादव द्वारा सम्पादित प्रकाशित 'हंस' का 1986 में प्रकाशन से हुआ। एक ओर यह मासिक प्रेमचन्द के 'हंस' की परम्परा को पुनर्जीवित करती हैं दूसरी ओर नयी बहसों को जन्म देती है। हंस' यूँ तो कहानी प्रधान पत्रिका है पर उसने सामयिक मुद्दों को पूरी ईमान्दारी से उठाया है और साहित्यिक बहसों को फिर जीवित किया है। इतना ही नहीं 'हंस' से प्रेरित होकर 'कथादेश' का प्रकाशन आरम्भ होता है और एक बार फिर सम्बोधन', 'वागर्थ', 'तद्भव, 'समय माजरा', 'सोच', 'संधान', 'पल प्रतिपल, 'वर्तमान साहित्य' जैसी अनेक पत्रिकाएँ हिन्दी साहित्य के विकास में अपना योगदान देती है। 'पहल' पत्रिका का उल्लेख करना यहाँ समीचीन रहेगा क्योंकि 'पहल' ने लघु पत्रिका आन्दोलन को सशक्त बनाए रखा है और लघु पत्रिकाओं की परम्परा को अक्षुण्ण रखा है।

▶ अनेक पत्रिकाएँ हिन्दी साहित्य के विकास में अपना योगदान देती है

समकालीन कहानी जीवन के यथार्थ को बड़ी गहराई से स्पायित करती हैं इसलिए समकालीन कहानियों में वर्तमान युग की सभी विसंगतियों का बड़ा हृदय विदारक वर्णन हुआ है। ये कहानियाँ न तो स्तब्ध करती हैं न पाठक का मनोरंजन करती हैं बल्कि पाठक को झकझोरती हैं। जीवन का चाहे राजनैतिक पक्ष हो चाहे सामाजिक, आर्थिक पक्ष हो चाहे सांस्कृतिक हिन्दी कहानी हर पक्ष को उसकी समस्त विद्रूपताओं के साथ उभारती हैं। 'हंस' पत्रिका के मंच से स्त्री विमर्श तथा दलित विमर्श चर्चा के केन्द्र में आए। हिन्दी कहानी में ये दोनों विमर्श समाहित हुए। स्त्री विमर्श को हम दो स्तरों पर कहानियों में देख सकते हैं- स्त्री जीवन की विडम्बनाओं को लेकर लिखी गयी कहानियाँ तथा स्त्री लेखिकाओं द्वारा लिखी गयी कहानियाँ। औरत को भूमण्डलीकरण तथा बाजारीकरण ने, सारे स्त्री-मुक्ति आन्दोलन के

बावजूद, बाजार में लाकर खड़ा कर दिया है और उसे एक उपभोग की वस्तु मात्र में तब्दील कर दिया गया है। इस दृष्टि में हम पाते हैं कि शिवमूर्ति की 'तिरिया चरिवर', 'केशर कस्तुरी', 'कसाईवाड़ा' आदि कहानियों में स्त्री के शोषण की क्रूर व्यथा चित्रित है। सुवास कुमार की 'मादा', 'स्थानपूर्ति', 'एक डायरी की मौत' आदि कहानियों में वर्तमान जीवन में नारी की स्थिति की पड़ताल करती है। शैवाल की दामुल' तथा प्रियंवद की 'एक पवित्र पेड' कहानियाँ भी इसी श्रेणी में आती है।

▶ 'हंस' पत्रिका के मंच से स्त्री विमर्श तथा दलित विमर्श चर्चा के केन्द्र में आए

समकालीन कहानी के विकास में स्त्री कथाकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पुरानी पीढ़ी की लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी ने लेखन लगभग छोड़ दिया है। उनकी एकाध कहानी ज़रूर इस दौरान छपी है। कृष्णासोबती जब लिखती हैं तो कुछ नया देती हैं 'ए लड़की' कहानी इसका प्रमाण है। किन्तु इधर महिला लेखिकाओं की एक लम्बी पीढी ने कहानी लेखन के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण कहानियों दी हैं मैत्रेयी पुष्पा (चिन्हार, ललमनिया, गोमा बहती है आदि), राजी सेठ ('मैं तो जन्मा ही'), लवलीन ('छिनाल, चक्रवात'), मृणाल पाण्डेय ('चार दिन की जवानी तेरी'), चित्रा मुद्गल ('जिनावर जगदम्बा बाबू आ रहे हैं'), मृदुला गर्ग ('समागम मेरे देश की मिट्टी आहा'), चन्द्रकान्ता ('काफी बर्फ'), सुधा अरोड़ा ('काला रजिस्टर'), अल्का सरावगी ('कहानी की तलाश में'), क्षमा शर्मा ('इक्कीसवीं सदी का लड़का'), गीतांजलि श्री ('वैराग्य'), उर्मिला शिरीष, लता शर्मा, दुर्वासहाय, जयाजादवानी आदि अनेक महिला कहानीकार पूरी रचनात्मकता के साथ कहानी लेखन में सक्रिय है।

▶ हिला कहानीकार पूरी रचनात्मकता के साथ कहानी लेखन में सक्रिय है

समकालीन कहानी में जो सबसे प्रभावशाली लेखक हैं उनमें संजीव, स्वयंप्रकाश, अखिलेश, संजय खाती, उदय प्रकाश, शैलेन्द्र सागर आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। संजीव के पास अनुभव का व्यापक संसार है इसलिए उनकी कहानियाँ मानव अस्मिता की रक्षा में व्याकुल कहानियाँ हैं - 'सागर सीमांत' से 'आरोहण' तक संजीव की हर कहानी पाठक के अनुभव को समृद्ध करती है, इस दृष्टि से कि उसकी मानवीय संवेदनाओं को स्पर्श करती है। 'संजय' की 'कामरेड का कोट' कहानी की बहुत अधिक चर्चित रही क्योंकि यह कहानी एक वामपंथी विचारधारा वाले व्यक्ति के विचारों को रेखांकित करती है।

▶ संजय' की 'कामरेड का कोट' कहानी बहुचर्चित है

समकालीन कहानीकारों में उदयप्रकाश सर्वाधिक चर्चित और विवादास्पद कहानीकार हैं। इसके दो कारण हैं वे अपनी हर कहानी किसी प्रसिद्ध परिचित व्यक्ति को आधार बनाकर लिखते हैं। जैसे रामसजीवन की प्रेम कथा में गोरख पाण्डेय है, दूसरे, उनकी कहानियों पर किसी भारतीय या विदेशी लेखक की कहानी के प्रभाव का आरोप लगाता रहा है जैसे 'छप्पन तोले का करधन' कहानी पर आरोप लगा था कि यह बिहार के किसी लेखक की कहानी की नकल है। उदय प्रकाश अपनी कहानियों में शिल्प के प्रति बहुत सजग हैं तथा वे अपनी कहानियों में जादुई यथार्थ का खूब उपयोग करते हैं। 'पालगोमरा का स्कूटर' तथा 'वारेन हेस्टिंग्ज का सांड' कहानियाँ उदाहरणस्वरूप देखी जा सकती है। 'पालगोमरा का स्कूटर' कहानी में वे विज्ञापनों द्वारा अपसंस्कृति का प्रचार, आतंक, शहर में बढ़ते अपराध, उत्तराखण्ड की महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार आदि घटनाओं के विवरण मिलते हैं।

▶ उदयप्रकाश अपनी कहानियों में जादुई यथार्थ का बूब उपयोग करते हैं

4.1.4 प्रमुख कहानीकार

4.1.4.1 प्रेमचन्द

प्रेमचन्द की कहानियों में विषय वैविध्य दिखाई पड़ता है। किसी अन्य कथाकार ने जीवन के

इतने व्यापक फलक को अपनी कहानियों में नहीं समेटा जितना प्रेमचन्द ने उनकी अधिकांश कहानियों का विषय ग्रामीण जीवन से लिया गया है, किन्तु कई कहानियाँ कस्बे की जिन्दगी या स्कूल कॉलेज से भी जुड़ी हुई है। उनकी कहानियों के पात्र हर वर्ग, धर्म, जाति के हैं। कोई हिंदू है तो कोई मुसलमान, कोई किसान है, तो कोई विद्यार्थी। अपनी कहानियों में उन्होंने विविध समस्याओं को भी उठाया है- जमीदारों के द्वारा किसानों के शोषण की समस्या, सूदखोरों के शोषण से पिसते ग्रामीणों की समस्या, छुआछूत की समस्या, रूढ़ि एवं अन्धविश्वास, संयुक्त परिवार की समस्या, भ्रष्टाचार एवं व्यक्तिगत जीवन की समस्याएँ आदि।

▶ अपनी कहानियों में विविध समस्याओं को उठाया

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियॉ में आदर्शवादी है। 'पंच परमेश्वर', 'आत्माराम', 'प्रेरणा', 'ईदगाह', 'नमक का दरोगा' आदि कहानियों का मूल उद्देश्य है-सच्चे का बोलबाला और झूठे का मुंह काला जबकि परवर्ती कहानियाँ यथा- 'पूस की रात' और 'कफन' तक आते-आते उनका दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया। अब वे जीवन के यथार्थ से जुड़ गए थे। स्पष्ट है कि उनके पहले की कहानियाँ आदर्शवादी है और बाद में लिखी गई यथार्थवादी कहानियाँ हैं। प्रेमचन्द का कथा शिल्प भी उत्तरोत्तर विकास पथ पर अग्रसर रहा है।

▶ जीवन के यथार्थ से जुड़ हुए कहानीकार

प्रारम्भिक कहानियों में इतिवृत्तात्मकता अधिक है तथा चरित्र-चित्रण की मनोवैज्ञानिकता के स्थान पर व्यक्ति के आचरण का वर्णन अधिक किया गया है। 'पंच परमेश्वर' इसी कोटि की कहानी है। सन् 1930 के बाद की कहानियों में कथानक छोटे एवं संश्लिष्ट होते गए तथा कहानी की मूल संवेदना को उभारने वाली दो-तीन घटनाओं पर ही बल दिया जाने लगा। कहानियों के पात्रों का चरित्रांकन मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर किया जाने लगा और कहानी को चरम सीमा तक द्वन्द्व एवं समस्या को बनाये रहना 'शतरंज के खिलाड़ी' इसी प्रकार की कहानी है। इससे पूर्व की कहानियाँ प्रभाव की दृष्टि से कमज़ोर ही कही जाएंगी। प्रेमचन्द का आदर्शवादी दृष्टिकोण, परम्परागत मूल्यों में आस्था और अन्धविश्वास परवर्ती कहानियों में दिखाई नहीं पड़ता।

▶ प्रेमचन्द का आदर्शवादी दृष्टिकोण, परम्परागत मूल्यों में आस्था और अन्धविश्वास परवर्ती कहानियों में दिखाई नहीं पड़ता

सन् 1930 से लेकर 1936 ई. तक का कालखण्ड प्रेमचन्द की कहानी कला का उत्कर्ष काल है। इस काल की कहानियों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण एवं जीवन के यथार्थ का चित्रण किया गया है। इन कहानियों में कथानक और घटनाओं को उतना महत्व नहीं दिया गया जितना कहानी की मूल संवेदना को पाठकों तक पहुँचाने में 'कफन' और 'पूस की रात' इस वर्ग की कहानियाँ हैं। इनमें सच्चाई को सहज रूप में उजागर किया गया है। हिन्दी की आधुनिक कहानियों को ऐसी कहानियों से बहुत कुछ 'दाय' के रूप में प्राप्त हुआ है, इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

▶ प्रेमचन्द की कहानी कला का उत्कर्ष काल

प्रेमचन्द की प्रमुख कहानियों में- 'पंच परमेश्वर', 'बूढ़ी काकी', 'परीक्षा', 'सवा सेर गेहूं', 'आत्माराम', 'सुजान भगत', 'माता का हृदय', 'कजाकी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'बड़े भाई साहब', 'नशा', 'ठाकुर का कुआं', 'ईदगाह', 'लाटरी', 'पूस की रात' और 'कफन' के नाम लिए जा सकते हैं।

▶ प्रमुख कहानी

4.1.4.2 अज्ञेय

मनोविश्लेषणवादी कहानी लेखकों में अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी एवं जैनेन्द्र के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अज्ञेय ने व्यक्ति के परिवेश और संघर्ष को अपनी कहानियों में उकेरा है। उनकी कहानियों में मनोविश्लेषण के साथ-साथ प्रतीकात्मकता एवं बौद्धिकता का प्रभाव भी

है। अज्ञेय ने कहानी को बौद्धिक एवं वैचारिक आधार प्रदान किए तथा प्रतीकों एवं बिम्बों के प्रयोग में वृद्धि की। अज्ञेय की कुछ प्रसिद्ध कहानियों के नाम हैं- 'रोज', 'पुलिस की सीटी', 'हजामत का साबुन', 'कोठरी की बात', 'गैंग्रीन', 'पठार का धीरज' आदि। उनके कई कहानी संग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं यथा- 'विपथगा', 'परम्परा', 'शरणार्थी', 'कोठरी की बात', 'जयदोल', 'अमर बल्लरी' और 'ये तेरे प्रतिरूप'।

▶ कहानी को बौद्धिक एवं वैचारिक आधार प्रदान किए

4.1.4.3 भीष्म साहनी

भीष्मसाहनी के नौ कहानी-संग्रह- 'भाग्य रेखा' (1953 ई.), 'पहला पाठ' (1957 ई.), 'भटकती राख' (1966 ई.), 'पटरियाँ' (1973 ई.), 'वाङ्चू' (1978 ई.), 'शोभायात्रा' (1981 ई.), 'निशाचर' (1983 ई.), 'पाली' (1989 ई.), 'डायन' (1998 ई.) प्रकाशित हैं। साहनी अपनी प्रगतिशील जीवन-दृष्टि के लिए प्रख्यात हैं। 'नयीकहानी' के दौर में इनकी 'चीफ की दावत' कहानी बहुत प्रसिद्ध हुई थी। इनकी 'अमृतसर आ गया है', 'ओ हरामजादे', 'वाङ्चू' और 'त्रास' आदि कहानियों को आलोचकों ने बहुत पसन्द किया है। आपको सच्चे अर्थों में प्रेमचन्द की परम्परा का कहानीकार माना जा सकता है। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में- 'सादगी और सहजता भीष्मजी की कहानी-कला की ऐसी खूबियाँ हैं, जो प्रेमचन्द के अलावा और कहीं नहीं दिखाई देती हैं। जीवन की विडम्बनापूर्ण स्थितियों की पहचान भी भीष्म साहनी में अप्रतिम है। यह विडम्बना उनकी अनेक अच्छी कहानियों की जान है।" वास्तविकता यह है कि भीष्मजी को पीड़ित मानवता से अपार सहानुभूति है। मध्यवर्ग और निम्नमध्यवर्ग के लोगों की जीवन-स्थितियों से वे बखूबी परिचित हैं। इसलिए इस वर्ग की मानसिकता को वे जी लेते हैं और इसकी विडम्बनाओं को सहज ही उजागर कर देते हैं। भीष्मजी का कथा-संसार व्यापक है। उन्होंने जीवन के विविध संदर्भों में मानवीय संघर्ष को बड़ी मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। सत्ता और व्यवस्था के खोखलेपन को उन्होंने बड़ी ही सहजता और निर्भीकता से उधेड़ा है। यथार्थ के कुरूप चेहरे के भीतर निहित मानवीय मूल्यों के सौन्दर्य को रेखांकित करने की कला में वे दक्ष हैं। उनके नवें कहानी संग्रह 'डायन' की कहानियों में भी उनकी यह विशेषता उभरकर सामने आई है। एक प्रतिबद्ध, ईमानदार, संवेदनशील एवं धर्म-सम्प्रदाय-निरपेक्ष लेखक के रूप में आप सदैव स्मरणीय रहेंगे।

▶ जीवन की विडम्बनापूर्ण स्थितियों की पहचान

4.1.4.4 जैनेन्द्र

जैनेन्द्र की कहानियों में व्यक्ति-मनोविज्ञान के दर्शन होते हैं। मानवीय दुर्बलताओं का यथार्थ चित्रण जैनेन्द्र की कहानियों में प्रमुखता से हुआ है। वे प्रसाद की भांति आदर्श पात्रों को जन्म नहीं देते अपितु यथार्थ धरातल से उठाए हुए 'पात्रों' को अपनी कहानी का पात्र बनाते हैं। उनके पात्र अपने पास-पड़ोस से उठाए हुए मानव-चरित्र हैं। जैनेन्द्र जी की कहानियों का शिल्प भी अलग है, क्योंकि कहानी की मूल संवेदना अपनी उष्णता के साथ उसमें अन्त तक व्याप्त रहती है। उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ है- 'जाह्नवी', 'पत्नी', 'मास्टर साहब', 'परख', 'एक रात', 'ध्रुवयात्रा', 'ग्रामोफोन का रिकार्ड', 'पानवाला' आदि।

▶ व्यक्ति-मनोविज्ञान के दर्शन

4.1.4.5 यशपाल

यशपाल की लिखी कहानियों के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें प्रमुख हैं 'वो दुनिया', 'पिंजड़े की उड़ान', 'फूलों का कुर्ता', 'तर्क का तूफान' एवं 'चक्कर क्लब' आदि। यशपाल जी के कथा शिल्प पर टिप्पणी करते हुए डॉ. भगवतस्वरूप मिश्र ने लिखा है- "कथा शिल्प

▶ कथा शिल्प और कथ्य की दृष्टि से यशपाल जी प्रेमचन्द के बहुत नजदीक हैं

और कथ्य की दृष्टि से यशपाल जी प्रेमचन्द के बहुत नजदीक हैं, पर वे अपनी कहानी को प्रेमचन्द की तरह समस्या का समाधान देने वाले किसी आदर्श बिन्दु पर नहीं पहुँचाते, अपितु यथार्थ की कठोरता के तीखे व्यंग्य के बोध से भर देते हैं।" रांगेय राघव, नागार्जुन, अमृतराय, मन्मथनाथ गुप्त इसी परम्परा के अन्य कथाकार हैं।

4.1.4.6 मोहन राकेश

मोहन राकेश ने अपने लेखन का प्रारंभ कहानियों के माध्यम से किया था। नयी कहानी के उद्‌भव और विकास में मोहन राकेश की कहानियाँ का अपना विशेष स्थान हैं। उन्होंने कहानी लेखन के माध्यम से नयी कहानी को नयी संवेदना और नये शिल्प के साथ जोड़ा है। इस दृष्टि से नयी कहानी के कहानीकारों में मोहन राकेश का शीर्ष स्थान हैं। राकेश जी के कहानी लेखन का प्रारंभ सन् 1944 ई. से माना जाता है। राकेश जी की पहली कहानी 'नन्ही' जो उनकी मृत्यु के पश्चात उन्हीं की हस्तलिपी में प्राप्त हुई। जिस पर तरह-तरह से बार-बार 'राकेश' लिखकर देखा गया है। इस कहानी को कमलेश्वर जी ने 'सारिका' के मोहन राकेश सम्बन्धी विशेषांक में प्रकाशित किया। किन्तु राकेश जी की डायरी के अनुसार 'भिक्षु' उनकी प्रथम प्रकाशित कहानी है। इसका प्रकाशन 'सरस्वती' में सन् 1946 ई. हुआ था। राकेश जी की कहानियों के पाँच कहानी संग्रह कालक्रमानुसार इस प्रकार से प्रकाशित हुए हैं 'इन्सान के खंडहर', 'नये बादल' (1957), 'जानवर और जानवर', 'एक और जिन्दगी', 'फौलाद का आकाश'। यह कहानी संग्रह क्रमशः राकेश जी की कहानी-यात्रा के विभिन्न सोपानों को स्पष्ट करते हैं।

▶ मोहन राकेश के प्रथम प्रकाशित कहानी

4.1.4.7 कृष्णा सोबती

स्वातंत्र्योत्तर महिला साहित्यकारों में कृष्णा सोबती का महत्वपूर्ण स्थान है। अपनी स्वतंत्र व्यक्तित्व चेतना और युगीन यथार्थ के साक्षात्कार से उन्होंने जिस दृष्टिकोण को अपनाया है, उसे अपनी रचनाओं के द्वारा अभिव्यक्ति की है।

कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास के पहले जो कहानियाँ लिखी है उनका संकलन 'बादलों के घेरे' कहानी संग्रह में किया है। इस कहानी संग्रह में लेखिका ने 24 कहानियों को संकलित किया है। इन कहानी संग्रह को तीन भागों में बाँट सकते है -

1. देश विभाजन से जुड़ी कहानियाँ
2. ग्रामीण जीवन से संबंधित
3. प्रेम और स्त्री-पुरुष संबंधों की कहानियाँ।

▶ स्वतंत्र व्यक्तित्व चेतना और युगीन यथार्थ के साक्षात्कार

इसमें मोहभंग, अकेलेपन, असफल प्रेम, देश विभाजन की स्थिति आदि समस्याओं को उजागर किया गया है। इस प्रकार कहानी की विकास यात्रा में इन कहानिकारों का योगदान महत्वपूर्ण है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी काल में हिन्दी कहानी अपना स्वरूप ग्रहण कर रही थी। वस्तुतः 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित कहानियों ने हिन्दी कहानी को एक दिशा प्रदान की और हिन्दी कहानी अपने विकास पथ पर अग्रसर हुई। प्रेमचन्द युग में कहानी ने अपने स्वरूप को संवारने एवं निखारने का काम किया। उसके विषय वैविध्य एवं शिल्प सजगता का विकास हुआ। सन् 1936 से सन् 1950 ई. तक का समय हिन्दी कथा जगत में प्रेमचंदोत्तर कहानी काल के रूप में जाना जाता है। प्रेमचंदोत्तर कहानी किसी एक दिशा की ओर अग्रसर नहीं हुई अपितु विविध दिशाओं में उसका विकास हुआ। कहानी इस काल की केन्द्रीय विधा रही है अतः उसने जीवन और जगत के विविध पक्षों को अपनी परिधि में समेटने का प्रयास किया। इस काल में एक ओर तो प्रगतिवादी विचारधारा से अनुप्राणित कहानीकारों ने प्रगतिवादी कहानियाँ लिखीं तो दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक कहानीकारों ने ऐसे विषयों पर कहानियाँ लिखीं जिनमें व्यक्ति मन की आन्तरिक परतों को खोलकर दिखाया था। युगीन परिवेश को पूर्णत व्यक्त करने नें इस काल की कहानी ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। स्वतंत्र्योत्तर कहानी लेखन में नई कहानी आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ, यद्दपि वह लम्बे समय तक नहीं चल सका।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी कहानी के उद्भव एवं विकास पर टिप्पणी लिखिए।
2. हिन्दी कहानी में प्रेमचंद के योगदान पर लेख लिखिए।
3. हिन्दी के प्रमुख कहानीकारों के योगदान पर टिप्पणी लिखिए।
4. समकालीन हिन्दी कहानी विषय पर आलेख तैयार कीजिए।
5. हिन्दी के प्रमुख महिला कहानीकारों पर टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी का गद्यसाहित्य - डॉ. रामचन्द्र तिवारी
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
3. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
5. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
6. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
7. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 2

हिन्दी उपन्यास- उद्‌भव और विकास, हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार, प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास, प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास, हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार-यशपाल, जैनेद्र कुमार, भीष्म साहनी, फणीश्वरनाथ रेणु

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी उपन्यास के उद्‌भव एवं विकास के बारे में समझता है
- हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार के बारे में समझता है
- समकालीन उपन्यास एवं उपन्यासकार के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- महिला उपन्यासकार के बारे में जानकारी प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

यद्यपि भारतीय कथा साहित्य का इतिहास बहुत प्राचीन कहा जाता है लेकिन हिन्दी का उपन्यास-साहित्य आधुनिक युग की देन है। हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' माना जाता है। उसके लेखक लाला श्रीनिवास दास हैं।

प्रेमचन्द जी वस्तुतः हिन्दी के युग-प्रवर्तक उपन्यासकार हैं। उन्हें उपन्यास सम्राट की उपाधि से भी विभूषित किया गया। प्रेमचन्द जी ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को मानवीय जीवन के निकट ला दिया। उनके उपन्यास तत्कालीन संघर्षमय जीवन और समाज के प्रतिबिम्ब हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

उपन्यास उद्‌भव, प्रमुख उपन्यासकार, महिला उपन्यासकार, प्रेमचंद, यशपाल, जैनेद्र कुमार, भीष्म साहनी, फणीश्वरनाथ रेणु

Discussion / चर्चा

4.2.1 हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास

प्रेमचन्द-पूर्व युग में हिन्दी-उपन्यास-साहित्य की मर्यादा सन् 1877 ई. से 1918 ई. तक मान्य हो सकती है। सन् 1877 ई. में पंडित श्रद्धाराम फिल्लॉरी ने 'भाग्यवती' नामक सामाजिक उपन्यास लिखा था, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। यह अँग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास चाहे न हो; किन्तु विषय-वस्तु की नवीनता की दृष्टि से इसे हिन्दी का प्रथम आधुनिक उपन्यास अवश्य कहा जा सकता है। इसके पूर्व के सदानन्द मिश्र और शंभुनाथ मिश्र द्वारा संपादित जिस 'मनोहर उपन्यास' (1871 ई.) का उल्लेख डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने किया है, वह एक तो

संपादकों द्वारा 'संगृहीत और संशोधित' होने के कारण निश्चय ही मौलिक नहीं है, दूसरे उसकी कथावस्तु के विषय में कोई जानकारी न होने के कारण उसकी आधुनिकता भी विवादास्पद है। सन् 1918 ई. में प्रेमचन्द का 'सेवासदन' उपन्यास प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी-उपन्यासों के विकास-क्रम में निश्चित रूप से नये युग के सूत्रपात का द्योतक है। अतः प्रेमचन्द-पूर्व युग के अन्तर्गत सन् 1877 ई. से 1918 ई. तक प्रकाशित उपन्यासों का अध्ययन ही समीचीन होगा।

4.2.1.1 प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास

प्रेमचन्द-पूर्व-युग में उपन्यास-साहित्य की रचना नवीन सामाजिक मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त साहित्य-माध्यम की खोज का परिणाम था। पं. श्रद्धाराम फिल्लॉरी ने तत्कालीन नारी-समाज में व्याप्त मध्ययुगीन अन्धविश्वासपूर्ण कुरीतियों को मिटाकर उन्हें नवीन युग के अनुकूल आचरण करने में समर्थ बनाने के लिए ही 'भाग्यवती' उपन्यास की रचना की थी। 'परीक्षागुरु', 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान एक सुजान' आदि उपन्यासों की रचना सामाजिक उत्थान केलिए ही की गयी थी। हिन्दी-प्रदेश में नवीन सामाजिक चेतना को जनसाधारण तक पहुँचाने का श्रेय 'आर्यसमाज' (1878 ई.) को है। इस सुधारवादी आन्दोलन का हिन्दी-साहित्य पर व्यापक प्रभाव अवश्य पडा है।

▶ सामाजिक चेतना को जनसाधारण तक पहुँचाने का श्रेय 'आर्यसमाज' को है

यह हिन्दी उपन्यास का शुरुआती दौर था। अभी तक उपन्यास विधा अपना स्वरूप ग्रहण करने का प्रयास कर रही थी। इस काल में लिखे गये उपन्यास मुख्य रूप से सुधारवादी एवं उपदेशवादी प्रवृत्ति से परिचालित थे और उनका मुख्य लक्ष्य मनोरंजन ही माना जा सकता है। श्रद्धाराम फिल्लौरी एवं लाला श्रीनिवासदास के अतिरिक्त इस काल में सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी, जासूसी उपन्यासों की रचना अधिक हुई है, जिनका जनजीवन से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता। तिलस्मी उपन्यासों में यद्यपि प्रेम चित्रण का अवसर भी आ गया है, परन्तु उपन्यासकारों का मूल उद्देश्य हास्य-रोमांच की ऐयारी और तिलस्सी दुनिया का चित्रण कर पाठकों को चमत्कृत करना मात्र रहा है। इस काल के प्रमुख उपन्यासकारों में पण्डित बालकृष्ण भट्ट (1844-1914) को माना जा सकता है जिनके लिखे तीन उपन्यास 'रहस्यकथा' (1879 ई.), 'नूतन ब्रह्मचारी' (1886 ई.) तथा 'सौ अजान एक सुजान' (1892 ई.) महत्वपूर्ण हैं। इनके उपन्यासों का मूल स्वर सुधारवादी और उपदेशमूलक है।

▶ इस काल के प्रमुख उपन्यासकार है पण्डित बालकृष्ण भट्ट

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मित्र ठाकुर जगमोहन सिंह (1857-1899 ई.) ने 'श्यामा स्वप्न' (1888) नामक एक बृहत उपन्यास की रचना 1888 ई. में की। लज्जाराम मेहता (1863-1931) ने सुधारवादी आधार पर धूर्त 'रसिकलाल' (1899 ई.), 'स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी' (1899 ई.), 'बिगड़े का सुधार' (1907 ई.) तथा 'आदर्श हिन्दू' (1914 ई.) आदि चार उपन्यासों की रचना की। राधाकृष्ण दास (1865-1907) ने 'गोवध' की समस्या का समाधान करने के लिए 'निस्सहाय हिन्दू' (1890 ई.) नामक उपन्यास लिखा।

▶ लज्जाराम मेहता ने 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' उपन्यास की रचना की

प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यासकारों में देवकीनन्दन खत्री (1861-1913) का नाम सर्वाधिक आदर से लिया जाता है। इन्होंने तिलस्मी एवं ऐयारी उपन्यासों की रचना करके पाठकों का पर्याप्त मनोरंजन किया। इनके लिखे प्रसिद्ध उपन्यास हैं- 'चन्द्रकान्ता' (1882 ई.), 'चन्द्रकान्ता सन्तति' (6 भाग, 1896), 'काजर की कोठरी' (1902), 'भूतनाथ' (1907), 'कुसुम कुमारी' (1899), 'नरेन्द्र मोहिनी' (1893), 'वीरेन्द्र वीर' (1895) आदि। इन उपन्यासों में घटनाओं का संयोजन इतनी कुशलता से किया गया है कि पाठक की कुतूहल वृत्ति अन्त तक जाग्रत

▶ देवकीनन्दन खत्री ने तिलस्मी एवं ऐयारी उपन्यासों से पाठकों का मनोरंजन किया

रहती है। भले ही साहित्यिक दृष्टि से ये उपन्यास उच्च कोटि के न हों, किन्तु पाठकों को आकर्षित करने की शक्ति बेजोड़ है।

जासूसी उपन्यासों का शुभारम्भ करने का श्रेय हिन्दी में गोपालराम गहमरी (1866-1946) को दिया जा सकता है। गहमरी जी के प्रमुख उपन्यास हैं- 'अद्भुत लाश' (1896), 'गुप्तचर' (1899), 'सरकटी लाश' (1900 ई.), 'जासूस की भूल' (1901 ई.), 'जासूस की जासूसी' (1904 ई.), 'गुप्त भेद' (1913 ई.), 'जासूस की ऐयारी' (1914 ई.) आदि। जासूसी उपन्यासों में किशोरीलाल गोस्वामी (1865-1932) द्वारा रचित 'जिन्दे की लाश', 'तिलस्मी शीशमहल', 'लीलावती' (1901), 'याकूती तख्ती' आदि उल्लेखनीय हैं। गोस्वामी जी ने कुछ सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास 'प्रणयिनी परिणय' (1890), 'मस्तानी' (1903), 'सुखशर्वरी', 'प्रेममयी' आदि भी लिखे हैं।

▶ जासूसी उपन्यासों का शुभारम्भ करने का श्रेय हिन्दी में गोपालराम गहमरी को है

द्विवेदी युग के उपन्यासकारों में अयोध्यासिंह उपाध्याय (1865-1947) का नाम उल्लेखनीय है। उनके लिखे दो उपन्यास हैं- 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' (1899 ई.) तथा 'अधखिला फूल' (1907 ई.)। पहले उपन्यास में हिन्दू समाज की कुरीतियों पर प्रहार किया गया है, जबकि दूसरे में एक जमींदार की कामुकता का परिष्कार दिखाया गया है। इस काल के कुछ अन्य उपन्यासकार हैं- लज्जाराम मेहता ('आदर्श दम्पति'-1904, 'आदर्श हिन्दू'-1914, 'बिगड़े का सुधार'-1907), मन्नन द्विवेदी (1884-1921) ('रामलाल'-1917) तथा राधिकारमण प्रसाद सिंह ('प्रेमलहरी'-1916) आदि।

▶ 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' अयोध्यासिंह उपाध्याय का उपन्यास है

हिन्दी उपन्यासकारों द्वारा प्रथम चरण में लिखे गये उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन और समाज सुधार ही रहा है। भले ही उपन्यास कला की दृष्टि से इस काल के उपन्यास उल्लेखनीय न हों, पर इन्होंने हिन्दी उपन्यास को एक दिशा का आधार देने का प्रयास अवश्य किया है। उपन्यास के विषय, शिल्प एवं भाषा का जो विकास इस काल में हुआ, उसी का संशोधित रूप आगे के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है।

▶ उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन और समाज सुधार ही रहा है

4.2.1.2 प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यासकारों में उपन्यास सम्राट 'प्रेमचन्द' अपनी महान प्रतिभा के कारण युग प्रवर्तक के रूप में जाने जाते हैं। सही मायने में उन्होंने ही हिन्दी उपन्यास शिल्प का विकास किया। उनके उपन्यासों में पहली बार सामान्य जनता की समस्याओं की कलात्मक अभिव्यक्ति की गयी थी। प्रेमचन्द के उपन्यास राष्ट्रीय आन्दोलन, कृषक समस्या, मानवतावाद, शोषण, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि विविध विषयों से सम्बन्धित हैं। प्रेमचन्द के प्रमुख उपन्यास हैं- 'सेवा सदन' (1918 ई.), 'प्रेमाश्रम' (1922 ई.), 'रंगभूमि' (1925 ई.), 'कायाकल्प' (1926 ई.), 'निर्मला' (1927 ई.), 'गबन' (1931 ई.), 'कर्मभूमि' (1933 ई.) और 'गोदान' (1936 ई.)। प्रेमचन्द (1880-1936) ने हिन्दी के उपन्यास साहित्य को मनोरंजन के स्तर से ऊपर उठाकर जीवन के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया। 'सेवासदन' के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी उपन्यास को नयी दिशा प्राप्त हो गयी। प्रेमचन्द के समकालीन उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', वृन्दावन लाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, जी. पी. श्रीवास्तव आदि मुख्य हैं।

▶ प्रेमचन्द ने हिन्दी के उपन्यास साहित्य को मनोरंजन के स्तर से ऊपर उठाकर जीवन के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया

प्रसाद (1890-1937) ने काव्य, नाटक और उपन्यासों में सफलता पाई। उनके प्रमुख उपन्यास 'कंकाल' (1929) और 'तितली' (1934) हैं, जबकि 'इरावती' (1936) अधूरा रह गया। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' (1900-1967) ने सामाजिक बुराइयों को उजागर करते हुए विवादास्पद उपन्यास रचे, जैसे 'चंद हसीनों के खतूत' (1927) और 'दिल्ली का दलाल' (1927)। ऋषभ चरण जैन (1912-1985) ने उग्र की परंपरा को आगे बढ़ाया, उनके उपन्यास 'दिल्ली का व्यभिचार' (1928) और 'मयखाना' (1938) महत्वपूर्ण हैं। प्रतापनारायण श्रीवास्तव के उपन्यास आदर्शवादी हैं, जैसे 'विदा' (1929) और 'विजय' (1937)। वृन्दावनलाल वर्मा (1889-1969) ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं, उनके 'गढ़ कुण्ठार' (1929) और 'झाँसी की रानी' (1946) प्रसिद्ध हैं। कविवर निराला (1899-1961) ने भावुक और काव्यात्मक उपन्यास लिखे, जैसे 'अप्सरा' (1931) और 'अलका' (1933), 'निरुपमा', 'प्रभावती', 'काले कारनामे' (अपूर्ण,1950), 'चोटी की पकड़' (1946), 'कुल्लीभाट' (1939), 'बिल्लेसुर बकरिहा' (1942) आदि।

▶ जयशंकर प्रसाद का अपूर्ण उपन्यास है इरावती

स्पष्ट है कि प्रेमचंद युगीन उपन्यास में विषय विविधता और शिल्पगत नवीनता देखने को मिलती है। इस युग के उपन्यासकारों ने सामाजिक समस्याओं को मुख्य विषय बनाया और ऐतिहासिक कथानकों पर नवीन दृष्टि से विचार करते हुए मनोरंजक तथा सुरुचिपूर्ण उपन्यासों की रचना की। इस समय तक हिन्दी उपन्यास ने मानवीय संबंधों को उजागर करने वाला महत्वपूर्ण दस्तावेज का रूप ले लिया था।

▶ सामाजिक समस्याओं को मुख्य विषय बनाया

4.2.1.3 प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास

उपन्यास सम्राट के उपरान्त हिन्दी उपन्यास किसी एक निश्चित दिशा की ओर अग्रसर नहीं हुआ बल्कि उसकी विविध धाराएँ अनेक दिशाओं की ओर अग्रसर हुईं जैसे-मनोविश्लेषणवादी उपन्यास, साम्यवादी (प्रगतिवादी) उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, आंचलिक उपन्यास और प्रयोगवादी उपन्यास।

मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय का योगदान महत्वपूर्ण है। जैनेन्द्र (1905-1988) ने 'परख' (1929), 'सुनीता' (1934) और 'त्यागपत्र' (1937) जैसे उपन्यासों से हिन्दी उपन्यास को नई दिशा दी। इलाचन्द्र जोशी (1902-1982) ने 'सन्यासी' (1941), 'पर्दे की रानी' (1942) और 'निर्वासित' (1946) जैसे उपन्यासों में मानव मन की कुण्ठाओं का विश्लेषण किया। अज्ञेय (1911-1987) के 'शेखर एक जीवनी' (1940-44), 'नदी के द्वीप' (1951) और 'अपने-अपने अजनबी' (1961) उपन्यास महत्वपूर्ण हैं, विशेष रूप से 'शेखर एक जीवनी' वैयक्तिक मनोविज्ञान में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है।

▶ 'शेखर एक जीवनी' अज्ञेय द्वारा रचित उपन्यास है

हिन्दी के साम्यवादी उपन्यास मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित हैं। यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, भैरवी प्रसाद गुप्त और अमृतराय इसी श्रेणी के उपन्यासकार हैं। यशपाल (1903-1976) ने 'पार्टी कामरेड' (1946), 'दादा कामरेड' (1941), और 'झूठा सच' (1958, 1960) जैसे उपन्यासों में अपने विचार प्रस्तुत किए। भगवतीचरण वर्मा (1903-1981) के 'चित्रलेखा' (1934) और 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' (1946) उपन्यासों में समकालीन राजनीति और सामाजिक मुद्दों का चित्रण है। अमृतलाल नागर (1916-1960) ने 'सेठ बाँकेलाल' (1955) और 'महाकाल' (1947) 'सुहाग के नूपुर' (1960), 'मानस का

▶ अमृतलाल नागर के 'बूँद और समुद्र'

हंस' (1972), 'करवट' (1985), 'पीढ़ियाँ' (1990) आदि अनेक उपन्यासों की रचना की है। अमृतलाल नागर के 'बूँद और समुद्र' उनका श्रेष्ठ उपन्यास है।

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में बाबू वृन्दावन लाल वर्मा के अतिरिक्त चतुरसेन शास्त्री और हजारीप्रसाद द्विवेदी का नाम लिया जा सकता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी (1907-1979) ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (1946), 'चारु चन्द्रलेख' (1963), 'पुनर्नवा' (1973) और 'अनामदास का पोथा' (1976) में इतिहास और कल्पना का सुन्दर मिश्रण करते हुए रोचक उपन्यासों की रचना की है। राहुल सांकृत्यायन (1893-1963) ने 'सिंह सेनापति' (1942) नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे तथा रांगेय राघव (1923-1962) ने 'मुर्दों का टीला' (1948) नामक ऐतिहासिक उपन्यास में मोहनजोदड़ो के गणतन्त्र और 'राह न रुको' (1958) में महावीर स्वामी एवं बुद्ध युग के जागरण का उल्लेख किया है।

▶ बाणभट्ट की आत्मकथा हजारीप्रसाद द्विवेदी का उपन्यास है

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हिन्दी उपन्यासों में 'आंचलिक उपन्यास' एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है, जिसमें किसी विशेष अंचल का चित्रण किया जाता है। प्रमुख आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु (1921-1977) हैं, जिन्होंने 'मैला आंचल' (1954) और 'परती परिकथा' (1957) में बिहार के ग्रामीण जीवन का विस्तृत वर्णन किया। नागार्जुन (1911-1998) के 'रतिनाथ की चाची' (1948) और 'बलचनमा' (1952) भी इस श्रेणी के महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' (1968) व्यंग्यात्मक उपन्यास है, जो स्वातंत्र्योत्तर भारत के ग्रामीण जीवन की मूल्यहीनता को उजागर करता है।

▶ व्यंग्यात्मक उपन्यासों की दृष्टि से श्रीलाल शुक्ल कृत 'राग दरबारी' उल्लेखनीय कृति

आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों की नवीनतम धारा को प्रयोगवादी उपन्यास या आधुनिकता बोध के उपन्यास कहा जाता है। औद्योगीकरण, बदलते परिवेश, भ्रष्ट व्यवस्था, और महानगरीय जीवन के कारण जीवन में तनाव, विश्रृंखलता, और अकेलापन बढ़ गया है। इस स्थिति को उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। मोहन राकेश के 'अंधेरे बन्द कमरे' (1961) और 'न आने वाला कल' (1968) ऐसे ही उपन्यास हैं। राजेन्द्र यादव का 'उखड़े हुए लोग' (1956) में टूटते व्यक्ति का चित्रण किया गया है।

▶ मोहन राकेश के उपन्यास का नाम 'अंधेरे बन्द कमरे'

मन्नू भण्डारी का 'आपका बंटी', नरेश मेहता का 'पथ बन्धु था', और निर्मल वर्मा के 'वे दिन' (1964), 'लाल टीन की छत' (1974) में आधुनिकता बोध का सहज चित्रण है। उषा प्रियंवदा के 'रुकोगी नहीं राधिका' (1967) और 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' (1961) भी इसी श्रेणी में आते हैं। भीष्म साहनी का 'तमस' (1973), मनोहर श्याम जोशी का 'कुरु कुरु स्वाहा', धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (1952), और गिरधर गोपाल का 'चाँदनी के खण्डहर' आदि इसी धारा के महत्वपूर्ण रचनाएँ है।

▶ उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिक है

मृदुला गर्ग के 'चितकोबरा' (1979) में उन्मुक्त यौन चित्रण है। लगभग यही खूबी निर्मल वर्मा के 'वे दिन' में है। श्रीकान्त वर्मा के 'दूसरी बार' (1968) में स्त्री के सामने पुरुष की हीन भावना चित्रित है। राजकमल चौधरी की 'मरी हुई मछली' में समलैंगिक सम्भोग का निःसंकोच वर्णन है। महेन्द्र भल्ला ने 'एक पति के नोट्स' (1967) में सम्भोग चित्रण में काफी रुचि दिखाई है। गोविन्द मिश्र के 'वह अपना चेहरा' (1970) में पुरुष अतीव काम विह्वल है। यशपाल जैसे अनुभवी लेखक के 'क्यों फँसे' (1968) में गर्भ निरोधक उपायों व काम वासना का ब्यौरा है। मनोहर श्याम जोशी के 'कुरु कुरु स्वाहा' (1980) और 'कसप' (1987) में केवल सेक्स की विकृतियों का निरूपण है। गिरिराज किशोर के 'यात्रायें' (1971)

में नवविवाहित दम्पति के सम्भोग न कर पाने की व्यथा चित्रित है। कृष्णा सोबती के 'सूरजमुखी अंधेरे के' (1972) में रिक्तिका (रबी) नामक लड़की की काम कुण्ठाओं की कहानी है। इनके 'मित्रो मरजानी' (1967) और 'यारों का यार' भी इसी कोटि के उपन्यास हैं। इनके जिन्दगीनामा (1979) में कथाफलक बड़ा है, जिसमें समाजशास्त्र तथा मनोविश्लेषण शास्त्र की नई खोजों के माध्यम से अपने मन्तव्य को प्रकट किया गया है।

▶ मृदुला गर्ग के उपन्यास हैं 'चितकोबरा'

महिला उपन्यासकारों के प्रमुख अधुनातन उपन्यासों में शामिल हैं:

- उषा प्रियंवदा: 'अन्तर्वशी' (2000), 'भया कबीर उदास' (2007), 'अल्पविराम' (2019)
- कृष्णा सोबती: 'दिलोदानिश' (1993), 'समय सरगम' (2000), 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' (2017)
- शशिप्रभा शास्त्री: 'खामोश होते सवाल' (1993), 'हर दिन इतिहास' (1995)
- मेहरुन्निसा परवेज: 'समरांगण' (2002), 'पासंग' (2005)
- मृदुला गर्ग: 'कठगुलाब' (1996), 'मिलजुल मन' (2009)
- चंद्रकांता: 'अपने-अपने कोणार्क' (1995), 'कथा सतीसर' (2001)
- नासिरा शर्मा: 'अक्षयवट' (2003), 'कुइँयाजान' (2005), 'जीरो रोड' (2008), 'अजनबी जरीरा' (2012)
- चित्रा चतुर्वेदी: 'वैजयंती' (दो खंड, 1996), 'अम्बा नहीं मैं भीष्मा' (2004)
- मैत्रेयी पुष्पा: 'अल्मा कबूतरी' (2000), 'कहे ईसुरी फाग' (2004), 'त्रियाहठ' (2005)
- चित्रा मुद्गल: 'आवाँ' (2000), 'गिलिगडु' (2002), 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203-नाला सोपारा' (2016)
- अलका सरावगी: 'कलिकथा: वाया बाई पास' (1998), 'कोई बात नहीं' (2004), 'एक ब्रेक के बाद' (2008)
- मधु कांकरिया: 'सलाम आखिरी' (2002), 'पताखोर' (2005), 'सेज पर संस्कृत' (2008)
- महुआ माजी: 'मरंग गोड़ा नील कंठ हुआ' (2012)
- रजनी गुप्ता: 'कुल जमा बीस' (2012)
- मनीष कुलश्रेष्ठ: 'शाल भंजिका' (2012)

▶ महिला उपन्यासकार

ये उपन्यास महिला लेखन की विविधता और गहराई को दर्शाते हैं।

4.2.2 हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार

4.2.2.1 प्रेमचंद

▶ प्रेमचंद जन्म 31 जुलाई, 1880 में हुआ था

प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के एक प्रमुख कथाकार और उपन्यासकार हैं, जिन्हें विश्व स्तर पर मान्यता मिली है। हिन्दी साहित्य जगत उन्हें 'उपन्यास सम्राट' के नाम से सम्मानित किया है। उनका जन्म 31 जुलाई, 1880 को उत्तर प्रदेश के लमही गाँव में हुआ था, और असली नाम धनपत राय था। 1909 में उनका पहला कहानी-संग्रह 'सोज़ेवतन' प्रकाशित हुआ था, जिसे

अंग्रेजों ने राजद्रोही साहित्य मानकर जब्त कर लिया था। उन्होंने 1914 के उपरांत हिन्दी में लेखन प्रारंभ किया।

प्रेमचंद मूलतः अध्यापक थे और पदोन्नति के बाद जिला विद्यालय निरीक्षक जैसे महत्वपूर्ण पदों पर रहे। गांधी जी से प्रभावित होकर उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और स्वतंत्र रूप से लेखन, सम्पादन, और निजी विद्यालय में अध्यापन करने लगे। वे 8 अक्टूबर, 1936 को स्वर्ग सिधारे। उनकी कहानियाँ ग्रामीण परिवेश का जीवंत दस्तावेज हैं, और उनके पात्र हमारे आस-पास के हैं। इनका प्रकाशित साहित्य विपुल है, जिसमें लगभग 300 कहानियाँ, उपन्यास, नाटक, लेख संग्रह, जीवनियाँ, बाल साहित्य आदि मौलिक रचनाएँ हैं। प्रेमचंद जी का अनुवाद-साहित्य भी काफी मात्रा में प्रकाशित हुआ है। स्वयं प्रेमचंद जी ने कुछ अनुवाद किए हैं।

▶ प्रेमचंद की कहानियाँ ग्रामीण परिवेश का जीवंत दस्तावेज हैं

उनके उपन्यास निम्नलिखित हैं

'सेवासदन'(1918), 'वरदान' (1921), 'प्रेमाश्रम' (1921), 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1927), 'प्रतिज्ञा' (1929), 'गबन' (1931), 'कर्मभूमि' (1932), 'गोदान' (1929), 'मंगलसूत्र' (अपूर्ण)

प्रेमचंद के उपन्यास सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर आधारित हैं। उन्होंने 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', और 'कर्मभूमि' में धार्मिक और राजनीतिक कुरीतियों का वर्णन किया। 'सेवा सदन' में दहेज प्रथा और बेमेल विवाह की समस्या उठाई गई है। 'प्रेमाश्रम' में किसानों की आर्थिक स्थिति को दर्शाया गया है, जबकि 'रंगभूमि' में औद्योगिकीकरण और पूँजीवाद के दोषों पर चर्चा की गई है। 'गबन' में मध्यवर्ग की समस्याएँ, जैसे सामाजिक प्रदर्शन को दिखाया गया है। 'कर्मभूमि' में अछूतोद्धार और मजदूरों की समस्याएँ भी शामिल हैं। 'गोदान' प्रेमचंद का अंतिम(पूर्ण) उपन्यास है, जिसमें होरी किसानों का प्रतिनिधित्व करता है। उनकी भाषा जीवंत और प्रभावशाली है, जो उनके विचारों को अच्छी तरह से व्यक्त करती है। प्रेमचंद का आदर्शवाद अंततः यथार्थ में बदल गया है।

▶ मंगलसूत्र प्रेमचंद का अपूर्ण उपन्यास है

प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास-साहित्य की प्रेरक, सशक्त और स्फूर्तिदायिनी परम्परा सामाजिक जागृति के वाहक उपन्यासों की ही मानी जा सकती है। इन्हीं उपन्यासों ने 'सेवासदन' की रचना की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की और प्रेमचन्द के आगमन के साथ हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में एक नये युग का आरम्भ हुआ। प्रेमचन्द इस नवीन युग-चेतना के अग्रदूत बने।

▶ प्रेमचन्द के आगमन के साथ हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में एक नये युग का आरम्भ हुआ

4.2.2.2 यशपाल

'झूठा सच' देश-विभाजन की त्रासदी पर आधारित उपन्यास है, जिसमें सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का सफल चित्रण किया गया है। भैरव प्रसाद गुप्त ने 'मशाल' और 'सती मैया का चौरा' जैसे उपन्यासों में मार्क्सवादी विचारधारा को अभिव्यक्त किया। यशपाल ने प्रेमचंद के यथार्थवादी दृष्टिकोण को आगे बढ़ाया और उनके उपन्यास समाजवादी यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं। 'दादा कामरेड' में पूँजीवाद और आतंकवाद का विरोध करते हुए समाजवाद का समर्थन किया गया है, जबकि 'देशद्रोही' और 'पार्टी कामरेड' में विभिन्न राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण है। यशपाल की कथा कहने की क्षमता अद्भुत है, पर उनकी रचनाएँ पूर्वनिर्मित विचारधारा के प्रभाव में होने के कारण कभी-कभी अपेक्षित गहराई से वंचित रह जाती हैं।

▶ यशपाल मार्क्सवाद से प्रभावित है

4.2.2.3 जैनेंद्र कुमार

जैनेंद्र ने अपने उपन्यासों में व्यक्ति की गुम होती हुई पहचान को उभार कर सामने रखा। उनके उपन्यासों में अनमेल विवाह या दहेजप्रथा जैसी समस्याएँ नहीं हैं, बल्कि विवाह स्वयं में एक समस्या है, क्योंकि सारी अनिश्चितताएँ उसके बाद आरंभ होती हैं। किंतु जिस मुक्ति की समस्या पर उन्होंने बल दिया, उसके आड़े आते हैं रूढ़ संस्कार, और इस प्रकार जैनेंद्र का प्रत्येक उपन्यास अंतर्विरोधों का उपन्यास बन गया है। आलोच्य युग में प्रकाशित उनके उपन्यासों 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतीत', 'जयवर्धन' आदि में यह प्रवृत्ति मनोविज्ञान, दार्शनिकता, वैयक्तिकता आदि के माध्यम से विविध रूपों में उभरी है। उनके नारीपात्र यदि एक ओर समाज की मर्यादाओं को बनाये रखना चाहते हैं, वहीं दूसरी ओर अपने अस्तित्व की पहचान भी करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में आत्मयातना के अतिरिक्त और कोई राह शेष नहीं रहती। उनके पात्र समाज को न तोड़ कर स्वयं टूटते हैं, किंतु अपने को तोड़ कर किसी को निर्मित नहीं करते। नियति, ईश्वर, धर्म आदि में अटूट आस्था उनके उपन्यासों को आधुनिक नहीं बनने देती, वे रोमैंटिक 'एगोनी' का रूप ले लेते हैं।

▶ रोमैंटिक 'एगोनी' का रूप

4.2.2.4 अज्ञेय

अज्ञेय-कृत 'शेखर : एक जीवनी' (1941-1944) के प्रकाशन के साथ हिन्दी-उपन्यास की दिशा में एक नया मोड़ आया। इस उपन्यास को ले कर आलोचकों में भारी मतभेद रहा। किसी ने इसे प्रकाशमान पुच्छल तारा कह कर प्रशंसा की, तो किसी ने अतिशय आत्मकेंद्रित बता कर इसके कथानक को असंबद्ध, विश्रृंखलित माना। इन विरोधी सम्मतियों से सिद्ध होता है कि कथ्य, शिल्प और भाषा की दृष्टि से यह परंपरा से हट कर एक नया प्रयोग था। जिसे आज आधुनिकता की संज्ञा दी जाती है, उसका सर्वप्रथम समावेश इसी उपन्यास में दिखायी देता है।

▶ अज्ञेय-कृत 'शेखर : एक जीवनी' को प्रकाशमान पुच्छल तारा कह कर प्रशंसा की

अज्ञेय के दूसरे उपन्यास 'नदी के द्वीप' (1951) को सामान्यतः शेखर की संवेदना का विकास माना जाता है। शेखर और भुवन तथा रेखा और शशि में एक तरह का सादृश्य लगता है, पर इस पर ज़ोर नहीं देना चाहिए, 'नदी के द्वीप' को स्वतंत्र कृति के रूप में मूल्यांकित करना अधिक संगत है। शेखर की तुलना में भुवन की तेजस्विता कृत्रिम, आरोपित और अविश्वसनीय है। वह ठीक ढंग से स्थित (सिचुएट) नहीं हो पाता, फलस्वरूप आत्मकेंद्रित और दंभी बन जाता है। 'अपने-अपने अजनबी' (1961) अज्ञेय का तीसरा उपन्यास है, जिसमें एक प्रकार की धार्मिक दृष्टिसंपन्नता दिखायी पड़ती है। पहले दोनों उपन्यासों में यौन-कल्ट की स्थापना के साथ-साथ उन्होंने मसीहाई दृष्टिकोण भी अपनाया है, 'अपने-अपने अजनबी' इसी की फलश्रुति है। इसमें मुख्य समस्या स्वतंत्रता के वरण की है, जो संत्रास, अकेलेपन, बेग़ानगी, मृत्युबोध, अजनबीपन आदि से सहज ही संयुक्त हो गयी है। स्वतंत्रता को अहंकार से जोड़ कर अज्ञेय ने इसमें अस्तित्ववादी स्वतंत्रता के मूल अर्थ को ही बदल दिया है।

▶ 'अपने-अपने अजनबी' (1961) अज्ञेय का तीसरा उपन्यास है

4.2.2.5 फणीश्वरनाथ रेणु

फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने हिन्दी उपन्यास में आंचलिक उपन्यास की एक नई विधा स्थापित की, जिसका मानक 'मैला आँचल' (1954) है। आंचलिकता गद्य की विशिष्ट सर्जनात्मकता है, जो एक अंचल की विशेषताओं को व्यापक रूप से प्रस्तुत करती है। 'रेणु' का यह उपन्यास अपनी अद्वितीयता के कारण अलग बना, और इसकी अनुकरण करना बाद की कथा-कृतियों के लिए संभव नहीं हो पाया।

▶ फणीश्वरनाथ 'रेणु' का पहला उपन्यास 'मैला आँचल'

4.2.2.6 भीष्म साहनी

▶ मानवता का स्वर सुनाई देता है

भारतीय जनमानस से गहराई से जुड़े भीष्म साहनी बीसवीं सदी के हिन्दी के प्रमुख कथाकार एवं नाटककार हैं। उनकी मान्यता है कि रचनाकार अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के द्वारा रचना को मानवीय संवेदना के ऐसे धरातल पर पहुँचा देता है, जहाँ पूरी मानवता का स्वर सुनाई देता है। कथा-साहित्य भीष्म साहनी के साहित्य सर्जना के केन्द्र में है। साथ ही उन्होंने नाटक, निबन्ध, आलोचना, आत्मकथा, जीवनी आदि विधाओं में भी अपनी लेखनी चलाई है। अपनी रचनाओं के माध्यम से भीष्म साहनी ने अपने समय व समाज की शिनाख्त की है तथा सत्ता व समाज की विद्रूपताओं का पर्दाफाश किया है।

उनके उपन्यास हैं - 'झरोखे', 'तमस', 'बसंती', 'मय्यादास की माड़ी', 'कुन्तो' और 'नीलू, निलिमा, नीलोफर' आदि। इनमें मानव अनुभव और सामाजिक मुद्दों के विभिन्न पहलुओं की पड़ताल की गई है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी उपन्यास का इतिहास एक सदी से भी अधिक पुराना है और इसने भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। प्रारंभिक युग (1877-1918) में पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी का 'भाग्यवती' को हिन्दी का पहला आधुनिक उपन्यास माना जाता है, जबकि प्रेमचंद का 'सेवासदन' इस युग की रचना है जिससे उपन्यास रचना को नई दिशा मिली। इस काल के उपन्यासों ने सामाजिक सुधार और उपदेश को लक्ष्य रखा। देवकीनंदन खत्री के तिलस्मी उपन्यास और गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास भी इस युग के महत्वपूर्ण दिशा सूचक हैं ।

20वीं सदी की शुरुआत में, प्रेमचंद जैसे लेखकों ने हिन्दी उपन्यास को नया दिशा प्रदान किया। उनके 'गोदान' और 'सेवासदन' ने ग्रामीण जीवन और सामाजिक यथार्थवाद को प्रमुखता से प्रस्तुत किया, जिससे समाज में जागरूकता और संवेदनशीलता उत्पन्न हुई। प्रेमचंद के समकालीन लेखकों में जयशंकर प्रसाद, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', और वृन्दावन लाल वर्मा शामिल थे, जिन्होंने सामाजिक मुद्दों को अपने लेखन में समेटा।

1950 के दशक से 1980 के दशक तक, हिन्दी उपन्यास ने नई शैलियों और विषयों का प्रयोग किया। मनोविश्लेषणवादी और साम्यवादी उपन्यासकारों ने भी इस काल में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जैसे कि अज्ञेय, यशपाल, और अमृतलाल नागर आदि।

वर्तमान समय में, हिन्दी उपन्यास ने ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय, और व्यक्तिगत दृष्टिकोण को अपनाकर साहित्यिक परंपरा को समृद्ध किया है। उपन्यासकारों ने आधुनिक समाज के जटिल पहलुओं, व्यक्तित्व के संघर्षों और सामाजिक परिवर्तनों को अपने कृतियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इस प्रकार, हिन्दी उपन्यास साहित्य ने विकास की एक लंबी यात्रा की है, जिसमें विषय विविधता और शिल्पगत नवीनता की अनगिनत मिसालें हैं।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी उपन्यास के उद्‌भव एवं विकास के बारे में टिप्पणी लिखिए।
2. हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकारों पर आलेख तैयार कीजिए।
3. समकालीन उपन्यास एवं उपन्यासकार के बारे टिप्पणी लिखिए।
4. महिला उपन्यासकारों पर विचार कीजिए।
5. समकालीन हिन्दी उपन्यास के योगदान पर टिप्पणी में लिखए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी का गद्यसाहित्य - डॉ. रामचन्द्र तिवारी
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
3. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
5. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
6. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
7. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 3

हिन्दी नाटक का विकास एवं प्रमुख नाटककार, प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक, द्विवेदी युगीन नाटक, प्रसादयुगीन नाटक, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक- नुक्कड़ नाटक, हिन्दी के प्रमुख नाटककार-भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, जगदीशचंद्र माथुर, रामकुमार वर्मा

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- आधुनिक हिन्दी नाटक के उद्भव एवं विकास के बारे में समझता है
- नाटककार जयशंकर प्रसाद के बारे में समझता है
- हिन्दी के प्रमुख नाटककार के बारे में समझता है
- नाटककार जयशंकर प्रसाद के बारे में समझता है

Background / पृष्ठभूमि

हिन्दी नाटक का उद्भव - हिन्दी नाटकों की वास्तविक शुरुआत तो 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' के युग से ही मानी जाती है। लेकिन इससे पूर्व की कुछ नाट्य कृतियों का उल्लेख मिलता है। जिसके कारण इतिहासकारों में यह सवाल भी हमेशा से रहा है कि 'हिन्दी का प्रथम नाटक किसे माना जाए?' कई विद्वानों ने हिन्दी का प्रथम नाटक 'भारतेंदु' के पिता 'गोपालचंद्र गिरिधरदास' द्वारा रचित 'नहुश' को माना, तो कइयों ने 'महाराज विश्वनाथ' के 'आनंद रघुनंदन' नामक नाटक को। ऐसे ही कोई 'शीतला प्रसाद त्रिपाठी' के 'जानकी मंगल' को मानते हैं तो कोई 'नेवाज' कृत 'शकुंतला' नामक नाटक को। इस प्रकार देखा जाए तो यहाँ भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद मिलता है लेकिन अधिकांश विद्वानों ने ब्रजभाषा में लिखे गए 'आनंद रघुनन्दन' नामक नाटक को ही हिन्दी का प्रथम नाटक स्वीकार किया है, क्योंकि इसमें नाटक के तत्वों के रूप में कथोपकथन, अंक विभाजन, रंग संकेत आदि मिलते हैं और साथ ही शास्त्रीय नियमों आदि का प्रयोग भी किया गया है, इसलिए विद्वानों ने इसे ही हिन्दी का प्रथम नाटक माना है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

नाटक का उद्भव, प्रमुख नाटककार, नुक्कड नाटक, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, जगदीशचंद्र माथुर, रामकुमार वर्मा

Discussion / चर्चा

4.3.1 हिन्दी नाटक का विकास एवं प्रमुख नाटककार

हिन्दी में नाटक के स्वरूप का समुचित विकास आधुनिक युग के आरम्भ से होता है। सन् 1850 से अब तक के युग को हम नाट्य-रचना की दृष्टि से तीन खण्डों में विभक्त कर सकते हैं

1. प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक
2. प्रसाद युग
3. प्रसादोत्तर युग

4.3.1.1 प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक

▶ भारतेंदु के नाटकों में सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय जागरण के स्वर मुखरित है

भारतेंदु युगीन हिन्दी नाटक साहित्य 19वीं शताब्दी में प्रारंभ हुआ। इस युग में नाटक ने गद्य की प्रमुख विधा के रूप में अपना स्थान स्थापित किया था। भारतेंदु हरिश्चंद्र को इस युग का महत्वपूर्ण नाटककार माना जाता है। उन्होंने संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी नाटकों के प्रभाव में मौलिक नाटक लिखे। उनके नाटकों में सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय जागरण के स्वर को प्रमुखता दी गई। भारतेंदु के प्रमुख नाटकों में 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' और 'चंद्रावली' शामिल हैं। उन्होंने संस्कृत के 'रत्नावली' और 'मुद्राराक्षस' जैसे नाटकों का अनुवाद भी किया। बंगला से उन्होंने 'सत्यहरिश्चंद्र' का अनुवाद किया। उनका 'अंधेर नगरी' एक व्यंग्यात्मक नाटक था जो तत्कालीन सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालता है।

▶ प्रहसन इस युग के नाटककारों की सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति करते हैं

भारतेंदु के समय के अन्य नाटककारों ने भी नाटक के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने व्यंग्यात्मक नाटक जैसे 'गौ संकट' और 'हमीर हठ' लिखे। पंडित बालकृष्ण भट्ट ने पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक रचे, जैसे 'दमयंती स्वयंवर' और 'वेणी संहार'। राधाकृष्ण दास ने ऐतिहासिक नाटक जैसे 'महाराणा प्रताप सिंह' और 'महारानी पद्मावती' लिखे। लाला श्रीनिवास दास के 'रणधीर' और 'प्रेम मोहिनी' जैसे दुखांत नाटक महत्वपूर्ण रहे। देवकी नंदन खत्री के नाटक जैसे 'सीताहरण' और 'रुक्मिणी हरण' प्रसिद्ध हुए। काशीनाथ खत्री ने लघु रूपकों को लिखा, जैसे 'ग्रामपाठशाला' और 'गुन्नौर की रानी'। भारतेंदु युगीन नाटक सामाजिक सुधार और आदर्श की स्थापना के लिए लिखे गए थे। नाटकों के माध्यम से स्त्री की दीन दशा और सामाजिक बुराइयों पर प्रकाश डाला गया। ऐतिहासिक नाटकों ने भारतीय महापुरुषों के गौरव को उजागर किया। पौराणिक नाटकों ने भारतीय संस्कृति से जन को जोड़ा। इस युग में नाटकों के अनुवाद भी महत्वपूर्ण थे। संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद ने हिन्दी नाटक को समृद्ध किया। यह युग प्राचीन और नवीन काव्य प्रवृत्तियों का संगम माना गया। रीतिकालीन परंपरा के अनुरूप पौराणिक नाटक भी लिखे गए। सामाजिक, ऐतिहासिक और प्रेम प्रधान नाटकों ने इस युग की विविधता को दर्शाया। प्रहसन इस युग के नाटककारों की सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति करते हैं। यथार्थ की ओर झुकाव इस युग के नाटककारों की विशेषता थी। लक्ष्मी नारायण वार्ष्णेय के अनुसार, भारतेंदु युगीन नाट्य साहित्य में नवोत्थानकालीन भावना स्पष्ट रूप से प्रकट हुई। इस युग के नाटक आधुनिक भारत की चेतना को दर्शाते हैं।

द्विवेदी-युग हिन्दी नाट्यसाहित्य के विकास को आगे बढाने में उतना सहयोग नहीं दिया।

जिसमें नाटकों की संख्या तो अधिक थी लेकिन साहित्यिक गुणवत्ता की दृष्टि से वे महत्वपूर्ण नहीं थे। इस समय पौराणिक, ऐतिहासिक, सामयिक, प्रहसन और अनूदित नाटकों का लेखन हुआ। प्रमुख रचनाकारों में गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, और बद्रीनाथ भट्ट शामिल हैं। इस युग के नाटकों पर पारसी नाटकों का प्रभाव अधिक था। बद्रीनाथ भट्ट कुछ हद तक अपवाद थे, फिर भी उनके नाटक भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे।

▶ 'रणधीर-प्रेममोहिनी' हिन्दी का पहला दुःखांत नाटक है

4.3.1.2 प्रसाद युगीन हिन्दी नाटक

प्रसाद युगीन हिन्दी नाटक साहित्य का विकास भारतेंदु युग के बाद हुआ जिससे आधुनिक नाटक के विकास का सूत्रपात हुआ। इस युग की शुरुआत जयशंकर प्रसाद के आगमन से हुई। भारतेंदु द्वारा स्थापित नाट्य परंपरा को प्रसाद ने नई दिशा दी। उन्होंने अपने नाटकों में इतिहास, दर्शन, और संस्कृति को प्रमुखता दी। उनका उद्देश्य भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंशों को उजागर करना था। प्रसाद के आरंभिक प्रमुख नाटकों में 'सज्जन', 'प्रायश्चित', 'कल्याणी परिणय', और 'विशाख' शामिल हैं। चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त उनके चर्चित ऐतिहासिक नाटक हैं। उनके ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय, सांस्कृतिक चेतना की गूँज थी। उन्होंने पूर्वी और पश्चिमी नाट्य तत्वों का समन्वय किया, जिससे एक नई नाट्य परंपरा का निर्माण हुआ।

▶ प्रसाद के नाटकों में इतिहास, दर्शन, और संस्कृति को प्रमुखता दी

प्रसाद ने अपने नाटकों में देशभक्ति, राष्ट्र प्रेम, और साम्राज्यवाद का विरोध किया।। उनकी अभिनेयता और रंगमंचीयता पर आलोचनाएँ भी हुईं। रंगमंच के प्रारंभिक वर्षों में उनकी नाटकीय संभावनाओं पर सवाल उठाए गए। समकालीन नाटककार हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने सांस्कृतिकता पर जोर दिया और हिन्दू-मुस्लिम एकता को दर्शाया। उनके नाटक 'रक्षाबंधन', 'प्रतिशोध', और 'स्वप्न भंग' प्रसिद्ध हैं। प्रसाद युग के दौरान गीति नाटकों की रचना हुई, जिसमें मैथिलीशरण गुप्त और उदयशंकर भट्ट प्रमुख थे। गीति नाटकों में 'अनघ', 'राधा', और 'मत्स्यगंधा' शामिल हैं।

▶ गीति नाटकों में 'अनघ', 'राधा', और 'मत्स्यगंधा' प्रमुख हैं

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने यथार्थवाद को महत्व दिया। उनके नाटक 'राक्षस का मंदिर', 'सिंदूर की होली', और 'सन्यासी' महत्वपूर्ण हैं। इस युग में अनुवाद का कार्य भी हुआ। संस्कृत, अंग्रेजी, और बंगला नाटकों के अनुवाद किए गए।

▶ लक्ष्मीनारायण मिश्र ने यथार्थवाद को महत्व दिया

प्रसाद युग का नाटक साहित्य समाज की समस्याओं और सांस्कृतिक चेतना को दर्शाता है। इस काल में हिन्दी रंगमंच का विकास हुआ और प्रसाद के नाटकों की रंगमंचीय संभावनाएँ प्रकट हुईं। उनका नाट्य साहित्य आधुनिक भारतीय चेतना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

▶ समाज की समस्याओं और सांस्कृतिक चेतना को दर्शाता है

4.3.1.3 प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक

प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक में एक नया मोड़ आया, जिसमें एकांकी नाटक का प्रचलन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस युग के प्रमुख नाटककारों में उपेन्द्रनाथ अश्क, रामकुमार वर्मा, जगदीशचन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, भुवनेश्वर, और उदय शंकर भट्ट शामिल हैं। चौथे दशक के अंत से हिन्दी नाट्य साहित्य में एक नया और सार्थक दौर शुरू हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में जागरूकता बढ़ी। इस जागरूकता के साथ ही रंगमंच और नाटक के संबंधों के प्रति गहरी समझ विकसित हुई।

▶ एकांकी नाटक का प्रचलन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं

उपेन्द्रनाथ अश्क ने मध्य वर्गीय जीवन की समस्याओं को नाटकों में प्रस्तुत किया। उन्होंने

▶ मध्यम वर्गीय जीवन की समस्याओं को नाटकों में प्रस्तुत किया

व्यंग्य का प्रयोग करके गंभीर समस्याओं को हल्के ढंग से व्यक्त किया। उनके प्रमुख नाटक 'अंजो दीदी', 'स्वर्ग की झलक', 'छठा बेटा', 'कैद' और 'अलग अलग रास्ते' हैं। अश्क ने नाटक और रंगमंच को जोड़ने का प्रयास किया।

▶ धर्मवीर भारती का 'अंधायुग'

जगदीश चन्द्र माथुर ने भी इसी दिशा में योगदान दिया। उनके नाटक 'कोणार्क' में प्राचीन युग की सामाजिक व्यवस्था को दर्शाया है। 'शारदीया' और 'पहला राजा' ऐतिहासिक नाटक हैं। 1955 में धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' आया, जिसमें कविता और नाटक दोनों का संयोजन किया गया।

▶ नाटक और रंगमंच के बीच गहरी संबंधों पर ध्यान दिया

दुष्यन्त कुमार का 'एक कण्ठ' और सुमित्रानंदन पंत का 'शिल्पी' काव्य-नाटक के उदाहरण हैं। मोहन राकेश ने नाटक और रंगमंच के बीच गहरी संबंधों पर ध्यान दिया। उनके नाटक 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों का राजहस', और 'आधे अधूरे' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। राकेश ने जीवन की गहन अनुभूतियों को अतीत और वर्तमान में तलाशने का प्रयास किया।

▶ प्रेमचन्द के 'गबन' और 'गोदान' का नाट्य रूपांतर 'चंद्रहार' और 'होरी' नाम से किया

लाला लक्ष्मी नारायण मिश्रा ने भी नाटक और रंगमंच में महत्वपूर्ण योगदान किया। उनके प्रमुख नाटक 'अंधा कुआँ', 'तीन आँखों वाली मछली', 'मादा कैक्टस', 'तोता मैना', 'रातरानी', 'मिस्टर अभिमन्यु', और 'दर्पण' हैं। विष्णु प्रभाकर ने नाटक के साथ-साथ प्रसिद्ध उपन्यासों और कहानियों का नाट्य रूपांतर किया। उन्होंने प्रेमचन्द के 'गबन' और 'गोदान' का नाट्य रूपांतर 'चंद्रहार' और 'होरी' नाम से किया।

▶ नाटकों में जीवन की विविध समस्याओं और संवेदनाओं को प्रकट किया

अन्य प्रमुख नाटककारों में विनोद रस्तोगी, नरेश मेहता, लक्ष्मीकान्त वर्मा, शिवप्रसाद सिंह, मन्नु भंडारी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मुद्राराक्षस, शंकर शेष, भीष्मसाहनी और सुरेन्द्र वर्मा शामिल हैं। इनके नाटकों में जीवन की विविध समस्याओं और संवेदनाओं को प्रकट किया गया है।

▶ नाटक के क्षेत्र में अनुवाद का महत्व बढ़ गया

इस युग में नाटक के क्षेत्र में अनुवाद का महत्व बढ़ गया। मराठी, बंगला, गुजराती, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, और मलयालम भाषाओं से हिन्दी में अनूदित नाटक मंच पर प्रस्तुत किए जा रहे हैं। अंग्रेजी के नाटकों के भी हिन्दी में अनुवाद हुए हैं, जैसे रवींद्रनाथ ठाकुर, शंभुमित्र, गिरीश कर्नाड, विजय तेंदुलकर, बादल सरकार, मोलियर, टॉल्सटॉय, इब्सन, चेखव, और शेक्सपियर के नाटक।

▶ 1960 के बाद नाटक और रंगमंच में नवीनता और नई उपलब्धियों को अपनाया गया

1960 के बाद नाटक और रंगमंच में नवीनता और नई उपलब्धियों को अपनाया गया। जीवन की गंभीर समस्याओं को व्यापक स्तर पर प्रस्तुत करने के लिए नाटकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्त्री-पुरुष संबंधों के बदलते स्वरूप और उनका विश्लेषण भी इन नाटकों में देखने को मिला। नाटक को रंगमंच से जोड़ने के लिए विभिन्न प्रयास किए गए हैं। महानगरों के साथ-साथ छोटे शहरों में भी रंगमंच के महत्व को स्थापित किया गया है। सत्यदेव दुबे, जालान, प्रतिभा अग्रवाल, हबीब तनवीर, अमाला अल्लाना, बलराम पंडित, दीनानाथ, ओम शिवपुरी, और इब्रहिम अल्काती जैसे सफल नाट्य निर्देशकों ने नाटकों का सफल मंचन किया।

▶ हिन्दी में अनूदित नाटकों में गिरीश कर्नाड का 'तुगलक' और 'हयवदन' महत्वपूर्ण हैं

साठ के दशक के बाद नाटक की परंपरागत पद्धतियों के साथ लोक-नाट्य शैलियों की लोकप्रियता भी बढ़ी है। हबीब तनवीर के नाटकों में छत्तीसगढ़ी नाया शैली, उत्तर प्रदेश की 'नौटंकी शैली', और राजस्थान की 'ख्याल शैली' का योगदान अविस्मरणीय है। हिन्दी

में अनूदित नाटकों में गिरीश कर्नाड का 'तुगलक' और 'हयवदन' महत्वपूर्ण और चर्चित नाटक हैं।

▶ प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक में अनेक महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं

प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक में अनेक महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। इस युग में एकांकी नाटक का प्रचलन बढ़ा, जिसमें उपेन्द्रनाथ अश्क, रामकुमार वर्मा, और जगदीश चंद्र माथुर जैसे नाटककारों ने प्रमुख योगदान दिया। उपेन्द्रनाथ अश्क ने मध्यम वर्गीय जीवन की समस्याओं को व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया। जगदीश चंद्र माथुर के नाटक प्राचीन और ऐतिहासिक युग की सामाजिक व्यवस्थाओं को दर्शाते हैं।

▶ हिन्दी नाटकों में निरंतर विकास हुआ

धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' कविता और नाटक के संयोग से बना काव्य नाटक है। मोहन राकेश ने नाटक और रंगमंच के तत्वों को ध्यान में रखते हुए मानवीय संवेदनाओं की गहरी अभिव्यक्ति की। लक्ष्मी नारायण मिश्रा और विष्णु प्रभाकर ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अंततः भारतेंदु युग से लेकर आज तक हिन्दी नाटकों में निरंतर विकास हुआ है। परंपरागत स्वरूपों को स्वीकार करते हुए नवीन प्रयोग किए गए हैं। इस प्रकार, हिन्दी नाटक और रंगमंच ने उल्लेखनीय उन्नति की है।

4.3.2 नुक्कड़ नाटक

▶ नुक्कड़ नाटक हिन्दी नाटक का नवीनतम प्रयोग है

नुक्कड़ नाटक मजमा, नट, मदारी, स्वांग, तमाशा, नौटंकी जैसे लोकनाट्य रूपों की प्रेरणा से ही विकसित हुआ है। नुक्कड़ नाटक हिन्दी नाटक का नवीनतम सोपान है। यद्यपि भारतीय नाट्य शास्त्र में दर्शकों से नाटक की निकटता की अपेक्षा की गई थी किंतु सड़क पर नुक्कड़ नाटक का रूप नयापन लेकर आता है। इस नाटक का फार्म लचीला है तथा बगैर रंगमंचीय तामझाम के आसानी से खेला जा सकता है। इस क्षेत्र में बादल सरकार के 'जुलूस' ने तो एक महत्वपूर्ण कीर्ति स्थापित की थी, किंतु 1986 में सफदर हाशमी इस विधा के युग पुरुष बनकर सामने आए। सफदर हाशमी की हत्या 'हल्ला बोल' के नुक्कड़ नाटक के दौरान हुई, जो एक असहिष्णुता की घटना सिद्ध हुई। इसमें कोई शंका नहीं कि नाटक को रंगमंच की सीमाओं से निकालकर नुक्कड़ तक पहुँचाना नाटक के विकास का महत्वपूर्ण सोपान है।

▶ नुक्कड़ नाटक अंग्रेजी के 'स्ट्रीट प्ले' का पर्याप्य है

नुक्कड़ नाटक, जिसे अंग्रेजी के 'स्ट्रीट प्ले' का पर्याय माना जाता है। इसका प्रचलन सामाजिक अशांति और असंतोष से हुआ है। जिसके मूल में राजनीतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि थी। इसका उद्देश्य समाज में व्याप्त शोषण को दिखाना और जनता की समस्याओं को नाटक के ज़रिए साझा करना है। इसलिए इसे रंगभूमि से निकालकर खुले स्थलों पर लाया गया। इसका मकसद समाज में जागरूकता बढ़ाना और समस्याओं के समाधान के लिए लोगों को प्रेरित करना है।

▶ नुक्कड़ नाटक एक विशिष्ट नाट्य रूप है

नुक्कड़ नाटक के क्षेत्र में कई नाटककार तथा उनकी नाट्य कृतियाँ उभरकर सामने आई हैं। उनमें सफदर हाशमी की 'हल्ला बोल', 'राजा का बाजा' 'जिंदाबाद- मुरदाबाद', 'औरत', 'मशीन', 'जंगीराम की हवेली', 'गाँव से शहर तक', 'अपहरण भाई चारे का', 'अपहरण' आदि प्रमुख हैं। अन्य नाटककारों में रमेश उपाध्याय का 'हरिजन दहन', कुसुमकुमार का 'सुनो शेफाली', अजहर वसाहत क 'इन्ना की आवाज', रामेश्वर प्रेम का 'राजा नंगा है', मुद्राराक्षस का 'तेंदुआ' आदि नुक्कड़ नाटक प्रसिद्ध है।

4.3.3 हिन्दी के प्रमुख नाटककार

4.3.3.1 भारतेन्दु हरिश्चंद्र

भारतेंदु ने पारसी नाटकों के विपरीत जनसामान्य को जागृत करने एवं उनमें आत्मविश्वास जगाने के उद्देश्य से नाटक लिखे हैं। इसलिए उनके नाटकों में देशप्रेम, न्याय, त्याग, उदारता जैसे मानवीय मूल्य नाटकों की मूल संवेदना बनकर आए हैं प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम एवं ऐतिहासिक पात्रों से प्रेरणा लेने का प्रयास भी इन नाटकों में हुआ है। भारतेंदु के लेखन की एक मुख्य विशेषता यह है कि वह अक्सर व्यंग्य का प्रयोग यथार्थ को तीखा बनाने में करते हैं। हालांकि उसका एक कारण यह भी है कि तत्कालीन पराधीनता के परिवेश में अपनी बात को सीधे तौर पर कह पाना संभव नहीं था। इसलिए जहाँ भी राजनीतिक, सामाजिक चेतना, के बिंदु आए हैं वहाँ भाषा व्यंग्यात्मक हो चली है। इसलिए भारतेंदु ने कई प्रहसन भी लिखे हैं।

▶ मानवीय मूल्य नाटकों की मूल संवेदना

भारतेंदु ने मौलिक व अनूदित दोनों मिलाकर 17 नाटकों का सृजन किया। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' मांस भक्षण पर व्यंग्यात्मक शैली में लिखा गया नाटक है। 'प्रेमयोगिनी' में काशी के धर्माडंबर को वहीं की बोली और परिवेश में व्यंग्यात्मक चित्रण किया गया है। 'विषस्य विषमौषधम्' में अंग्रेजों की शोषण नीति और भारतीयों की महाशक्ति मानसिकता पर चुटीला व्यंग है। 'चंद्रावली' वैष्णव भक्ति पर लिखा गया नाटक है। 'अंधेर नगरी' में राज व्यवस्था की स्वार्थपरखता, भ्रष्टाचार, विवेकहीनता एवं मनुष्य की लोभवृति पर तीखा व्यंग्य है जो आज भी प्रासंगिक है। 'नीलदेवी' में नारी व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा है। यह दुखांत नाटक की परंपरा के नजदीक है। 'भारत दुर्दशा' में पराधीन भारत की दयनीय आर्थिक स्थिति एवं सामाजिक सांस्कृतिक अधः पतन का चित्रण है। 'सती प्रताप' सावित्री के पौराणिक आख्यान पर लिखा गया है। भारतेंदु ने अंग्रेजी के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' नाटक का 'दुर्लभबंधु' नाम से अनुवाद भी किया है। भारतेंदु के नाटक सोद्देश्य से लिखे गए हैं। उनकी भाषा आम आदमी की भाषा है। लोकजीवन के प्रचलित शब्द मुहावरे एवं अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी के सहज प्रयोग में आने वाले शब्द उनके नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं।

▶ 'सती प्रताप' सावित्री के पौराणिक आख्यान पर लिखा गया है

वैसे उन्होंने 'नीलदेवी' नामक दुखांत नाटक लिखकर पाश्चात्य नाट्य परंपरा से भी प्रभाव ग्रहण किया है। 'भारत दुर्दशा' में भी दुखांत का प्रभाव विद्यमान है। भारतेंदु को हिन्दी के प्रथम नाटककार एवं युग प्रवर्तक के रूप में स्वीकार किया गया है।

▶ 'नीलदेवी' एक दुखांत नाटक है

4.3.3.2 जयशंकर प्रसाद

प्रसाद में सृजनात्मक स्तर पर खड़ी बोली गद्य का विस्तार और वैविध्य पहली बार देखने को मिलता है। ऐतिहासिक नाटकों के तत्समाग्रही अलंकृत गद्य से लेकर 'मधुआ' जैसी कहानी की बोलचाल तक प्रसाद की भाषा का विस्तार है। छायावाद के वरिष्ठ कवि प्रसाद के यहाँ कविता की भाषा के रूप में खड़ी बोली पूरी तरह से अर्थ- सघन होती है, तब स्वाभाविक है कि गद्य में भी वे कई तरह के अभिनव प्रयोग करें। प्रसाद की काव्यभाषा दो स्तरों पर गतिशील होती है- एक बिंब-भाषा जो एकदम व्यवस्थित ढली हुई है, दूसरे वर्णन की भाषा जहाँ कहीं कुछ ढिलाई देखने को मिलती है। यों प्रसाद का सामान्य बुनियादी गद्य कुछ बहुत आकर्षक नहीं बन पड़ा, और बहुत बार असमान स्तर का है।

▶ छायावाद के वरिष्ठ कवि

रंगमंच व अभिनेयता की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों में अनेक दोष मिलते है:

- उनका कथानक इतना विस्तृत एवं ऐतिहासिक है कि उसमें शिथिलता आ जाती है।
- उन्होंने अनेक ऐसी घटनाओं एवं दृश्यों का आयोजन किया है जो रंग- मंच की दृष्टि से उपयुक्त एवं उचित नहीं।
- लम्बे-लम्बे स्वगत-कथन एवं वार्तालाप नाटक में है।
- गीतों का अत्यधिक प्रयोग है।
- दर्शन-शास्त्र की सूक्ष्म एवं जटिल उक्तियों का समावेश।
- सर्वत्र संस्कृत-गर्भित भाषा का प्रयोग हुआ है।

यह दोषें उनके नाटकों की अभिनेयता में बाधक सिद्ध होती हैं।

4.3.3.3 मोहन राकेश

मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभा संपन्न रचनाकार थे। साहित्य की विभिन्न विधाओं को विकसित करने और उन्हें संपन्न करने में उनका योगदान बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा है। अपने कृतित्व में वे किसी विधा विशेष में सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहे यह कहना कठिन है। यदि हिन्दी कविता साहित्य को छोड़ दे तो अन्य लगभग सभी विधाओं में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मोहन राकेश ने मुख्य रूप से चार नाटक, दो एकांकी, बीज नाटक एक पार्श्व नाटक, आठ ध्वनि नाटक लिखे। इन नाटकों में नाट्यशैली की विविधता उल्लेखनीय है। इनमें लगभग सभी नाटकों का रंगमंचीय प्रयोग सफलतापूर्वक हुए हैं।

▶ बहुमुखी प्रतिभा संपन्न रचनाकार थे

उपन्यास के क्षेत्र में राकेश के तीन उपन्यास बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। उन्होंने लगभग सत्तर कहानियाँ, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, और यात्रावृतांत भी लिखे हैं। इसके साथ ही, उन्होंने समकालीन साहित्य, नाटक, और रंगमंच की प्रवृतियों पर आलोचनात्मक निबंध लिखे। राकेश एक उत्कृष्ट अनुवादक भी हैं, जिन्होंने संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य की महत्वपूर्ण रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया। हिन्दी की नव नाट्य लेखन या नया नाटक परम्परा को एक व्यापक सर्जनात्मक आन्दोलन के रूप में स्थापित करने का श्रेय मोहन राकेश को हैं।

▶ मोहन राकेश के प्रमुख नाटक हैं- 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', आधे अधूरे

मोहन राकेश का पहला नाटक है 'आषाढ़ का एक दिन' जो महाकवि कालिदास पर आधारित है, जिसका उद्देश्य केवल उनकी कथा नहीं, बल्कि एक कवि के मन के द्वंद्व को व्याख्यायित करना है। नाटककार ने कालिदास के साथ कल्पित पात्रों का सृजन किया है और इसे आज के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। यह राकेश की पहली नाट्य रचना होते हुए भी उनकी प्रौढ़ कृति मानी जाती है। राकेश ने इस नाटक के माध्यम से हिन्दी रंगमंच को एक महत्वपूर्ण पहचान दी है।

▶ 'आषाढ़ का एक दिन' प्रथम नाट्य रचना

'लहरों के राजहंस' मोहन राकेश का दूसरा नाटक है। इस नाटक के प्रथम संस्करण की भूमिका में उन्होंने इतिहास संबंधी अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहा है, "इतिहास और साहित्य में अंतर हेता है। साहित्य इतिहास के समय में बँधता नहीं, समय में इतिहास का विस्तार करता है, युग से युग को अलग करता नहीं कई युगों को एक साथ जोड़ देता है।" इस कथन से स्पष्ट होता है कि समय अत्यधिक बलवान होता है। मोहन राकेश की तीसरी नाट्य सृष्टि है 'आधे अधूरे'। समकालीन जिंदगी का पहला सार्थक हिन्दी नाटक है। इस

नाटक का फलक न तो बहुत विस्तृत है और न ही विशाल किन्तु इस नाटक की समस्याएँ आधुनिक सामाजिक जीवन से जुड़ी हुई हैं। यह नाटक मौजूदा जीवन की विडंबना के कुछ एक सघन बिन्दुओं को रेखांकित करता है। इस नाटक की अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है, इसमें यह सामर्थ्य है, जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। इसके पात्रों की मनःस्थितियाँ यथार्थपरक तथा विश्वसनीय है। यह नाटक एक स्तर पर स्त्री-पुरुष के बीच के लगाव और तनाव का दस्तावेज है। इसमें महेन्द्रनाथ सावित्री से बहुत प्रेम करता है। सावित्री भी उसे चाहती है लेकिन ब्याह के बाद महेन्द्रनाथ के बहुत निकट से जानने के बाद उसे उससे वितृष्णा होने लगती है क्योंकि जीवन से सावित्री की अपेक्षाएँ बहुमुखी और अनंत हैं। इसके कारण पति की हालत से सावित्री बहुत कटु हो गयी है। एक ओर घर को चलाने का असह्य बोझ तो दूसरी ओर जिन्दगी में कुछ भी हासिल न कर पाने की तीखी कचोट है। इतना ही नही वह अपने बच्चों के बर्ताव से अत्यंत त्रस्त भी हो जाती है। सावित्री बचीखुची जिन्दगी को ही एक पूरे संपूर्ण पुरुष के साथ बिताने की आकांक्षा रखती है, पर उसकी आकांक्षा पूरी नहीं होती।

▶ मोहन राकेश का अपूर्ण नाटक 'पैरों तले की जमीन'

'पैर तले की जमीन' मोहन राकेश का अंतिम नाटक है तो उनके असामयिक निधन के कारण उनके मित्र कमलेश्वर ने पूरा किया है।

4.3.3.4 जगदीशचंद्र माथुर

1950 के बाद का काल हिन्दी नाटकों की दृष्टि से विशिष्ट काल है जब जगदीश चंद्र माथुर के नाटक 'कोणार्क' में नए तरह का नाट्य प्रयोग दिखाई देता है। इनके नाटकों में मनुष्य के आंतरिक संघर्ष को पूरी प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया गया। 'कोणार्क' में कलाकार और राजसत्ता के बीच तथा कलाकार की अपनी प्रेरणा के विभिन्न स्रोतों और स्थितियों के बीच संघर्ष का चित्रण है। इस नाटक में इतिहास सिर्फ इतना ही है कि कोणार्क का मंदिर नरसिंह देव ने निर्मित कराया था बाकी सबकुछ नाटककार ने अपनी कल्पना से संजोया है। इसी तरह 'शारदीया' और 'पहला राजा' नाटकों में भी अंतर्द्वन्द्वों का चित्रण है।

▶ मनुष्य के आंतरिक संघर्ष को पूरी प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

अपनी विकास यात्रा में हिन्दी नाटक साहित्य भिन्न-भिन्न पड़ावों से गुज़रा है और इस क्रम में अपने युग-बोध और परम्परा को साधते हुए अपने विशिष्ट स्वरूप को विकसित किया है। यदि भारतेन्दु काल के नाटक साहित्य की बात करें, तो उसके समक्ष नाटक साहित्य के स्वरूप के विकास के साथ-साथ हिन्दी रंगमंच के विकास की चुनौती भी थी। पारसी रंगमंच के प्रभावों से अलग एक ऐसे रंगमंच का विकास करना, जो नाटक के साहित्यिक और तत्कालीन सामाजिक आवश्यकताओं की अपेक्षाओं पर बराबर खरा उतरता हो, एक कठिन काम था, जिसे भारतेन्दु युग के नाटककारों ने बखूबी निभाया। द्विवेदी युग, नाटक के इतिहास के लिहाज़ से ज़्यादा महत्वपूर्ण इसलिए भी नहीं कहा जाता कि इस युग ने अपने पहले और बाद के क्रमशः भारतेन्दु और प्रसाद युग जैसा योगदान नहीं दिया। बावजूद इसके नाटक साहित्य के विकास की निरन्तरता की दृष्टि से यह काल महत्वपूर्ण है।

प्रसाद युग ने नाटकों में तमाम सम्भावनाओं की पड़ताल करते हुए नाटक के विकास को एक नई ऊर्जा दी। रंगमंच और नाटक की अन्योन्याश्रित सम्बन्धों को रेखांकित किया। प्रसादोत्तर युग के नाटकों को नाटक साहित्य में विभिन्न प्रयोगों के लिए याद किया जाएगा। इस पूरी विकास यात्रा में हिन्दी नाटक विभिन्न स्वरूपों में ढलता हुआ आज एक ऐसे पायदान

पर खड़ा मिलता है, जहाँ उसके पास संस्कृत नाट्य साहित्य से लेकर पश्चिम और तमाम भारतीय भाषाओं के नाट्य साहित्य का अनुभव है। रंगमंच से अपने सम्बन्धों को लगातार पुख्ता करता हुआ यह अपने विकास पथ पर अग्रसर है। आज के नाटकों के लेखन में रंगमंच की महत्वपूर्ण भूमिका है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी नाटक के उद्‌भव एवं विकास पर आलेख तैयार कीजिए।
2. हिन्दी नाटक साहित्य में प्रसाद के योगदान पर टिप्पणी लिखिए।
3. हिन्दी के प्रमुख नाटककार के बारे में टिप्पणी लिखिए।
4. नुक्कड़ नाटक विषय पर आलेख तैयार कीजिए।
5. समकालीन नाटक पर टिप्पणी तैयार कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी का गद्यसाहित्य - डॉ. रामचन्द्र तिवारी
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
3. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
5. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
6. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
7. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

इकाई : 4

हिन्दी निबंध का विकास एवं प्रमुख निबंधकार, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग, शुक्लोत्तरयुग, हिन्दी निबंधों के प्रकार - विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, आत्मपरक, हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास, समकालीन हिन्दी आलोचना

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी निबंध के उद्भव एवं विकास के बारे में समझता है
- हिन्दी के प्रमुख निबंधकार के बारे जानकारी प्राप्त करता है
- निबंध के विविध प्रकार के बारे में समझता है
- हिन्दी आलोचना के उद्भव एवं विकास के बारे में समझता है

Background / पृष्ठभूमि

निबंध भी गद्य साहित्य की विविध विधाओं की भाँति आधुनिक युग की ही देन है। जिस के आरंभ में भारतेन्दु जी का महत्वपूर्ण योगदान है। हिन्दी निबंध साहित्य का प्रारंभ भारतेन्दु युग से होता है। भारतेन्दु युग का निबंध-साहित्य विषय-वस्तु तथा रचना-शिल्प दोनों दृष्टियों से वैविध्यपूर्ण था।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का युग हिन्दी निबंध विकास यात्रा का महत्वपूर्ण सोपान है। उनके निबंधों में उपदेशात्मकता का पुट है। हिन्दी निबंध साहित्य में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के योगदान के कारण इस युग को शुक्ल युग के नाम से जाना जाता है। इस युग में विभिन्न विषयों में विभिन्न भाव धाराओं के निबंध लिखे गए। विचारात्मक, हास्य-व्यंग्य मूलक, साहित्यिक और भाव परक विचारों की गहनता इस युग के निबंधों की विशेषता रही है। इस युग के निबंधों में वैयक्तिकता की प्रधानता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी आलोचनात्मक निबंध को शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया।

Keywords / मुख्य बिन्दु

निबन्ध का विकास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी आलोचना का विकास

Discussion / चर्चा

4.4.1 हिन्दी निबंध का विकास

यह निर्विवाद कहा जा सकता है हिन्दी निबन्ध का आरम्भ पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से ही हुआ। राष्ट्रीय जागरण की स्फूर्ति, उत्साह, उमंग, देशप्रेम, जनवाद, व्यक्ति स्वातंत्र्य,

अन्तर्राष्ट्रीयता, वैज्ञानिक कला का प्रयोग, आवश्यकताओं की वृद्धि, गद्य का प्रचलन, मुद्रणकला का प्रचार, समाचार-पत्रों का प्रकाशन और उनके माध्यम से लेखक और पाठक में आत्मीय सम्बन्ध की स्थापना, अंग्रेजी साहित्य का सम्पर्क आदि अनेक कारणों से साहित्य के अनेक रूपों के साथ निबन्ध रूप का भी आविर्भाव हुआ है। हिन्दी निबन्ध साहित्य के विकास को क्रमशः से भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग, शुक्लोत्तर युग, वर्तमान युग या आधुनिक युग आदि रूप में विभक्त किया जा सकता है-

1. भारतेन्दु युग (प्रादुर्भाव-काल) 1850-1900 ई.
2. द्विवेदी युगः (प्रसार-काल)1900-1920 ई.
3. शुक्ल युगः (परिपाक-काल)1920-1935 ई.
4. शुक्लोत्तर युगः (उत्कर्ष-काल)1935-1950 ई.
5. वर्तमान युग (नवसंक्रमण-काल)1950 ई. से अब तक

4.4.1.1 भारतेन्दु युग

निबन्ध का आरम्भ भारतेन्दु युग के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं से हुआ, जैसे 'कवि वचन सुधा', 'हिन्दी प्रदीप', और 'ब्राह्मण'। भारतेन्दु स्वयं एक प्रतिभाशाली निबन्धकार थे, जिन्होंने विभिन्न विषयों पर लेखन किया। इस युग के अन्य लेखक भी पत्रिकाओं से जुड़े थे, जिससे निबन्ध लेखन में जीवंतता आई। पश्चिमी साहित्य और प्रेस के प्रभाव से निबन्धों की संख्या बढ़ी, जो उस युग की सामाजिक, राजनीतिक, और धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण करते हैं। प्रमुख निबन्धकारों में पं. बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र शामिल हैं, जिन्होंने निबन्ध को नई ऊँचाई दी।

▶ निबन्ध का आरम्भ भारतेन्दु युग की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं से हुआ

भारतेन्दु युग के प्रमुख निबंधकार

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं. बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवासदास और जगमोहन सिंह प्रमुख हैं।

यह युग हिन्दी निबन्धों के लिए आरम्भ और प्रायोग का था। इस समय के निबन्धों में भाव, विचारों का तीखा स्वच्छन्द-प्रवाह, तेजस्विता, जिन्दादिली, मनोविनोद, नूतन रूपक, उपालम्भ, हास्य-व्यंग्य, समस्या का गम्भीर विवेचन, उदारवादी भाषा, दृष्टिकोण, रोचकता और सरलता जैसे गुणों का समावेश दिखाई देता है। मधुर व्यंग्य के माध्यम से निबन्धकार वर्तमान समाज की स्थिति का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत कर देते थे। प्रारम्भिक उत्थान के निबन्धकारों ने अपने निबन्धों के अन्त में निष्कर्ष निकालकर शिक्षा के पूर्ण निर्देश और उपदेश भी दिये हैं। हिन्दी गद्य की भाषा यद्यपि प्रारम्भिक काल में शिथिल और व्याकरण दोष से युक्त थी फिर भी इसमें मुहावरे, लोकोक्तियों, तत्सम, तद्भव और अरबी, फारसी, उर्दू के शब्दों की अधिकता थी। भारतेन्दु के अनेक निबन्धों में ब्रज और ग्रामीण बोली के शब्दों का प्रचुर प्रयोग मिलता है।

▶ मधुर व्यंग्य के माध्यम से निबन्धकार समाज की स्थिति का चित्रण सहज रूप से करते हैं

4.4.1.2 द्विवेदी युग

हिन्दी निबन्ध का द्वितीय उत्थान काल 'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका तथा 'सरस्वती' के

प्रकाशन से प्रारम्भ होता है। इसमें निबन्ध साहित्य ने विषय-विस्तार के साथ अपने आयाम भी विस्तृत किये। वस्तुतः हिन्दी गद्य के उन्नायक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के साथ ही निबन्ध साहित्य का व्यापक विस्तार हुआ है और विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक आदि प्रकार के निबन्ध लिखे गये। आचार्य द्विवेदी ने सन् 1903 से 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन सँभाला। उन्होंने अपने सम्पादकत्व में अनेक प्रकार के उपयोगी, ज्ञानविषयक, ऐतिहासिक, पुरातत्व, समीक्षा सम्बन्धी निबन्ध और लेख स्वयं लिखे और अन्य निबन्धकारों को प्रेरणा दी। उन्हें व्याकरण सम्मत हिन्दी भाषा का ज्ञान कराया। आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी गद्य की अनेक शैलियों का प्रवर्तन किया और भाषा को शुद्ध और संस्कृत निष्ट बनाकर प्रौढ़ता प्रदान की। गद्य के इस काल को इसलिए द्विवेदी काल की संज्ञा दी गई। अंग्रेजी निबन्धकार श्री बेकन के निबन्धों का हिन्दी अनुवाद 'बेकन विचार रत्नावली' द्विवेदी जी ने किया। इससे अनेक लेखकों को प्रेरणा मिली। इनके निबंधों पर पाश्चात्य एवं अन्य भारतीय भाषाओं विशेषकर मराठी एवं बंगाली का प्रभाव द्रष्टव्य है।

▶ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सन् 1903 से 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन किया

इस युग के निवन्धकारों में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त गोविन्दनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, डॉ. रघुवीर सिंह, सरदार पूर्णसिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बाबू श्यामसुन्दरदास, पद्मसिंह शर्मा, पं. माधव प्रसाद मिश्र, गणेश शंकर विद्यार्थी, सियारामशरण गुप्त, गोपालराम गहमरी, मिश्रबन्धु, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी आदि की गणना की जाती है। इस काल में निबन्ध प्रमुखतया साप्ताहिक, पाक्षिक या पत्रों के लेखों, पुस्तकों की भूमिकाओं और पुस्तकों आदि के रूप में प्रस्तुत है।

द्विद्विवेदी युग को राष्ट्रीय जागरण और भाषा के परिष्कार का युग कहा जाता है, जिसमें विश्व प्रेम, सामाजिक एकता, और भारत-पश्चिम के सम्पर्क पर गम्भीर निबन्ध लिखे गए। इस युग में हिन्दी गद्य का विकास हुआ, निबन्धों की परिभाषा सशक्त हुई, और समालोचन एवं गम्भीर विषय-विश्लेषण को महत्व मिला। द्विवेदी जी ने भाषा का शुद्ध व्याकरण और परिमार्जित शैली को बढ़ावा दिया। उन्होंने ऐसे कई लेखकों को प्रोत्साहित किया जिन्होंने व्याकरण,भाषा,रचना कौशल पर ग्रंथ लिखे। विषयगत वैविध्य, गंभीर चिंतन संस्कृतनिष्ठ प्रवाहपूर्ण भाषा, भावनाओं का वेग, ओज एवं व्यंग्यात्मकता इस युग के निबंधों की अपनी विशेष गुण सम्पत्ति रही है।

▶ द्विवेदी जी ने भाषा का शुद्ध व्याकरण और परिमार्जित शैली को बढ़ावा दिया

4.4.1.3 शुक्ल युग

द्विवेदी युग के अंत में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का प्रखर व्यक्तित्व उभरा, जिन्होंने निबन्धों में आन्तरिक सूक्ष्मता और वैयक्तिक अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी। उनके विचारशील और मनोवैज्ञानिक निबन्धों के आधार पर 1920 से 1940 तक का समय 'शुक्ल युग' कहा जाता है। शुक्ल ने निबन्ध कला को नई ऊँचाई दी, जिसमें बुद्धि और भावना का अद्भुत समन्वय है। उनके निबन्धों को भावनात्मक और समीक्षात्मक दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। अन्य उल्लेखनीय निबन्धकारों में बाबू गुलाबराय, माखनलाल चतुर्वेदी, और प्रेमचन्द शामिल हैं।

▶ निबन्धों को दो भागों में बाँटा जा सकता है

बाबू गुलाबराय ने साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, और संस्मरणात्मक निबन्ध लिखे, जिनमें वैयक्तिकता और गहन अनुभूति प्रमुख हैं। पदुमलाल बख्शी की मौलिकता और नवीन शैली, वासुदेवशरण अग्रवाल के गवेषणात्मक निबन्ध, और डॉ. रघुवीर सिंह के काव्यात्मक ऐतिहासिक निबन्ध विशेष ध्यान आकर्षित करते हैं। रायकृष्णदास, वियोगी हरि, और

शान्तिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध भावात्मकता से भरे हैं, जबकि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के निबन्धों में ओज और राष्ट्रीयता की विशेषता है। इस युग को हिन्दी निबन्ध का 'स्वर्ण युग' माना जाता है, जिसमें संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से नई दिशाएँ विकसित हुईं। शुक्ल युग के निबन्धकार में बाबू गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', डॉ. रघुवीर सिंह, वियोगी हरि, राय कृष्णदास, बालकृष्ण शर्मा नवीन, वासुदेवशरण अग्रवाल, शान्तिप्रिय द्विवेदी, प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, जैनेन्द्रकुमार आदि उल्लेखनीय हैं।

▶ इस युग को हिन्दी निबन्ध का 'स्वर्ण युग' माना जाता है

4.4.1.4 शुक्लोत्तर युग

यह युग हिन्दी निबन्ध साहित्य का चरमोत्कर्ष काल है। समसामयिक विषयों का गम्भीर अनुशीलन और नूतन शैली के प्रयोग किया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की गद्य शैली का व्यापक प्रभाव लक्षित होता है। इस काल में विचारात्मक निबंधों की अपेक्षा समीक्षात्मक निबन्धों अधिक लिखे गये हैं। साथ ही वैयक्तिक निबंधों की संख्या काफी बड़ी है। संस्मरण, रेखाचित्र, और रिपोर्ताज का समावेश भी निबंध विधा में हुआ है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'अशोक के फूल' से ललित निबन्ध शैली का विकास हुआ, जिसने हिन्दी निबन्ध को और समृद्ध किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, निबन्धों में लालित्य और व्यंग्य की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है, जिससे भावों की अभिव्यक्ति और भी प्रभावशाली हुई है।

▶ विचारात्मक निबन्धों से अधिक समीक्षात्मक निबन्ध अधिक लिखे गये

वर्तमान युग में ललित निबन्धों की जो परम्परा दिखाई देती है उसका सूत्रपात शुक्ल युगीन निबन्धकारों से है। ललित निबन्धों की परम्परा में शब्द लालित्य का बड़ा महत्व रहा है। विषय को विस्तार दिये बिना अपनी संक्षिप्त अभिव्यक्ति शैली में शब्दों का सुन्दर संयोजन कर लेखक अपनी बात कहता है कि विषय विवेचन में एक अतिरिक्तता, मोहकता उत्पन्न होती है। क्रमशः ललित निबन्धों की शैली में परिमार्जन होता गया और भाषा युग सन्दर्भ में बदलती गयी जो निबन्धों की समृद्ध परम्परा को नूतन परिमार्जन की और ले जाती है। इस ललित निबन्धों को समृद्ध करने का प्रयास अनेक लेखकों ने किया है-पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला, महादेवी वर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर, शिवपूजन सहाय, सद्गुरु शरण अवस्थी, चतुरसेन शास्त्री, सुमित्रानन्दन पंत, राहुल सांकृत्यायन, बनारसीदास चतुर्वेदी, आचार्य नन्द-दुलारे वाजपेयी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, रामवृक्ष बेनीपुरी, डॉ. शान्तिप्रिय द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, प्रभाकर माचवे, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, डॉ. भगीरथ मिश्र, विवेकीराय आदि उल्लेखनीय हैं।

▶ ललित निबन्धों की परम्परा में शब्द लालित्य का बड़ा महत्व रहा है

4.4.1.5 वर्तमान युग

वर्तमान युग निबन्ध काल के चरम विकास का युग है। इस युग में निबन्ध का विषय और शिल्प दोनों दृष्टियों से पर्याप्त विकास हुआ है। इस युग में वैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक, समाजशास्त्रीय विषयों तथा पर्यावरण समस्या पर पर्याप्त निबन्ध लिखे गये। इस युग में मुख्यतः यथार्थवादी जीवन दृष्टि और भौतिकवादी मनोवृत्ति क्रमशः बलवती होती गयी।

▶ वर्तमान युग निबन्ध काल के चरम विकास का युग है

आधुनिक शिक्षा प्रसार के फलस्वरूप पाठकों की संख्या बढ़ी और साहित्य क्षेत्रविस्तृत हुआ। जीवन की कठोर संघर्षमयता तथा मानव व्यस्तता के परिणामस्वरूप पाठक को मनोरंजनार्थ सरस साहित्य की आवश्यकता महसूस हुई, तो एक ओर हास्य-विनोद के निबन्धों को व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया, तो दूसरी ओर ललित निबन्ध का जोर भी बढ़ा। हरिशंकर

▶ इस युग में वैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक, समाजशास्त्रीय विषयों तथा पर्यावरण समस्या पर पर्याप्त निबन्ध लिखे गये

परसाई ने लघु निबन्ध एवं व्यंग्य-विनोद में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। इसी तरह श्रीलाल शुक्ल, रवीन्द्रनाथ त्यागी, लक्ष्मीकान्त झा, शरद जोशी और शंकर पुणतांबेकर के अधिकांश निबन्ध व्यंग्यात्मक हैं। वैज्ञानिक विषयों पर डॉ. गुणाकर मुले तथा राजीव गर्ग ने कई निबन्ध लिखकर हिन्दी निबन्ध साहित्य को समृद्ध किया। अतः हिन्दी निबन्ध आज भी अपने उत्कर्ष पथ पर अग्रसर है और वर्तमान समय में उत्कृष्ट कोटि के निबन्धकार जैसे डॉ, दामोदर खडसे जैसे इसमें योगदान दे रहे हैं।

4.4.2 हिन्दी निबंधों के प्रकार

हिन्दी निबंधों के विभिन्न प्रकार हैं, जिनका उपयोग विभिन्न विषयों और उद्देश्यों के लिए किया जाता है। निबंधों के प्रकार निम्नलिखित हैं:

4.4.2.1 विचारात्मक निबन्ध

▶ निबन्धों की शैली व्यास या समास शैली

विचारात्मक निबन्धों में लेखक गम्भीर विषयों पर अपने चिन्तन-मनन से लेख लिखता है। इस प्रकार के निबन्धों में बुद्धि की प्रधानता व विचारों की प्रमुखता होती है। इस प्रकार के निबन्धों की शैली व्यास या समास शैली होती है। भाषा गम्भीर व प्रौढ़ होती है। प्रमुख विचारात्मक निबन्धकार इस प्रकार हैं- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, डॉ. नगेन्द्र आदि।

4.4.2.2 भावात्मक निबन्ध

▶ व्यक्ति की संवेदनशीलता को प्रकट करते हैं

भावात्मक निबन्धों में भाव की प्रधानता होती है। इस प्रकार के निबन्ध व्यक्ति की संवेदनशीलता को प्रकट करते हैं। हास्य-व्यंग्य प्रधान निबन्ध भी इसी श्रेणी में ही आते हैं। शुक्ल जी के मनोविकार सम्बन्धी लेख भी इसी कोटि के हैं।

4.4.2.3 वर्णनात्मक निबन्ध

▶ भावात्मकता व बौद्धिकता का सामंजस्य

वर्णनात्मक निबन्धों में किसी घटना, तथ्य, वस्तु, स्थान, दृश्य आदि का वर्णन होता है। इस प्रकार के निबन्धों में भावात्मकता व बौद्धिकता का सामंजस्य रहता है। भाषा सरल व सहज होती है। प्रमुख वर्णनात्मक निबन्धकार इस प्रकार हैं- बालकृष्ण भट्ट, बाबू गुलाबराय, कन्हैयालाल मिश्र, विष्णु प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि।

4.4.2.4 विवरणात्मक निबन्ध

▶ पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक घटनाओं का वर्णन होता है

विवरणात्मक प्रकार के निबन्धों में पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक घटनाओं का वर्णन होता है। निबन्ध संवेदनशील तथा मार्मिक होते है विवरण भूतकाल का होता है। प्रमुख विवरणात्मक निबन्धकार इस प्रकार हैं- भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, शिवपूजन सिंह आदि।

4.4.2.5 आत्मपरक निबन्ध

▶ व्यक्तित्व की छाप

आत्मपरक प्रकार के निबन्धों में लेखक अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ता है। वर्तमान में जो भी निबन्ध लिखे जाते हैं, वे सभी आत्मपरक निबन्ध होते हैं। प्रमुख आत्मपरक निबन्धकार इस प्रकार हैं- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, डॉ. विवेकीराय आदि।

4.4.3 हिन्दी आलोचना का उद्‌भव और विकास, समकालीन हिन्दी आलोचना

4.4.3.1 हिन्दी आलोचना का विकास

हिन्दी आलोचना का प्रारंभ भी गद्य की अन्य विधाओं के साथ ही साथ भारतेंदु युग यानी आधुनिक युग से हुआ है। इस युग में मुद्रण कला का विकास हुआ, राजनीतिक जागृति आयी और पत्र-पत्रिकाओं का लगातार प्रकाशन हुआ। अंग्रेज़ी साहित्य के सम्पर्क से लोगों को नयी-नयी जानकारियाँ मिलीं। स्कूल-कालेजों में हिन्दी पढ़ायी जाने लगी। अध्यापकों को साहित्य सृजन की नवीन प्रेरणा मिली जिसके फलस्वरूप गद्य में पुस्तकें लिखी जाने लगीं। इस प्रकार धीरे-धीरे गद्य की तमाम विधाओं का विकास हुआ। गद्य का विकास भी आधुनिक आलोचना के उद्‌भव और विकास का सहायक कारण बना। आलोचना के विकास में पाश्चात्य साहित्य और बौद्धिक जागृति प्रधान कारण थे।

▶ गद्य का विकास भी आधुनिक आलोचना के उद्‌भव और विकास का सहायक कारण बना

हिन्दी आलोचना में विश्लेषण और मूल्यांकन की प्रवृत्ति तेज़ी से बढ़ी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी आलोचना को शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया। इसलिये हिन्दी आलोचना के विकास के केंद्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को मानते हुए हम उसे तीन युगों में बांट सकते हैं-

▶ हिन्दी आलोचना के विकास के तीन युग

1 शुक्ल पूर्व हिन्दी आलोचना (1850 से 1920 ई.)

2. शुक्ल युगीन हिन्दी आलोचना (1920 से 1940 ई.)

3. शुक्लोत्तर हिन्दी आलोचना (1940 से आज तक)

1. शुक्ल पूर्व हिन्दी आलोचना

हिन्दी आलोचना की विधिवत् शुरुआत भारतेंदु युग से हुई थी। किंतु इससे पहले भी भक्ति और रीति युग में आलोचना के क्षेत्र में अनेक प्रयास दिखायी पड़ते हैं। अतः शुक्ल पूर्व हिन्दी औलोचना के विकास को दरअसल तीन युगों के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा भारतेंदु पूर्व हिन्दी आलोचना, भारतेंदु युगीन हिन्दी आलोचना, द्विवेदी युगीन हिन्दी आलोचना।

▶ गद्य रचना की परंपरा का अभाव

भारतेंदु पूर्व आलोचना में भक्ति और रीतिकाल के प्रयास शामिल हैं। भक्ति काल में कविता को ईश्वर भक्ति का साधन मानते हुए काव्य सिद्धांतों पर चर्चा कम हुई, और रीतिकाल में भी गहरी आलोचना की कमी और गद्य रचना की परंपरा का अभाव था।

▶ आधुनिक आलोचना की नींव रखी

भारतेंदु युग में आलोचना पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विकसित हुई। 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' और 'हिन्दी प्रदीप' जैसी पत्रिकाओं ने आधुनिक आलोचना की नींव रखी। इस युग में पुस्तक समीक्षाओं के माध्यम से आलोचना दृष्टि विकसित हुई।

▶ 'सरस्वती' और 'माधुरी' प्रमुख पत्रिकाएँ

द्विवेदी युग में हिन्दी आलोचना ने तर्कशक्ति और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया, और इसमें आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण था। इस युग की प्रमुख पत्रिकाएँ जैसे 'सरस्वती' और 'माधुरी' ने आलोचना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

द्विवेदी युग में आलोचना के प्रमुख रूप निम्नलिखित है

1. **शास्त्रीय आलोचना:** यह आलोचना संस्कृत आचार्यों की पद्धति पर आधारित थी और 'काव्य प्रभाकर' जैसी कृतियों में प्रकट हुई।
2. **तुलनात्मक आलोचना:** द्विवेदी युग में विकसित इस प्रकार की आलोचना बिहारी और सादी जैसी काव्यशास्त्रीय तुलनाओं पर केंद्रित थी।
3. **अनुसंधानपरक आलोचना:** यह आलोचना 'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका के साथ शुरू हुई, जिसमें कवियों की कृतियों पर गहन शोध किया गया।
4. **परिचयात्मक आलोचना:** महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा 'सरस्वती' पत्रिका में की गई, जिसमें विषय और भाषा त्रुटियों पर ध्यान केंद्रित किया गया।
5. **व्याख्यात्मक आलोचना:** यह आलोचना नैतिक, सामाजिक, और सौंदर्यपरक मूल्यों पर विस्तृत विवेचन करती है, और इसमें बालकृष्ण भट्ट और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का योगदान प्रमुख है।

इन विभिन्न रूपों ने हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया और साहित्यिक मूल्यांकन के नए दृष्टिकोण स्थापित किए।

2. शुक्ल युगीन हिन्दी आलोचना

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी आलोचना में महत्वपूर्ण बदलाव लाया, विशेषकर साहित्यिक रुचियों में परिवर्तन करके। उन्होंने रीति साहित्य के पारंपरिक मानदंडों को चुनौती दी और साहित्य की पूरी परंपरा का पुनर्गठन किया। शुक्ल ने लोकमंगलकारी दृष्टिकोण को मूल्यांकन का आधार बनाया और मौलिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। उन्होंने प्राचीन भारतीय और पाश्चात्य आलोचना का गहन अध्ययन कर समन्वयवादी सिद्धांत विकसित किए। उनके निबंध जैसे 'कविता क्या है' और 'साहित्य' ने सैद्धांतिक समीक्षा का सूत्रपात किया, जबकि 'चिंतामणि' में संकलित निबंधों से उनकी गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि और व्यापक अध्ययन का पता चलता है।

▶ समन्वयवादी सिद्धांत

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी में रस-विवेचन को मनोवैज्ञानिक आधार दिया और रस को काव्य की आत्मा मानते हुए उसकी परंपरागत व्याख्या को अस्वीकार किया। उन्होंने अनुभूति को सर्वोपरि रखते हुए इसे लोकमानस से जोड़ा, यह मानते हुए कि 'लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस दशा है।' उनकी आलोचना में व्यापक दृष्टि थी, जिससे वे साहित्यिक विवादों पर गहन विचार करते थे और प्राचीन व मध्ययुगीन काव्य का विवेचन भी लगन से करते थे।

▶ रस-विवेचन को मनोवैज्ञानिक आधार दिया

आचार्य शुक्ल के प्रमुख ग्रंथ हैं-

'जायसी ग्रंथावली' (1925 ई.), भ्रमरगीतसार (1926 ई.), 'गोस्वामी तुलसीदास' (1933 ई.), 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1929 ई.)।

3. शुक्लोत्तर हिन्दी आलोचना (1940 से आज तक)

शुक्लोत्तर हिन्दी आलोचना अपने युग के प्रभावों को ग्रहण करती हुई विकसित होती रही। दो विश्व युद्धों का विनाशकारी प्रभाव पश्चिमी देशों में दिखायी पड़ने लगा था। यूरोप में वैज्ञानिकता और भौतिकता के व्याप्त होने से नैतिक मूल्यों का विघटन होने लगा था। वहाँ भोगवादी और अर्थवादी मूल्यों को महत्व दिया जाने लगा। फ्रायडवादी, मार्क्सवादी और अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव पाश्चात्य साहित्य पर पड़ने लगा। विश्वव्यापी इन चिंतन धाराओं से भारत भी अछूता नहीं रह सका। भारत के जीवन में भी नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का कुछ सीमा तक विघटन हुआ। फलस्वरूप साहित्य में संघर्ष चेतना की अभिव्यक्ति केलिए तरह-तरह के प्रयोग किये जाने लगे। हिन्दी आलोचना भी उन्हीं के अनुरूप ढलती गयी और शुक्लोत्तर युग में आलोचना अनेक धाराओं में विकसित हुई-

▶ शुक्लोत्तर युग में आलोचना अनेक धाराओं में विकसित

- स्वच्छंदतावादी समीक्षा
- ऐतिहासिक समीक्षा
- मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा
- मार्क्सवादी आलोचना
- नयी समीक्षा

स्वच्छंदतावादी समीक्षा पद्धति का उद्भव छायावाद की प्रमुख विशेषताओं और रोमांटिक कविता के अध्ययन से हुआ। इस पद्धति के तहत काव्य में आत्माभिव्यंजन और व्यक्तिवाद को प्राथमिकता दी गई, जबकि आनंद को मूल्यांकन का मुख्य आधार माना गया। पं. नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र और पं. शांतिप्रिय द्विवेदी जैसे आलोचकों ने इस प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया। ऐतिहासिक समीक्षा में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में रचनाओं का अध्ययन किया। मार्क्सवादी आलोचना ने प्रगतिशीलता को महत्व दिया, जिसमें शिवदान सिंह चौहान और डॉ. रामविलास शर्मा प्रमुख थे। मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा में अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी ने मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का उपयोग किया। अंततः, 1950 के बाद नयी समीक्षा ने व्यक्ति स्वातंत्र्य और सृजनात्मकता को केंद्र में रखा, जिसमें अज्ञेय और मुक्तिबोध जैसे कवियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा।

▶ मार्क्सवादी आलोचना ने प्रगतिशीलता को महत्व दिया

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी की अन्य गद्य विधाओं के समान हिन्दी निबंध का विकास भी भारतेन्दु युग से प्रारंभ हुआ। इस काल में भारतीय समाज में एक नई चेतना का विकास हो रहा था। यानी भारतेन्दु युग के निबंधकारों ने गम्भीर विषयों पर निबंधों की रचना की। सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों पर स्वच्छंद रूप से विचार व्यक्त करते हुए इन्होंने हिन्दी निबंध को विकास पथ पर अग्रसर किया। हिन्दी निबन्ध के विकास के द्वितीय चरण को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर द्विवेदी युग कहा गया है। हिन्दी निबंध के तृतीय चरण को शुक्ल युग की संज्ञा प्रदान की गई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध क्षेत्र में पदार्पण करने से इसे नए आयाम एवं नई दिशाएँ प्राप्त हुई।

हिन्दी समीक्षा का प्रारंभ भी भारतेन्दु युग में हुआ था। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन ने हिन्दी आलोचना का द्वार खोल दिया। हिन्दी समालोचना को चरम उत्कर्ष पर पहुँचाने का श्रेय आलोचक सम्राट आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को ही है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी निबंध के उद्‌भव और विकास पर लेखन लिखिए।
2. प्रमुख निबंधकारों पर आलेख तैयार कीजिए।
3. निबंध साहित्य में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के योगदान पर टिप्पणी लिखिए।
4. हिन्दी आलोचना के विकास यात्रा पर आलेख प्रस्तुत कीजिए।
5. समकालीन आलोचना और प्रमुख आलोचक विषय पर टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी का गद्यसाहित्य - डॉ. रामचन्द्र तिवारी
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
3. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. द्वितीय मध्ययुगोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - एल.एस वार्ष्णेय
5. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
6. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
7. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल
2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

SGOU

Model Question Paper Sets

SGOU

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ……

Reg. No : …….....
Name : ……...

SECOND SEMESTER MA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE CORE - M23HD06DC- हिन्दी साहित्य का इतिहासःआधुनिक युग

(CBCS - PG)
2023-24 - Admission Onwards

Time: 3 Hours **Max Marks: 70**

SECTION A

I. किन्हीं पाँच प्रश्नों का उत्तर दो या दो से अधिक वाक्यों में लिखिए।

1. छायावाद के आधार स्तंभ कवियों के नाम लिखिए?
2. द्विवेदी युग के प्रमुख पत्रिकाओं के नाम लिखिए?
3. तारसप्तक के प्रकाशन वर्ष एवं पकाशक को लिखिए?
4. भारतेन्दु युग के प्रमुख कवियों के नाम लिखिए?
5. भारतेन्दु युग के नाटकों का नाम लिखिए?
6. प्रेमचंद की प्रमुख कहानियों के नाम लिखिए?
7. महिला उपन्यासकार के नाम लिखिए?
8. सक्रिय कहानी के प्रवर्तक कौन हैं? **(5X2 = 10 Marks)**

SECTION B

II. किन्हीं छः प्रश्नों का उत्तर एक पृष्ठ के अन्दर लिखिए।

9. नयी कहानी के बारे में लिखिए।
10. अकविता या साठोत्तरी कविता
11. हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकारों पर आलेख लिखिए।
12. नुक्कड़ नाटक
13. सरस्वती पत्रिका
14. भारतेन्दु मंडल से तात्पर्य क्या है?

SGOU

15. 1857 की क्रांति पर टिप्पणी लिखिए।

16. द्विवेदी-युग की राष्ट्रीयता पर टिप्पणी लिखिए।

17. उत्तर छायावाद पर चर्चा कीजिए।

18. द्विवेदी युग के काव्यधारा पर विचार प्रकट कजिए। **(6X5 = 30 Marks)**

SECTION C

III. किन्हीं दो प्रश्नों का उत्तर लिखिए। प्रत्येक उत्तर तीन पृष्ठों के अन्तर्गत हों।

19. भारतेन्दु युगीन प्रमुख पत्रकार एवं पत्रिकाओं पर टिप्पणी लिखिए।

20. द्विवेदी युग की काव्यगत विशेषताओं पर टिप्पणी लिखिए।

21. प्रयोगवाद की प्रमुख विशेषताओं पर आलेख लिखिए।

22. हिन्दी कहानी के आन्दोलन पर टिप्पणी लिखिए। **(2X15 = 30 Marks)**

SGOU

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ……

Reg. No : …….....
Name : ……...

SECOND SEMESTER MA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE CORE - M23HD06DC- हिन्दी साहित्य का इतिहासःआधुनिक युग

(CBCS - PG)
2023-24 - Admission Onwards

Time: 3 Hours **Max Marks: 70**

SECTION A

I. किन्हीं पाँच प्रश्नों का उत्तर दो या दो से अधिक वाक्यों में लिखिए।

1. महादेवी वर्मा की प्रमुक रचनाओं का नाम लिखिए।
2. द्विवेदी युग के प्रमुख कवियों का नाम लिखिए।
3. प्रगतिवाद।
4. भारतेन्दु युग के प्रमुख कवियों के नाम लिखिए।
5. भारतेन्दु युग के नाटकों का नाम लिखिए।
6. 'श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र भूखे बालक अकुलाते हैं।' यह पक्ति किस काव्यधारा से संबंधित है तथा इसकी रचना किसने की?
7. फणीश्वरनाथ रेणु की रचनाओं का नाम लिखिए।
8. सक्रिय कहानी के प्रवर्तक कौन हैं? **(5X2 = 10 Marks)**

SECTION B

II. किन्हीं छः प्रश्नों का उत्तर एक पृष्ठ के अन्दर लिखिए।

9. प्रमुख कहानीकारों के बारे में लिखिए।
10. नयी कविता के बारे में लिखिए।
11. भारतेन्दु युग के नाटक साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।
12. प्रगतिवाद की विशेषताएँ लिखिए।
13. द्विवेदी युगीन पत्र-पत्रिकाओं पर टिप्पणी लिखिए।
14. सक्रिय कहानी के बारे में लिखिए।

SGOU

15. छायावाद

16. व्यक्तिवादी गीतिकविता

17. नयी कविता एवं प्रयोगवाद के अंतर पर टिप्पणी लिखिए।

18. हिन्दी कहानी आन्दोलन पर टिप्पणी लिखिए। **(6X5 = 30 Marks)**

SECTION C

III. किन्हीं दो प्रश्नों का उत्तर लिखिए। प्रत्येक उत्तर तीन पृष्ठों के अन्तर्गत हों।

19. 'हिन्दी नवजागरण की अवधारणा आधुनिक काल' विषय पर टिप्पणी लिखिए।

20. 'सरस्वती पत्रिका एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी' विषय पर आलेख लिखिए।

21. छायावाद की प्रमुख विशेषताओं पर आलेख लिखिए।

22. हिन्दी के प्रमुख कहानीकारों के योगदान पर टिप्पणी लिखिए। **(2X15 = 30 Marks)**

SGOU

സർവ്വകലാശാലാഗീതം

വിദ്യയാൽ സ്വതന്ത്രരാകണം
വിശ്വപൗരരായി മാറണം
ഗ്രഹപ്രസാദമായ് വിളങ്ങണം
ഗുരുപ്രകാശമേ നയിക്കണേ

കൂരിരുട്ടിൽ നിന്നു ഞങ്ങളെ
സൂര്യവീഥിയിൽ തെളിക്കണം
സ്നേഹദീപ്തിയായ് വിളങ്ങണം
നീതിവൈജയന്തി പാറണം

ശാസ്ത്രവ്യാപ്തിയെന്നുമേകണം
ജാതിഭേദമാകെ മാറണം
ബോധരശ്മിയിൽ തിളങ്ങുവാൻ
ജ്ഞാനകേന്ദ്രമേ ജ്വലിക്കണേ

കുരീപ്പുഴ ശ്രീകുമാർ

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Regional Centres

Kozhikode
Govt. Arts and Science College
Meenchantha, Kozhikode,
Kerala, Pin: 673002
Ph: 04952920228
email: rckdirector@sgou.ac.in

Thalassery
Govt. Brennen College
Dharmadam, Thalassery,
Kannur, Pin: 670106
Ph: 04902990494
email: rctdirector@sgou.ac.in

Tripunithura
Govt. College
Tripunithura, Ernakulam,
Kerala, Pin: 682301
Ph: 04842927436
email: rcedirector@sgou.ac.in

Pattambi
Sree Neelakanta Govt. Sanskrit College
Pattambi, Palakkad,
Kerala, Pin: 679303
Ph: 04662912009
email: rcpdirector@sgou.ac.in

हिन्दी साहित्य का इतिहास:आधुनिक युग

Course Code: M23HD06DC

SGOU

ISBN 978-81-971189-8-2

Sreenarayanaguru Open University
Kollam, Kerala Pin- 691601, email: info@sgou.ac.in, www.sgou.ac.in Ph: +91 474 2966841